अंतगडदसाङ्ग सूत्र

(मूल-संस्कृतछाया-अन्वयार्थ-भावार्थ-विवेचन-परिशिष्ट युक्त)

तत्त्वावधान

आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा.

चतुर्थ संस्करण 2016

दिशा-निर्देशन

आचार्य श्री हीराचन्द्रजी म.सा.

सम्पादक

प्रकाशचन्द जैन

मुख्य सम्पादक

साहित्य प्रकाशन अ.भा. श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक

प्रकाशक

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

(संरक्षक : अखिल भारतीय श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ)

पुस्तक :

अंतगडदसाङ्ग सूत्र

प्रकाशक:

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

दुकान नं. 182 के ऊपर,
बापू बाजार, जयपुर-302003 (राजस्थान)
फोन : 0141 - 2575997, 2571163
फैक्स : 0141-4068798
Email : sgpmandal@yahoo.in

© सर्वाधिकार सुरक्षित

चतुर्थ संस्करण : 2016

मुद्रित प्रतियाँ : 1100

मूल्य : **100.00 रुपये** (एक सौ रुपये मात्र)

लेज़र टाइप सैटिंग :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

मुद्रक :
दी डायमण्ड प्रिंटिंग प्रेस,
जौहरी बाजार, जयपुर

अन्य प्राप्ति स्थल :

❒ **श्री स्थानकवासी जैन स्वाध्याय संघ**
घोड़ों का चौक, **जोधपुर-342001**
(राजस्थान)
फोन : 0291-2624891

❒ **Shri Navratan ji Bhansali**
C/o. Mahesh Electricals,
14/5, B.V.K. Ayangar Road,
BANGALURU-560053
(Karnataka)
Ph. : 080-22265957
Mob. : 09844158943

❒ **Shri B. Budhmal ji Bohra**
211, Akashganga Apartment,
19 Flowers Road, Kilpauk,
CHENNAI-600010 (TND)
Ph. : 044-26425093
Mob. : 09444235065

❒ **श्रीमती विजयानन्दिनी जी मल्हारा**
''रत्नसागर'', कलेक्टर बंगला रोड़,
चर्च के सामने, 491-ए, प्लॉट नं. 4,
जलगाँव-425001 (महा.)
फोन : 0257-2223223

❒ **श्री दिनेश जी जैन**
1296, कटरा धुलिया, चाँदनी चौक,
दिल्ली-110006
फोन : 011-23919370
मो. 09953723403

प्रकाशकीय

32 आगमों में अंग शास्त्रों की प्रधानता रही है। अंग शास्त्रों में जहाँ उपासकदशांग सूत्र में श्रावक की साधना देवगति का कारण बनी है वहीं आठवें अंग शास्त्र अंतगड़दसाङ्ग सूत्र में वर्णित 90 आत्माओं की साधना मोक्ष का हेतु बनी है। अंतगड़ सूत्र में वर्णित ज्ञान व साधना से यह ज्ञात होता है कि मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान की न्यूनाधिकता बाधक नहीं होती है अपितु ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सम्यक् पालन से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।

अंतगड़सूत्र में वर्णित आत्माओं में से किसी ने 5 समिति 3 गुप्ति का अध्ययन किया, तो किसी ने 12 अंगों का और किसी ने 14 पूर्वों का अध्ययन किया, वहीं किन्हीं साधकों ने लम्बे समय तक संयम पर्याय का पालन किया तो गजसुकुमाल जैसे साधकों ने अहोरात्रि का संयम पालन किया। यदि तप का वर्णन देखा जाये तो साधकों ने गुणरत्न संवत्सर, 12 भिक्षु प्रतिमा, लघु सर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र आदि तप करके मुक्ति का वरण किया। गजसुकुमाल जैसे साधक ने एक रात्रि की भिक्षु प्रतिमा जैसे तप का पालन करके मुक्ति की मंजिल प्राप्त की।

इन्हीं सब विशेषताओं को लिये हुये इस अंतगड़दसाङ्ग सूत्र की विस्तृत जानकारी तो इसका आद्योपांत स्वाध्याय करने पर ही प्राप्त होती है। पर्युषण पर्व में भी इसका वाचन करने के पीछे यही लक्ष्य रहता है कि हम भी उन साधकों की तरह ज्ञान-दर्शन-चारित्र व तप की यथाशक्ति सम्यक् पालना करके मोक्ष रूप शुद्ध अवस्था को प्राप्त करें।

पूर्व में प्रकाशित अंतगड़ सूत्र में मूल के सामने संस्कृत छाया व भावार्थ विवेचन सहित प्रस्तुत करने के पीछे आचार्यप्रवर श्री हस्तीमलजी म.सा. का यही उद्देश्य था कि सुज्ञ श्रावकगणों को स्वाध्याय करते हुये सभी विषय-वस्तु का एक साथ

स्वाध्याय कर सके। वर्तमान में इस पुस्तक में आठ वर्गों को मूल, संस्कृत छाया, अन्वयार्थ, भावार्थ के साथ विशेष विवेचन सहित प्रस्तुत किया गया है। साथ ही परिशिष्ट में सूक्तियाँ, विशिष्ट तथ्य, संदर्भ सामग्री, साधकों की साधना आदि के चार्ट, प्रश्नोत्तर, भजन व प्रत्याख्यान का समावेश किया गया है। जो सुज्ञ-विज्ञ, जिज्ञासु श्रावकों के लिए पठनीय, मननीय व चिंतनीय है।

आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. के अमृतमय एवं हृदयस्पर्शी प्रवचन प्रायः अंतगड़दसाङ्ग सूत्र पर केन्द्रित रहते हैं। आप इस आगम को प्रत्येक व्यक्ति के लिए पठनीय मानते हैं। इस आगम के सूत्रों का उपयोग आपके वचनों में होने के साथ ही इसके साधना सूत्रों का प्रायोगिक रूप भी आपके जीवन में जीवन्त दृष्टिगोचर होता है।

पूर्व में आचार्य भगवन्त श्री हस्तीमलजी म.सा. के निर्देशन में इस सूत्र का सम्पादन कार्य श्री गजसिंहजी राठौड़, श्री चाँदमलजी कर्णावट एवं श्री प्रेमराजजी बोगावत द्वारा किया गया। वर्तमान में इस पुस्तक का पुनरीक्षण संशोधन एवं सम्पादन का कार्य व्यसन मुक्ति के प्रबल प्रेरक, आचार्य भगवन्त श्री 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. के मार्गदर्शन व दिशा-निर्देशन में आध्यात्मिक शिक्षा समिति के विद्वान् प्रशिक्षक श्री प्रकाशचन्दजी जैन, जयपुर (प्राचार्य) द्वारा किया गया। अंतगड़दसाङ्ग सूत्र का तृतीय संस्करण 2005 में प्रकाशित हुआ था। संशोधित एवं परिमार्जित चतुर्थ संस्करण 2016 में प्रकाशित किया जा रहा है।

पुस्तक के प्रूफ संशोधन एवं आवरण सज्जा में आध्यात्मिक शिक्षा समिति में सेवारत श्री राकेशजी जैन, जयपुर का सहयोग प्राप्त हुआ। लेज़र टाईप सेटिंग में श्री प्रहलाद नारायणजी लखेरा का सहयोग प्राप्त हुआ। एतदर्थ मण्डल परिवार आप सभी के प्रति आभार प्रकट करता है।

पाठकों से निवेदन है कि वे जीवन-उन्नायक भगवद्वाणी रूप अंतगड़दसाङ्ग सूत्र का स्वाध्याय कर अपने जीवन को सार्थक बनायें।

:: निवेदक ::

पारसचन्द हीरावत	**प्रमोदचन्द महनोत**	**पदमचन्द कोठारी**	**विनयचन्द डागा**
अध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	कार्याध्यक्ष	मन्त्री

सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल

प्राक्कथन

जैनधर्म की वर्तमान में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ धरोहर है-''आगम।'' वीतराग भगवन्तों की अर्थ रूप वाणी को गणधर भगवन्त सूत्रबद्ध करते हैं जिन्हें अंगसूत्र कहा जाता है। अंगसूत्रों के आधार पर विशिष्ट आचार्यों पूर्वधरों (10पूर्वी तक) द्वारा निर्यूढ़ सूत्रों को अंग-बाह्य सूत्र कहा जाता है। वर्तमान में स्थानकवासी परम्परा इन्हीं अंग व अंग-बाह्य सूत्रों में से 32 सूत्रों को आगम रूप में स्वीकार करती है। आगम ज्ञान का खजाना है, विश्वकोष है। जिनमें सरल, सरस व सारपूर्ण शब्दों में न केवल जीवन-निर्माण व जीवन-निर्वाण के सूत्र भरे हैं अपितु खगोल, भूगोल, इतिहास, गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, विज्ञान आदि की महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ संकलित हैं। आगमों का स्वाध्याय ज्ञानवृद्धि व कर्मनिर्जरा का साधन है, अत: प्रत्येक साधक को यथा शक्ति आगमों का निरंतर स्वाध्याय करना चाहिए।

अंतगड़दसाङ्गसूत्र अंगसूत्र में 8वाँ सूत्र है। वर्तमान में उपलब्ध इस आगम में भगवान अरिष्टनेमि व भगवान महावीर के शासनवर्ती 90 महान् साधकों का वर्णन है जिन्होंने जीवन के अंतिम समय में केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति का वरण कर लिया। साधक के जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति है, इसकी प्रभावशाली प्रेरणा प्राप्त करने के लक्ष्य से ही पूर्वाचार्यों ने इसी सूत्र को पर्वाधिराज पर्युषण के 8 दिनों में वाचना के लिए स्थान दिया होंगा। आज जैन समाज के हजारों श्रावक-श्राविका, साधु-साध्वी इसके स्वाध्याय से अपने जीवन को सफल, सार्थक व समुन्नत बना रहे हैं।

अंतगड़सूत्र की विशेषताएँ :-

(1) इसके 8 वर्गों में कुल 90 महापुरुषों का वर्णन है जिनमें 51 महापुरुष (41 श्रमण 10 श्रमणियाँ) अरिहंत अरिष्टनेमि के शासनवर्ती एवं 39 (16 श्रमण व 13 श्रमणियाँ) श्रमण भगवान महावीर के शासनवर्ती साधक हैं। इनमें प्रथम वर्ग का गौतम नामक प्रथम अध्ययन, तीसरे वर्ग का गजसुकुमाल नामक 8वाँ अध्ययन, व अतिमुक्त नामक पन्द्रहवाँ अध्ययन और 8वें वर्ग के काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा व महासेनकृष्णा अध्ययनों में इन साधकों की तप-संयम साधना का विशद् वर्णन है, शेष पचहत्तर अध्ययनों में संक्षिप्त वर्णन है।

(2) इस शास्त्र में प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, ऋद्धि, पाणिग्रहण, प्रीतिदान, भोग-परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना एवं अंतक्रिया स्थान का उल्लेख किया गया है। इसमें वर्णित साधकों में स्त्री, पुरुष, बालक, युवा, वृद्ध, सामान्य जन एवं विशिष्टजन सभी तरह के हैं। इसमें एक ओर राजा, राजकुमार, राजरानियों का वर्णन है तो दूसरी ओर सामान्य मालाकार का भी वर्णन हैं। यह सूत्र न तो अतिविशाल है न अतिलघु। इसमें ऐसे ही साधकों की जीवन गाथा गायी गई है जिन्होंने अपनी ज्ञान, दर्शन, चारित्र व तप की साधना से अष्टकर्मों का क्षय कर मुक्ति लक्ष्मी का वरण किया है। यह सूत्र सहज, सरल, सुबोध, सुगम्य भाषा शैली में सामान्यजन को आत्म साधना की प्रेरणा देने वाला होने के साथ ही आठ दिन के सीमित समय में इसका वाचन पूरा किया जा सकता है। अत: स्थानकवासी परम्परा में पर्वाधिराज पर्युषण के 8 दिवसों में इसका वाचन किये जाने की मंगलमयी परम्परा है।

(3) शास्त्रों में अलग-अलग शैलियों से समझाने का प्रयास हुआ है, यह शास्त्र श्रुतशैली में है श्रुत अर्थात् श्रवण के द्वारा ज्ञान प्राप्ति। इसमें गुरु-शिष्य के संवाद के माध्यम से भव्य-जीवों को मोक्ष मार्ग से अवगत कराया गया है। सर्वप्रथम तो शासनपति भगवान महावीर के द्वारा गौतम के माध्यम से भव्यजीवों को प्रतिबोधित किया गया है फिर प्रथम पट्टधर आर्य सुधर्मा ने इस सूत्र का बोध अपने शिष्य जम्बू को भगवान महावीर द्वारा गणधरगौतम को दिये गये ज्ञान दान के माध्यम से उस सूत्र का ज्ञान दिया है, वर्तमान में उपलब्ध आगमों की शैली से ऐसा प्रतीत होता है कि इस सूत्र का बोध आर्य प्रभव ने अपने शिष्यों को श्रुत जिज्ञासा करने पर दिया।

(4) इस शास्त्र का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है-मोक्ष, मोक्षमार्ग व उसके साधनों की उपादेयता तथा संसार व संसार के कारणों की हेयता। इसके परम पावन चरित्रों के माध्यम से संयम-साधना की सर्वोच्चता, तप-संयम-अहिंसा समन्वित साधना के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप, साधकों की उत्कृष्ट साधना, श्रावक के दर्शनाचार, कर्मवाद, पुरुषार्थवाद की महत्ता के दिग्दर्शन के साथ धर्म दलाली के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया गया है। राजा के कर्त्तव्य एवं अमर्यादित अनुग्रह के दुष्परिणामों (6 गोठिला पुरुष) का भी परिचय कराया गया है।

(5) इस शास्त्र की रचना शैली विनय धर्म के आचरण का संदेश देती है। गुरु के समक्ष कैसे बैठना, कैसे पृच्छा करना व गुरु द्वारा दिये गये श्रुतज्ञान को कैसे धारण करना, स्वीकार करना व अपनी स्वीकृति व्यक्त करना आदि का ज्ञान यह सूत्र प्रदान करता है।

(6) प्रारम्भिक अध्ययन साधकों के विपुल वैभव का वर्णन करते हुए सांसारिक वैभव चाहे कितना भी क्यों न हो, हेय है, त्याज्य है, जिन्होंने भी मोक्षमार्ग स्वीकार किया वे सभी अकिंचन बनकर आगे बढ़े, इस तथ्य को प्रतिष्ठापित करते हैं।

(7) गजसुकुमाल मुनि के अध्ययन से शिक्षा मिलती है कि अनेकानेक भवों में किये गये कर्म भी पीछा छोड़ने वाले नहीं है। देवता अपनी ओर से कुछ भी देने में समर्थ नहीं है, वे केवल निमित्त मात्र बन सकते हैं।

(8) महारानी देवकी के माध्यम से श्रावक के अतिथि-संविभाग व्रत एवं पाँच अभिगम के साथ उत्कृष्ट देवभक्ति व गुरुभक्ति का परिचय कराया गया है। श्रावक का यह बारहवाँ व्रत है कि वह श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय आहारादि देकर महान् लाभ प्राप्त करे। दान-देने के पूर्व, दान देते समय तथा दान देने के बाद कितनी प्रसन्नता होनी चाहिए, यह बात देवकी के प्रसंग से जानी जा सकती है।

(9) त्रिखण्डाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव द्वारा माता के चरण वन्दन करने आने, छह-छह मास के अनन्तर आ पाने व माता को दु:खी देखकर उनकी चिन्ता की पृच्छा व उसका निवारण करने की उत्कण्ठा, निवारण हेतु तपाराधना व माता को आश्वस्त करने आदि के स्वर्णाक्षरों में मंडित उल्लेख माता की महत्ता, पुत्र के कर्त्तव्य व श्रीकृष्ण वासुदेव की उत्कृष्ट मातृभक्ति का दिग्दर्शन कराते हैं।

(10) भगवान के दर्शनार्थ जाते हुए श्रीकृष्ण ने वृद्ध पुरुष पर दया-दृष्टि लाकर हाथी के होदे पर बैठे-बैठे ही एक ईंट उठाकर उसके मकान में रख दी। बड़े व्यक्ति जो काम करते हैं, सामान्यजन सहज ही उसका अनुकरण करते हैं। श्रीकृष्ण का अनुकरण करते हुए सहयोगियों, अनुचरों के द्वारा एक-एक ईंट रखे जाने से उस वृद्ध के लिए अशक्य कार्य मिनिटों में ही सम्पादित हो गया। इससे एक ओर हमें, गरीबों, अपंगों, दु:खियों के प्रति करुणा-भाव प्रकट करने का बोध दिया गया है वहीं दूसरी ओर यह संदेश भी मिलता है कि समाज सेवा के पुनीत कार्य को यदि मुखिया स्वयं करे तो सहज ही उसका अनुसरण होता है व बड़े से बड़ा कार्य भी अल्प समय व अल्प श्रम से सहज ही सम्पादित हो सकता है।

(11) पाँचवें वर्ग के माध्यम से धनिक वर्ग के मनुष्यों को समझना चाहिए कि हमारे स्वजन, परिजन, महल, अटारियाँ, बाग-बगीचे, धन-वैभव, ऐश्वर्य कोई भी नित्य उपयोगी एवं हितावह नहीं है, ये सब नश्वर हैं, छूटने वाले हैं। जो छूटने वाला है उसे आगे होकर छोड़ना ही श्रेयस्कर है। संयम व त्याग के बिना जीवन कोरा या अपूर्ण है। इस मानव जीवन का एक मात्र सदुपयोग संयम ग्रहण में है, त्याग में है। अपने भ्राता गजसुकुमाल की अकाल मृत्यु व प्रभु मुख से द्वारिका विनाश की बात सुनकर श्रीकृष्ण सोचते हैं कि वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य हैं जो अपनी सम्पत्ति, स्वजन और याचकों को देकर अरिहंत अरिष्टनेमि के समीप मुण्डित हो प्रव्रजित हो गये हैं, मैं तो अधन्य हूँ अकृतपुण्य हूँ जिससे में राज्य, अन्त:पुर तथा मनुष्य संबंधी कामभोगों में ही फँसा हुआ हूँ। प्रव्रज्या लेने में असमर्थ हूँ। कितना उदात्त चिंतन है।

(12) दृढ़ सम्यक्त्वी श्रीकृण भले ही पूर्वकृत निदान के कारण संयम ग्रहण नहीं कर पाये हों पर उनके मन में संयम के प्रति अनुराग, संयम ग्रहण करने वालों के प्रति कैसा प्रमोदभाव व कैसी अनूठी धर्मदलाली है, संयम का कैसा उत्कृष्ट प्रबल अनुमोदन। वे घोषणा कराते हैं कि-''जो भी अरिहंत अरिष्टनेमि के पास

प्रव्रजित होना चाहते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण वासुदेव प्रव्रज्या लेने की आज्ञा देते हैं, जो भी प्रव्रजित होगा उसके पीछे घर में रहे हुए बाल, वृद्ध, रोगी आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था श्रीकृष्ण अपनी तरफ से करेंगे, और दीक्षार्थियों का दीक्षा महोत्सव बड़े ठाट-बाट के साथ स्वयं श्रीकृष्ण करेंगे। यह है संयम और संयम ग्रहण करने वालों का अनुमोदन।

(13) अर्जुन अनगार के अध्ययन से यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि जिनशासन में जाति का कोई बन्धन नहीं है, न ही किसी विशिष्ट विद्वत्ता की आवश्यकता है। पापी से पापी भी परमात्मा के श्रीचरणों में अपने को समर्पित कर परम पावन बनकर स्वयं परमात्म पद पर अधिष्ठित हो सकता है।

(14) सुदर्शन मात्र प्रियधर्मी नहीं, वरन् दृढ़ धर्मी श्रावक थे। प्रभु नगर के बाहर गुणशील उद्यान में विराजमान हैं, नगर के द्वार बंद हैं। अनन्त करुणासागर के दर्शन की सबके मन में उत्कण्ठा है, पर साहस कोई नहीं कर पा रहा है। सुदर्शन माता-पिता को समझा बुझाकर प्रभु के द्वार की ओर बढ़ चला। दानव दौड़ा आया, दानव को आते देख श्रमणोपासक सागारी संथारा ग्रहण कर ध्यानस्थ हो गया। दानव ने पूरा जोर लगाया पर कुछ न कर सका, हार गया, अर्जुन का शरीर छोड़कर भाग गया। कैसा भी उपसर्ग क्यों न हो धैर्य व धर्म से समस्त उपसर्ग शांत हो जाते हैं। जिसके हृदय में वीतराग देव व धर्म के प्रति अटल आस्था हो, जिसका जीवन शील-सौरभ से सुवासित हो, भला दानव तो क्या यमराज भी उसका क्या बिगाड़ सकता है?

(15) एवंता के द्वारा गौतम स्वामी को अंगुली पकड़ कर घर की ओर ले जाते हुए छोटे-छोटे प्रश्न पूछे गये जो उस बालक में रही हुई विराट् आत्मा व माता-पिता से प्राप्त सुसंस्कारों की छवि को प्रकट करती है। साथ ही इससे मुख-वस्त्रिका की ऐतिहासिकता सिद्ध होती है। गौतम के एक हाथ में पात्र है, दूसरे हाथ की अंगुलि अतिमुक्त ने पकड़ रखी है, श्रमण खुले मुँह नहीं बोलता है, क्योंकि भगवती सूत्र खुले मुँह बोलने से सावद्य भाषा मानता है। फिर भला ज्ञान-क्रिया के अनुपम संगम, प्रभु के ज्येष्ठ व श्रेष्ठ शिष्य, चौदह हजार श्रमणों के नायक गौतम गणधर बिना मुखवस्त्रिका खुले मुँह कैसे बोलते? अत: मुखवस्त्रिका उनके मुख पर बंधी हुई थी, यह सिद्ध है।

(16) श्रेणिक महाराजा की काली, सुकाली, महाकाली आदि रानियाँ कितनी सुंदर व सुकुमार थीं, पर उन्होंने कभी यह विचार नहीं किया कि मैं सुकुमार हूँ, मुझसे तपस्या नहीं होती। मैं रुक्ष संयम, परीषह एवं उपसर्गों का पालन नहीं कर सकती। उन्होंने शक्ति का गोपन नहीं किया (नो निण्हविज्ज वीरियं) शक्ति होते हुए भी संयम व तप में पुरुषार्थ न करना चोरी कही गई है। उन राजमहिषियों ने स्वाध्याय व तप की भट्टी में होमकर अपने आपको कुंदन बना लिया। उन राजरानियों ने कनकावली, रत्नावली आदि तपों के द्वारों से अपने जीवन को देदीप्यमान करते हुए मुक्ति के साम्राज्य में प्रवेश प्राप्त कर लिया।

अंतगड़सूत्र से प्राप्त शिक्षाएँ व चिंतन :-

इस सूत्र का एक-एक अध्ययन जीवन को ऊँचा उठाने की सत्प्रेणा व सत्शिक्षाओं से भरा हुआ है, हम इन शिक्षाओं से अपनी आत्मा को भावित करने हेतु चिंतन (संकल्प) कर सकते हैं:-

(1) मोक्ष प्राप्ति का राजमार्ग है संयम। सभी 90 आत्माओं ने संयम पथ को अंगीकार करके मुक्ति को प्राप्त किया है। **चिंतन**-इस जीवन में संयम ले सकूँ तो सर्वश्रेष्ठ है अन्यथा श्रावक धर्म की आराधना करता हुआ नियन्त्रित व मर्यादित जीवन जीऊँ।

(2) सभी साधकों ने यथाशक्ति ज्ञानाराधना की। हमें उपलब्ध आगम व अन्य साहित्य का प्रतिदिन शक्ति के अनुसार स्वाध्याय करके ज्ञानाराधना करनी चाहिए। **चिंतन**-ज्ञान अन्तर्चक्षु हैं, जिन्हें स्वाध्याय से उद्घाटित किया जा सकता है। अत: मैं प्रतिदिन स्वाध्याय करूँगा।

तन रोगों की खान है, धन भोगों की खान।
ज्ञान सुखों की खान है, दु:ख खान अज्ञान।।

(3) 90 ही आत्माओं ने अस्नान व्रत को धारण किया। शरीर अनित्य है, अशुचिमय है, अशुचि को पैदा करता है, अशाश्वत आवास है, दु:ख व क्लेशों का पात्र है। इस मल-मूत्र की शैली को कितना भी नहलाओं यह तो अपवित्र ही रहने वाला है अत: इस शरीर को सजाने-संवारने की अपेक्षा इससे सारभूत तत्त्व को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। **चिंतन**-प्रतिदिन स्नान नहीं करूँगा। पानी की एक बूंद से असंख्यात जीव हैं। मैं अपने शरीर को अच्छा दिखाने के लिए इतने जीवों की हिंसा कैसे कर सकता हूँ?

(4) जीवन में जो भी अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति आती है, वह अपने ही पूर्वकृत कर्म का परिपाक है। उसमें निमित्त बनने वाले को दोषी नहीं मानकर सहायक मानना चाहिए। साहिज्जे दिण्णे। **चिंतन**-इसने मुझे गुस्सा दिलाया, यह सोच ठीक नहीं है।

(5) घर-परिवार में सेवारत कर्मचारियों को अपना 'कौटुम्बिक' मानना चाहिए। कोडुंबियपुरिसे। उन्हें अच्छे संबोधन से बुलाना चाहिए-देवाणुप्पिया आदि से। **चिंतन**-किसी के साथ अरे, तू, ऐ आदि हल्के शब्दों का प्रयोग नहीं करूँगा।

(6) श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक और एषणीय सुपात्रदान देने हेतु भोजन के समय घर पर सूझता रहना चाहिए। **चिंतन**-भोजन के समय (कम से कम एक टाइम) घर पर सूझता रहूँगा।

(7) प्रतिदिन घर में माता-पिता व बड़ों को प्रणाम करके उनकी साता-पूछना चाहिए उन्हें कोई भी आवश्यकता हो तो उसे सर्वप्रथम पूर्ण करना चाहिए। **चिंतन**-प्रतिदिन माता-पिता को प्रणाम कर उनके पास कुछ समय बैठूँगा।

(8) प्रतिदिन घर के अपने से छोटे भाई-बहिन, बच्चे, नौकर आदि से पूछ-परख करना। कोई भी समस्या हो तो उसे ध्यान से सुनना, समाधान करने का प्रयास करना उनके साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। **चिंतन**–कुछ समय बच्चों आदि के साथ व्यतीत करूँगा।

(9) अपने ग्राम नगर में नजदीक संत-सती विराजमान हो तो अवश्य दर्शन-वन्दन, प्रवचन का लाभ लें। **चिंतन**–पुण्योदय से संत-दर्शन होते हैं, संत-दर्शन से पुण्य का उपार्जन होता है।

(10) घर-परिवार, समाज में कोई भी दीक्षा लेना चाहे तो उन्हें यथाशक्ति सहयोग करना चाहिए, दीक्षा का महत्त्व बताना चाहिए, घर वालों को समझाया जा सकता है। **चिंतन**–दीक्षा लेने को तत्पर किसी को भी अंतराय नहीं दूँगा।

(11) मिथ्यादृष्टि देवों के कुचक्र में नहीं फँसना चाहिए। उनके निमित्त से कभी कोई कार्य हो भी जाय तो भी उनसे दूर ही रहना चाहिये नहीं तो अर्जुनमाली के समान पापी बनना पड़ता है। **चिंतन**–वीतराग देव को ही अपना आराध्य देव मानूँगा।

(12) हमें जो शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, धन, भूमि, सत्ता, विद्वत्ता आदि की प्राप्ति हुई है, हम उसका विवेकपूर्ण सदुपयोग करें तो हमारा यह जीवन उन्नत, सार्थक एवं मुक्ति प्राप्ति के योग्य बन सकता है। **चिंतन**–किसी भी उपलब्धि का अहंकार नहीं करूँगा।

(13) सुंदर व सशक्त शरीर प्राप्त कर उसे भोगों में न लगाकर तपस्या करके सफल बनाना चाहिए। **चिंतन**–प्रतिदिन नवकारसी आदि कोई न कोई तप अवश्य करूँगा।

(14) जहाँ भी सेवा का अवसर दिखाई दे अवश्य लाभ लेना चाहिए। श्रीकृष्ण की तरह। **चिंतन**–प्रतिदिन कोई न कोई सेवा का कार्य अवश्य करूँगा।

भ्रान्त धारणाओं का निराकरण :-

यों तो अंतगड़ सूत्र धर्मकथानुयोग का सूत्र माना जाता है क्योंकि इसमें सभी आत्माओं का चरित्र-चित्रण हुआ है। परंतु इसमें कई भ्रान्त धारणाओं का निराकरण हुआ है-

(1) प्राय: यह समझा जाता है कि पूर्व संचित कर्मों का ज्यों का त्यों भोग करना पड़ता है लेकिन अंतगड़ सूत्र में अर्जुनमाली एवं गजसुकुमाल की साधना इसका प्रमाण है कि यह आवश्यक नहीं है कर्म को ज्यों का त्यों भोगना पड़े। साधना के द्वारा कर्मों की स्थिति व अनुभाग को घटाया जा सकता है, इसे स्थितिघात एवं रसघात कहा जाता है। अर्जुनमाली ने 1141 जीवों की हत्या के पाप को 6 माह की अल्पावधि में ही क्षय कर दिया।

(2) ऐसा समझा जाता है कि जिसके साथ कर्म बाँधा गया है, उसी के साथ उसका फल भोग होता है। यह भी आवश्यक नहीं है। यदि ऐसा होता तो अर्जुन अणगार उस भव में मुक्त नहीं हो सकता था। कभी-कभी यह भी संभव है कि उस व्यक्ति के साथ ही फल भोगा जाता है। जैसा सोमिल के साथ गजसुकुमाल का पूर्वभव का संबंध माना जाता है।

(3) जिसने जितनी आयु बाँधी है उसे उसको भोगना ही पड़ता है, अकाल मृत्यु नहीं होती है। इस धारणा का भी अंतगड़ निराकरण करता है। अंतगड़ में सोमिल के प्रकरण में 'ठिइभेएण' शब्द से आयु कर्म के जल्दी पूर्ण होने अथवा अकाल मरण की पुष्टि होती है। ठाणांगसूत्र में आयु टूटने के 7 कारण बताये हैं।

अंतगड़ सूत्र 8वाँ अंगसूत्र औचित्य :-

तीर्थङ्कर भगवन्तों की देशना को सुनकर गणधर सूत्रों की रचना करते हैं जिसे द्वादशांगी कहते हैं। इस द्वादशांगी में अंतगड़दसाङ्ग सूत्र का नम्बर 8वाँ है इसके औचित्य पर विचार करें तो-मुक्ति के अव्यबाध सुख को प्राप्त करने का मार्ग है धर्म। ''आचार: प्रथमो धर्म:'' इस उक्ति के अनुसार मुक्ति के मार्ग धर्म का प्रथम सोपान आचार है। उस आचार-पंचाचार का विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम अपेक्षित होने से पहला स्थान आचारांग को दिया गया है 'धर्म व आचार के सम्बन्ध में विविध दर्शनों की मान्यताएँ क्या-क्या रही है जिनको समझना अनिवार्य है। अत: इसके बाद सूत्रकृतांग को स्थान दिया है। 1 से 10 तक या 1 से करोड़ों तक की संख्याओं के माध्यम से पदार्थों का बोध प्राप्त कराने के लिए ठाणांग व समवायांग को रखा गया। इन चारों अंगसूत्रों की विषय-वस्तुओं पर विस्तृत व्याख्या करने हेतु 5वाँ स्थान विवाहप्रज्ञप्ति को दिया गया। तत्त्वज्ञान को सरलता से समझाने के लिए काल्पनिक या वास्तविक दृष्टान्तों, कथानकों के माध्यम से स्पष्ट करने हेतु ज्ञाताधर्मकथांग को 6ठा स्थान प्राप्त हुआ। आंशिक रूप से धर्म की आराधना करने वाला भी सुगति को प्राप्त कर मुक्ति को नजदीक कर लेता है।

10 श्रावकों के जीवन चरित्र से उपासकदशांग प्रेरणा प्रदान करता है। सम्पूर्णतया धर्म की आराधना करके जिन महापुरुषों ने अंतिम समय में केवलज्ञान के साथ ही आयुष्यपूर्ण होने से मुक्ति को प्राप्त कर लिया ऐसे प्रेरणास्पद जीवन-चरित्रों का वर्णन करने वाला आठवाँ अंग अंतगड़दसाङ्ग सूत्र रखा गया। आयुष्यकर्म शेष रहने से जिन्होंने सर्वार्थसिद्ध विमान को प्राप्त किया उनका वर्णन अणुत्तरोववाई में तथा साधना के आनुषंगिक फल के रूप में प्राप्त लब्धियों का वर्णन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रश्नव्याकरण में तथा साधना के साथ उपार्जित शुभाशुभ कर्मों के फलों का वर्णन करने वाला सुखविपाक व दु:खविपाक तथा इतिहास, भूगोल, खगोल आदि सभी विषयों की विस्तार से जानकारी प्रदान करने वाला दृष्टिवाद अंतिम स्थान पर रखा गया है।

परम श्रद्धेय युगमनीषी अखण्ड बाल ब्रह्मचारी पूज्य गुरुदेव 1008 आचार्य प्रवरश्री हस्तीमलजी म.सा. आगम की जीवन्त प्रतिमूर्ति थे। आगम के प्रति उनके अंतर में अगाध श्रद्धा थी। जीवन को समुन्नत बनाने का आधार आगम ही है। उन आगमों को प्रत्येक श्रद्धालु सरलता से समझ सके इस हेतु उन्होंने अनेक आगमों की व्याख्याएँ की, अंतगड़दसाङ्ग सूत्र उसी लड़ी की एक कड़ी है। व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक, आगम मर्मज्ञ, आचार्य भगवन् पूज्य गुरुदेव 1008 श्री हीराचन्द्रजी म.सा. की भावना रही कि अंतगड़ सूत्र के प्रत्येक शब्द का अर्थ भी जोड़ा जाय जिससे स्वाध्यायकर्त्ता के भावों में ओर अधिक विशुद्धता आ सके अत: उन्हीं के दिशा–निर्देशन में इस संस्करण को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

इस संस्करण में संत–महासती मण्डल के सान्निध्य में अध्ययन–अध्यापन कराते तथा परीक्षा आदि के माध्यम से प्राप्त सामग्री तथा जिनवाणी के अंतगड़–विशेषांक का सहयोग भी लिया गया है, सभी के प्रति नतमस्तक होते हुए साधुवाद ज्ञापित करता हूँ।

जीवन को सुंदर बनाने में पूज्य गुरुदेव का महान् उपकार है, उन्हीं की अहेतुकी कृपा निरंतर सत्कार्यों के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित करती है, परिणामस्वरूप यह संस्करण श्रीचरणों में सादर–समर्पित है।

अल्पज्ञता व प्रमादवश यदि कोई बात वीतरागवाणी के विपरीत लिखने में आ गई हो तो उसका मिच्छा मि दुक्कडं देते हुए सुधी पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे गलतियों को ध्यान दिलावें ताकि आगे सुधार किया जा सके।

सुज्ञेषु किं बहुना।

आपका

प्रकाशचन्द जैन

मुख्य–सम्पादक – अ.भा.श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक संघ

उद्गार

◆ **आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा.**

धर्मशास्त्र की महिमा

शास्त्र किसे कहते हैं ? इसकी अगर शाब्दिक परिभाषा की जाये तो भाषा शास्त्र के अनुसार ''शासन करने वाले'' या ''मानव मन को अनुशासित करने वाले'' ग्रन्थ को 'शास्त्र' कहते हैं। जो तद् तद् विषयानुकूल अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे-अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, भाषाशास्त्र, समाजशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, वास्तुशास्त्र, रसायनशास्त्र, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि। उपर्युक्त अन्य शास्त्र जहाँ मनुष्य की भौतिक इच्छा, शाब्दिक ऊहापोह, रस परिविज्ञान एवं कामादि लालसा को जागृत कर उसे स्वार्थ परायण और संघर्षशील बनाते हैं, वहाँ 'धर्मशास्त्र' मानव को भौतिक प्रपंच से मोड़कर कर्त्तव्य-परायण, आत्माभिमुखी और विश्व हितैषी बनाता है। वह मानव की पापानुबन्धी बहिर्मुखी कलुषित मनोवृत्ति को दबाकर उसे पुण्यानुबन्धी अन्तर्मुखी बनने की प्रेरणा देता है। जैसे पारस का सम्पर्क लौह को बहुमूल्य सुवर्ण बना देता है, वैसे ही धर्मशास्त्र भी आत्म-परायण नर को नारायण बना देता है, इसलिए किसी विद्वान् ने ठीक ही कहा है-

श्लोको वरं परम तत्त्व-पथ प्रकाशी,
न ग्रन्थ-कोटि-पठनं जन-रंजनाय।
संजीवनीति वरमौषधमेकमेव,
व्यर्थश्रमस्य जननी न तु मूल-भारः।।

अर्थात् परम तत्त्व के मार्ग को बताने वाला एक श्लोक भी अच्छा, किन्तु जन-रंजन के लिए करोड़ों ग्रन्थों का पढ़ना भी श्रेष्ठ नहीं। संजीवनी जड़ी का एक टुकड़ा भी अच्छा, किन्तु व्यर्थ में भार वहन कराने वाले मूले का भार हितकर नहीं।

धर्म शास्त्र की इस महिमा के कारण ही महर्षियों ने इसकी श्रुति तक को दुर्लभ बताया है। जैसा कि कहा है-

''सुई धम्मस्स दुल्लहा'' धर्म का सुनना दुर्लभ है। वस्तुतः तो संसार को सन्मार्ग पर ले चलने का सारा श्रेय धर्म शास्त्र को ही है।

धर्मशास्त्र और द्वादशांगी

महिमाशाली होकर भी साधारण धर्म शास्त्र मानव जगत् का उतना कल्याण नहीं कर पाते जितना कि उनसे अपेक्षित है। जिनके गायक या रचयिता स्वयं ही सरागी, भोगी एवं अज्ञान युक्त हैं, वे ग्रन्थ भला मानव का अभिलाषित उपकार कहाँ तक कर सकते हैं ? अतः वीतराग, आप्त पुरुषों की वाणी या तदनुकूल सत्पुरुषों की वाणी ही मानव-कल्याण में समर्थ मानी गई है।

अनादिकाल की नियत मर्यादा है कि तीर्थंकर भगवान को जब केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तब वे श्रुतधर्म और चारित्रधर्म की देशना देकर चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं। उस समय उनके परम प्रमुख शिष्य गणधर, प्रत्यक्षदर्शी तीर्थंकरों की अर्थ रूपी वाणी को ग्रहण कर उसे सूत्र रूप में गूँथते हैं। जैसे चतुर माली लता से गिरे हुए फूलों को एकत्र कर हार बनाता है और उससे मानव का मनोरंजन करता है।

गणधरों द्वारा गूँथे गये (रचे गये) वे प्रमुख सूत्र-शास्त्र ही द्वादशांगी के नाम से कहे जाते हैं। जैसे कि कहा है-

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ ।।

अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान अर्थरूप वाणी बोलते हैं और गणधर उसको ग्रहण कर शासन हित के लिए निपुणतापूर्वक सूत्र की रचना करते हैं तब सूत्र की प्रवृत्ति होती है। शब्दरूप से सादि सान्त होकर भी यह द्वादशांगी श्रुत अर्थरूप से नित्य एवं अनादि अनन्त कहा गया है। जैसा कि नन्दी सूत्र में उल्लेख है-

"से जहा नामए पंच अत्थिकाए न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं य, भवइ य, भविस्सइ य, धुवे नियए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे न कयाइ नासी, न कयाइ नत्थि, न कयाइ न भविस्सइ, भुविं च भवइ य, भविस्सइ य, धुवे, नियए सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए णिच्चे। (नंदी सूत्र)"

अर्थात् पंचास्तिकाय की तरह कोई भी ऐसा समय नहीं था, नहीं है, और नहीं होगा जबकि द्वादशांगी श्रुत नहीं था, नहीं है या नहीं रहेगा। अतः यह द्वादशांगी नित्य है। जैसाकि पहले कह गए हैं कि शब्द रूप से द्वादशांगी सादि सान्त है। प्रत्येक तीर्थंकर के समय गणधरों द्वारा इसकी रचना होती है, फिर भी अर्थ रूप से यह नित्य है। इस प्रकार महर्षियों ने शास्त्र की अपौरुषेयता का भी समाधान कर दिया है। उन्होंने अर्थरूप से शास्त्रज्ञान को नित्य, अपौरुषेय एवं शब्द रूप से सादि एवं पौरुषेय कहा है।

श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार अब भी द्वादशांगी के ग्यारह अंगशास्त्र विद्यमान हैं और सुधर्मा स्वामी की वाचना प्रस्तुत होने से इनके रचनाकार भी सुधर्मा स्वामी माने गये हैं। ग्यारह अंग हैं-1. आचारांग, 2. सूत्रकृतांग, 3. स्थानांग, 4. समवायांग, 5. भगवतीसूत्र, 6. ज्ञाता धर्म कथा, 7. उपासक दशा, 8. अंतकृद्दशा,

9. अनुत्तरौपपातिक, 10. प्रश्न व्याकरण, और 11. विपाक सूत्र। इनमें अन्तकृद्दशा का आठवाँ स्थान है। उपांग, मूल, छेद और प्रकीर्ण सूत्रों की अपेक्षा प्रधान होने से इनको अंग शास्त्र माना गया है।

नाम और महत्त्व

प्रस्तुत शास्त्र ''अंतगडदसा'' के नाम की सार्थकता स्वयं इसके अध्ययन से विदित हो जाती है। यद्यपि मोक्षगामी पुरुषों की गौरव गाथा तो अन्य शास्त्रों में भी प्राप्त होती है, पर इस शास्त्र में केवल उन्हीं सन्त सतियों का जीवन-परिचय है, जिन्होंने इसी भव से जन्म-जरा-मरण रूप भवचक्र का अन्त कर दिया अथवा अष्टविध कर्मों का अन्त कर जो सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गए। सदा के लिए संसार-लीला का अन्त करने वाले (अंतगड) जीवों की साधना (दशा) का वर्णन करने से ही इसका 'अंतगडदसाओ' नाम रखा गया है।

इसके पठन-पाठन और मनन से हर भव्य जीव को अन्त-क्रिया की प्रेरणा मिलती है, अत: यह परम कल्याणकारी ग्रन्थ है। उपासक दशा में एक भव से मोक्ष जाने वाले श्रमणोपासकों का वर्णन है, किन्तु इस आठवें अंग 'अन्तकृद्दशा' में उसी जन्म में सिद्ध गति प्राप्त करने वाले उत्तम श्रमणों का वर्णन है। अत: परम-मंगलमय है और इसीलिये लोक-जीवन में इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वर्णन-शैली

ग्रन्थों की रोचकता को उनकी वर्णन-शैली से भी आँकने की प्रथा है। अच्छी से अच्छी बातें भी अरोचक ढंग से कहने पर उतना असर नहीं डालतीं जितना कि एक साधारण बात भी सुन्दर व व्यवस्थित ढंग से कहने पर श्रोता के चित्त को आकृष्ट कर लेती है। प्रस्तुत ग्रन्थ की वर्णन शैली भी व्यवस्थित है। इसमें प्रत्येक साधक के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यंतरायतन, राजा, माता-पिता, धर्माचार्य, धर्मकथा, इहलोक एवं परलोक की ऋद्धि, पाणिग्रहण, प्रीतिदान, भोगों का परित्याग, प्रव्रज्या, दीक्षाकाल, श्रुतग्रहण, तपोपधान, संलेखना और अन्तक्रिया स्थान का उल्लेख किया गया है।

'अंतकृद्दशा' में वर्णित साधक पात्रों के परिचय से प्रकट होता है कि श्रमण भगवान महावीर के शासन में विभिन्न जाति एवं श्रेणि के व्यक्तियों को साधना में समान अधिकार प्राप्त था। एक ओर जहाँ बीसियों राजपुत्र-राजरानी और गाथापति साधना-पथ में चरण से चरण मिला कर चल रहे हैं, दूसरी ओर वहीं कतिपय उपेक्षित वर्ग वाले और मनुष्यघाती तक भी ससम्मान इस साधना क्षेत्र में आकर समान रूप से आगे बढ़ रहे हैं। कर्मक्षय कर सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त होने में किसी को कोई रुकावट नहीं, बाधा नहीं। 'हरि को भजे सो हरि को होई' वाली लौकिक उक्ति अक्षरश: चरितार्थ हुई है। कितनी समानता, समता और आत्मीयता भरी थी, उन सूत्रकारों के मन में ? वय की दृष्टि से अतिमुक्त जैसे बाल मुनि और गज सुकुमार जैसे राजप्रासाद के दुलारे गिने जाने वाले भी इस क्षेत्र में उतर कर सिद्धि

प्राप्त कर गये। शास्त्रकार की यह रचना शैली विश्व के मानव मात्र को कल्याण-साधना में पूर्णरूप से प्रेरित एवं उत्साहित करती है।

परिचय

समवायांग में ''अंतकृद्दशा'' का परिचय इस प्रकार मिलता है-अंतकृद्दशा में अन्तकृत आत्माओं के नगर, उद्यान, चैत्य-व्यंतरालय, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य, धर्मकथा, लौकिक और पारलौकिक ऋद्धि, भोग, परित्याग, प्रव्रज्या, श्रुतग्रहण, उपधान, तप, प्रतिमा, बहुत प्रकार की क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच और सत्य सहित 17 प्रकार का संयम, उत्तम ब्रह्मचर्य, अकिंचनता, तपः क्रिया और समिति-गुप्ति तथा अप्रमाद योग, उत्तम संयम आप्त पुरुषों के स्वाध्याय-ध्यान का लक्षण, चार प्रकार के कर्मक्षय करने पर केवलज्ञान की प्राप्ति, जिन्होंने संयम का पालन किया, पादोपगमन संथारा किया और जहाँ जितने भक्त का छेदन करना था वह करके अन्तकृत मुनिवर अज्ञान रूप अन्धकार से मुक्त हो सर्वश्रेष्ठ मुक्तिपद प्राप्त कर गये, ऐसे अन्यान्य वर्णन भी इसमें विस्तार के साथ कहे गए हैं।

अंतकृद्दशा सूत्र की परिमित वाचना एवं संख्येय अनुयोग द्वार हैं, यावत् संख्येय संग्रहणी है। अंग की अपेक्षा यह आठवाँ अंग है। इसके एक श्रुत स्कन्ध, दश अध्ययन और सात वर्ग हैं। दश उद्देशन काल और दश ही समुद्देशन काल बतलाए हैं। (समवायांग, पृष्ठ 251, हैदराबाद)

नन्दी सूत्र-गत परिचय से समवायांग के इस परिचय में यह विशेषता है कि यहाँ क्षमा, आर्जव, मार्दव, शौच आदि यति धर्म का स्वरूप बताने के साथ स्वाध्याय और ध्यान का लक्षण भी बताया गया है। सम्भव है आज का 'अंतकृद्दशा' कोई भिन्न वाचना का हो। इसमें स्त्री, पुरुष, बालक और वृद्ध साधकों की कठोर साधना गायी गई है। महामुनि गजसुकुमाल के आत्मध्यान का भी वर्णन है। पर उसमें ध्यान की विशेष परिपाटी या लक्षण का पृथक् कोई उल्लेख नहीं मिलता। कदाचित् संक्षेपीकरण के समय देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने इसे कम कर दिया हो, अथवा प्राप्त वाचना में इसी प्रकार का पाठ हो।

अध्ययन और वर्ग का परिचय भी समवायांग सूत्र में भिन्न प्रकार से है। नन्दीकार जहाँ ''अंतगडदसा'' का एक श्रुत स्कन्ध, आठ वर्ग और आठ ही उद्देशन काल बताते हैं, वहाँ समवायांग में एक श्रुत स्कन्ध, दस अध्याय तथा 7 वर्ग बतलाए हैं। आचार्य श्री अमोलक ऋषिजी म.सा. ने दश अध्याय का एक वर्ग और सात वर्ग, यों आठ वर्ग लिखे हैं। पर उद्देशन काल दश कहे हैं, जबकि नन्दीसूत्र में आठ उद्देशन काल बतलाए हैं। इससे प्रमाणित होता है कि समवायांग सूत्र में निर्दिष्ट 'अंतगडदसा' वर्तमान 'अंतगडदसा' से कोई भिन्न था। वर्तमान में उपलब्ध सूत्र ही नन्दी सूत्र में निर्दिष्ट अंतगडदसा है।

सेवा-धर्म

जिस प्रकार श्रमण साधक के लिये समिति-गुप्ति का पालन करना प्रधान धर्म है, उसी प्रकार गृहस्थ श्रावक के लिये सेवा-धर्म प्रधान है। 'अंतगडदसा' सूत्र में आया है कि श्रीकृष्ण श्रमण धर्म को श्रेष्ठ समझते हुए भी संसार-त्याग करने में समर्थ नहीं हुए। अत: उन्होंने सेवा कार्य को ही जीवन का उद्देश्य बनाया। उन्होंने अपनी माता देवकी के पुत्र-पालन की भावना को पूर्ण कर मातृसेवा का आदर्श प्रस्तुत किया। श्री कृष्ण अर्द्धभरत के स्वामी (राजा) थे तथा राजकीय ठाट-बाट के साथ भगवान श्री अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जा रहे थे। मार्ग में एक वृद्ध पुरुष को देखा जो जरा से जर्जरित, क्लान्त व थका हुआ था। वह अपने घर के बाहर पड़े ईंटों के विशाल ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर में रख रहा था। वासुदेव श्री कृष्ण ने उस पुरुष के प्रति करुणार्द्र होकर उस पर अनुकम्पा की और उस ढेर में से एक ईंट स्वयं ने उठाई और उसके घर में रख दी। इससे प्रेरित हो उनके साथ के सैकड़ों पुरुषों ने एक-एक ईंट उठाकर सम्पूर्ण ढ़ेर को घर में पहुँचा दिया। इससे समाज-सेवा का महत्त्व तो प्रकट होता ही है, साथ ही राजा के द्वारा प्रजा के प्रति वात्सल्य सेवाभाव रूप कर्तव्य का भी बोध होता है। उन्होंने अपने लघु भ्राता श्री गजसुकुमाल का राज्याभिषेक कर भ्रातृ-प्रेम का भी उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। इतना ही नहीं उन्होंने राज्य में उद्घोषणा कराई कि कोई भी व्यक्ति जो संयम धारण करना चाहता है, वह संयम ले। उसके आश्रित परिवार का भार उठाने का दायित्व राजा अपने पर लेता है। इससे उनका वात्सल्य धर्म प्रकट होता है। इस प्रकार परिवार, समाज, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने सेवा धर्म के महत्त्व को प्रकट किया।

दर्शनाराधना

सेठ सुदर्शन ने सुना कि भगवान महावीर नगर के बाहर उद्यान में पधारे हैं तो सेठ सुदर्शन अर्जुनमाली के उपद्रव की परवाह न करते हुए भगवान महावीर के दर्शनार्थ नगर से बाहर निकले और मृत्यु का खतरा उठाया। इस प्रकार धर्म पर दृढ़ आस्था रूप आराधना का सुन्दर रूप प्रस्तुत कर सेठ सुदर्शन ने अपना सुदर्शन नाम सार्थक किया।

ज्ञानाराधना

गौतमकुमार, समुद्रकुमार आदि मुनियों ने ग्यारह अंगों का, जालि-मयालि आदि मुनियों ने चौदह पूर्वों का अध्ययन किया। इस प्रकार अनेक महापुरुष ज्ञानाराधना के साथ तप-संयम का पालन कर सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुए।

चारित्राराधना

यह आगम चारित्राराधना से पूरा भरा है। सभी साधकों ने गृहस्थावस्था का त्याग कर संयम ग्रहण किया तथा समिति-गुप्ति का पालन कर चारित्र धर्म की आराधना की; कारण कि, चारित्राराधना सभी

साधनाओं की आधार भूमि है। चारित्र के बिना सभी आराधनाएँ अधूरी व अकार्यकारी हैं। इस आगम में वर्णित सभी महापुरुषों ने उत्कृष्ट चारित्र की आराधना कर मुक्ति प्राप्त की है।

तप साधना

अन्तकृद्दशा सूत्र के वर्णनों पर गहराई से चिन्तन किया जाये तो साधना-क्षेत्र की विविध सामग्रियाँ उपलब्ध होती हैं।

सामान्य तौर से संयम और तप की विमल साधना से मुक्ति की प्राप्ति मानी गयी है। संयम का साधन ज्ञानपूर्वक ही होता है, अत: उसके लिए जीवाजीवादि का तत्त्व-ज्ञान आवश्यक माना गया है। विषय-कषाय को जीतने के लिए ज्ञान या ध्यान का बल पुष्ट साधन है और तप, ज्ञान-ध्यान का साधन है, अथवा ज्ञान ध्यान स्वयं भी एक प्रकार का तप है। फिर भी व्यवहार दृष्टि से यह जिज्ञासा हो सकती है कि क्या ज्ञान साधना से मुक्ति होती है ? या ध्यान से या कठोर तप साधना से या उपशम से ?

अंतगडदसा सूत्र के मनन से ज्ञात होता है कि गौतम आदि 18 मुनियों के समान 12 भिक्षु प्रतिमाओं एवं गुणरत्न संवत्सर तप की साधना से भी साधक कर्मक्षय कर मुक्ति पा लेता है। अनीकसेनादि मुनि 14 पूर्वों के ज्ञान में रमण करते हुए सामान्य बेले-बेले की तपस्या से कर्मक्षय कर मुक्ति के अधिकारी बन गए। अर्जुनमाली ने उपशमभाव-क्षमा की प्रधानता से केवल छह मास बेले-बेले की तपस्या कर सिद्धि पा ली। दूसरी ओर अतिमुक्त कुमार ने ज्ञानपूर्वक गुणरत्न तप की साधना से सिद्धि पाई और गजसुकुमाल ने बिना शास्त्र पढ़े और लम्बे समय तक साधना एवं तपस्या किए बिना ही केवल एक शुद्ध ध्यान के बल से ही सिद्धि प्राप्त कर ली। इससे प्रकट होता है कि ध्यान भी एक बड़ा तप है। काली आदि रानियों ने संयम लेकर लम्बे समय तक कठोर साधना से सिद्धि पाई। इस प्रकार कोई सामान्य तप से, कोई कठोर तप से, कोई क्षमा की प्रधानता से तो कोई अन्य केवल आत्म-ध्यान की अग्नि में कर्मों को झोंक कर सिद्धि के अधिकारी बन गए।

यह है कि शास्त्रों का गम्भीर अभ्यास और लम्बे काल का कठोर तप चाहे हो या न हो, यदि कर्म हल्के हैं और आत्मध्यान में मन अडोल है तो अल्प काल में भी मुक्ति हो सकती है।

विविध प्रकार के तप

अंतगडदसा सूत्र में ध्यान की साधना का तो स्पष्ट रूप नहीं मिलता, पर तपस्या के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। सर्वप्रथम 12 भिक्षु प्रतिमाओं का वर्णन है, जिनका विस्तृत उल्लेख दशाश्रुत स्कन्ध में मिलता है। दूसरा गुण रत्न संवत्सर तप है जो गौतमकुमार आदि मुनियों के द्वारा साधा गया। इसके लिए सैलाना से प्रकाशित अंतगडदसा के टिप्पण में ऐसा लिखा है कि प्राचीन धारणा के अनुसार इसका आराधना काल ऋतुबद्ध यानी 8 मास है; परन्तु **भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 में खंदक मुनि के**

अधिकार में इसका रूप इस प्रकार उपलब्ध होता है-''पहले महीने एकान्तर उपवास का पारणा करना, दूसरे महीने में 2-2 उपवास का पारणा करना, तीसरे महीने में 3-3 उपवास का पारणा करना, चौथे महीने में 4-4 उपवास का पारणा, पाँचवें महीने में 5-5 का, छठे महीने में 6-6 का, इस प्रकार बढ़ते हुए 16वें महीने में 16-16 उपवास का पारणा करना, दिन में उत्कट आसन से आतापना लेना और रात में वीरासन से खुले बदन डांस आदि के परीषह सहना।'' यह इस तप का स्वरूप बताया गया है।

तीसरा तप है रत्नावली। इसमें एक उपवास से लेकर ऊँचे 16 तक की तपस्या चढ़ाव-उतार से की जाती है। मध्य में बेले और आदि अन्त में उपवास, बेला, तेला की तपस्या की जाती है। चारों परिपाटियों में चार वर्ष 3 मास और 6 दिन तप के और 352 दिन पारणे के होते हैं।

चौथा तप है कनकावली। रत्नावली के समान ही इसमें भी उपवास से 16 तक तप का चढ़ाव-उतार होता है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें 3 स्थानों पर रत्नावली के षष्ठ तप के बदले अष्टम तप किया जाता है। चारों परिपाटियों में 4 वर्ष 9 मास और 26 दिन तप के और 352 पारणे होते हैं। एक परिपाटी में 1 वर्ष 2 मास और 14 दिन तप के तथा 88 पारणे होते हैं।

पाँचवाँ तप है लघुसिंहनिष्क्रीड़ित। इसमें जैसे शेर आगे पीछे कदम रखता है, वैसे ही उपवास से लेकर 5 तक की तपस्या में आगे बढ़ना और पीछे हटना, इस प्रकार 4 परिपाटियाँ की जाती हैं। एक परिपाटी में 5 मास और 4 दिन के तप एवं 33 पारणे होते हैं। चार परिपाटियों में 1 वर्ष 8 मास 16 दिन के तप और 132 पारणे होते हैं।

छठा तप महासिंह निष्क्रीड़ित है। इसमें ऊँचे से ऊँचे 16 तक का तप होता है। साधना काल 6 वर्ष 2 मास और 12 दिन में 5 वर्ष 6 मास और 8 दिन तप के तथा 244 पारणे होते हैं।

सातवाँ तप सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा, आठवाँ अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा, नवमाँ नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा और दशवाँ दश-दशमिका भिक्षु प्रतिमा है।

ये चारों तप साधुओं की अपेक्षा से कहे गए हैं। इन चारों प्रतिमाओं में भोजन की दत्ति की अपेक्षा तप का आराधन किया जाता है। सप्त-सप्तमिका में प्रथम सप्ताह में एक दत्ति भोजन की व एक दत्ति जल की, दूसरे सप्ताह में दो दो, यावत् सातवें सप्ताह में सात दत्ति भोजन की और सात ही जल की ग्रहण की जाती है। इस तप के 49 दिन होते हैं। ऐसे अष्ट-अष्टमिका के 64 दिन, नव-नवमिका के 81 दिन और दश-दशमिका के 100 दिन होते हैं। अष्ट-अष्टमिका में दिन के प्रमाण से प्रथम अष्टक में 1 दत्ति और आठवें में आठ दत्ति इस प्रकार नव नवमिका में नव दिन और दशमिका में दश दिन से एक-एक दत्ति बढ़ानी चाहिए।

ग्यारहवाँ तप लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा है। इसमें अनानुपूर्वी क्रम से 1 उपवास से 6 उपवास तक 5 लाइन की जाती है। एक परिपाटी में 75 दिन का तप और 25 पारणे होते हैं। इस प्रकार चार परिपाटी में तप की पूर्ण आराधना की जाती है।

बारहवाँ महासर्वतोभद्र तप है। इसमें एक उपवास से 7 उपवास तक पूर्व कथित प्रकार से किये जाते हैं। एक परिपाटी में 196 दिन तप और 49 पारणे होते हैं।

तेरहवीं भद्रोत्तर प्रतिमा है। इस तप में 5, 6, 7, 8, 9 इस प्रकार अनानुपूर्वी से पाँच पंक्ति में तपस्या की एक परिपाटी पूर्ण होती है, जिसमें 6 मास 20 दिन का समय लगता है। तप के दिन 175 और 25 पारणे होते हैं।

चौदहवाँ आयंबिल वर्धमान तप है। इसमें 1 से 100 तक आयंबिल बढ़ाये जाते हैं। पारणा के दिन बीच में उपवास किया जाता है। आयंबिल के कुल दिन 5050 और उपवास के 100 दिन होते हैं। साधारण सा दिखने पर भी यह तप बड़ा महत्त्वशाली और कठिन है।

पन्द्रहवाँ मुक्तावली तप है। इसमें ऊँचे से ऊँचा 16 तक का तप होता है। एक परिपाटी में 285 दिन का तप और 60 पारणे होते हैं। चारों परिपाटियाँ 3 वर्ष और 10 मास में पूर्ण हो जाती हैं।

पर्युषण में अंतगड़ का वाचन

बहुत बार यह जिज्ञासा होती है कि पर्युषण में अन्तकृद्दशा का वाचन आवश्यक क्यों माना जाता है? अन्य किसी सूत्र का वाचन क्यों नहीं किया जाता? बात ठीक है, शास्त्र सभी मांगलिक हैं और उनका पर्व दिनों में वाचन भी हो सकता है, कोई दोष की बात नहीं है। विचार केवल इतना ही है कि पर्वाधिराज के इन अल्प दिनों में वैसे सूत्र का वाचन होना चाहिये जो आठ ही दिनों में पूरा हो सके और आत्म-साधना की प्रेरणा देने में भी पर्याप्त हो, अंग या उपांग सूत्रों में ऐसा कोई अंग सूत्र नहीं जो इस मर्यादित काल में पूरा हो सके। अनुत्तरौपपातिक दशा है तो वह अति लघु होने के साथ इतनी प्रेरक सामग्री प्रस्तुत नहीं करता। फिर उसमें वर्णित साधक अनुत्तर विमान के ही अधिकारी होते हैं, मोक्ष के नहीं। परन्तु अन्तकृद्दशा में ये दोनों बातें हैं। वह अतिलघु या महत् आकार में नहीं है, साथ ही उसमें ऐसे ही साधकों की जीवन गाथा है जो तप-संयम से कर्मक्षय कर पूर्णानंद के भागी बन चुके हैं। अन्तकृद्दशा के उद्देश-समुद्देश का काल भी 8 दिन का है और पर्युषण का आष्टाह्निक पर्व भी अष्टगुणों की प्राप्ति एवं अष्ट कर्मों की क्षीणता के लिये है। अत: पर्युषण में इसी का वाचन उपयुक्त है।

प्रस्तुत सूत्र में छोटे-बड़े ऐसे साधकों की जीवन गाथा बताई है जिनसे आबाल वृद्ध सब नर-नारी प्रेरणा ले सकें और अपनी योग्यता के अनुसार साधना कर आत्मा का विकास कर सकें। यही

खास कारण है कि पूर्वाचार्यों ने पर्युषण के आष्टाह्निक पर्व में आठ वर्ग वाले इस मंगलमय शास्त्र का बोधप्रद वाचन निश्चित किया। जैसे मंगल हेतु एवं ऐतिहासिक परिचय प्रदान करने को कल्पसूत्र में महावीरादि के पंच कल्याण और पट्टावली का वाचन आवश्यक माना गया है, वैसे ही लगता है कि आत्म-साधना में प्रेरणा प्रदान करने के लिए अन्तकृद्दशा का वाचन भी आरम्भ किया गया हो।

वीर निर्वाण सम्वत् 993 के समय 'कल्प-सूत्र' का सामूहिक वाचन होने लगा था, सम्भव है। उस समय साधना प्रेमी सन्तों ने यह सोचकर कि कल्पसूत्र में केवल तीर्थङ्कर भगवान की गुण-गाथा है, चतुर्विध संघ की साधना के लिये वैसी प्रेरणादायक सामग्री नहीं है अत: इसका वाचन आवश्यक माना हो, अथवा तो समाज में आडम्बर और जन्म महोत्सव की भक्ति आदि की ओर बढ़ते मोड़ को बदलने के लिए अन्तकृद्दशा का वाचन चालू किया हो। इतना सुनिश्चित है कि पर्वाधिराज में अंतकृद्दशा का वाचन सहेतुक एवं उपयोगी है।

उपयोग पूर्वक कार्य करने पर भी वीतराग वाणी से कहीं विपरीत लिखा हो तो हार्दिक पश्चात्ताप के साथ मैं अपने उद्गार समाप्त करता हूँ।

(ये उद्गार सन् 1965 में प्रकाशित 'सिरि अंतगडदसाओ' के प्रथम संस्करण एवं सन् 1987 में प्रकाशित तृतीय संस्करण से उद्धृत हैं। आचार्य प्रवर ने प्रथम उद्गार श्रावण पूर्णिमा सम्वत् 2020 को पीपाड़शहर में प्रकट किये थे।)

श्रावण पूर्णिमा, विक्रम सं. 2020
पीपाड़शहर
(सन् 1965 में प्रकाशित प्रथम संस्करण से उद्धृत)

शास्त्र पढ़ने की विधि

ज्ञान-वृद्धि के लिये छद्मस्थ आचार्यों के ग्रन्थ और वीतराग प्रणीत शास्त्रों के पठन-पाठन की विधि में बहुत अन्तर है। ग्रन्थों के पठन-पाठन में काल-अकाल और स्वाध्याय-अस्वाध्याय कृत प्रतिबन्ध खास नहीं होता, जबकि शास्त्रवाणी जिसको आगम भी कहते हैं, के पठन-पाठन में काल-अकाल का ध्यान रखना आवश्यक है।

वीतराग प्रणीत शास्त्र अन्यान्य ग्रन्थों की तरह हर किसी समय और किसी भी स्थान में नहीं पढ़े जाते। उनके पठन-पाठन का अपना नियत समय है। चार सन्ध्याओं को और पाँच महाप्रतिपदाओं को शास्त्र का पठन-पाठन नहीं किया जाता। अतिरिक्त दिनों में जो कालिक शास्त्र हैं, वे दिन-रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही नियमानुसार शरीर और आकाश में अस्वाध्यायों को छोड़कर पढ़े जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपांग, कुछ मूल और कुछ छेद आदि उत्कालिक कहे जाते हैं, वे दिन-रात्रि के चारों प्रहर में पढ़े जा सकते हैं।

स्वाध्याय करने वाले धर्मप्रेमी भाई-बहिनों को सर्वप्रथम गुरु महाराज की आज्ञा लेकर अक्षर, पद और मात्रा का ध्यान रखते हुए शुद्ध उच्चारण से पाठ करना चाहिये। आगम शास्त्र अंग, उपांग, मूल और छेद रूप से अनेक रूपों में विभक्त हैं, उन सबमें मुख्य रूप से कालिक और उत्कालिक के विभाग में सबका समावेश हो जाता है। स्वाध्याय करते समय स्वाध्यायी को यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह स्थान और समय स्वाध्याय के योग्य है या नहीं ? जहाँ अस्वाध्याय के कारण हों, वहाँ स्वाध्याय करने से ज्ञानाचार में दोष लगने की सम्भावना रहती है। अत: ज्ञान के चौदह अतिचारों में निम्न बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है, जो इस प्रकार हैं :-

(1) सूत्र के अक्षर उलट-पलट कर पढ़ना।
(2) एक शास्त्र के पद को दूसरे शास्त्र के पद से मिलाकर पढ़ना।
(3) सूत्र-पाठ में अक्षर कम करना।
(4) सूत्र पाठ में अधिक अक्षर बोलना।
(5) पदहीन करना।
(6) बिना विनय के पढ़ना।
(7) योग-हीन-मन, वचन और काया के योगों की चपलता से पढ़ना।
(8) घोषहीन-जिस अक्षर का जिस घोष से उच्चारण करना हो, उसका ध्यान नहीं रखना।
(9) पढ़ने वाले पात्र का ध्यान न रखकर अयोग्य को पाठ देना।
(10) आगम पाठ को अविधि से ग्रहण करना।
(11) अकाल-जिस सूत्र का जो काल हो, उसका ध्यान न रखकर अकाल में स्वाध्याय करना।
(12) कालिक-शास्त्र पठन के काल में स्वाध्याय नहीं करना।

(13) अस्वाध्याय–अस्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय करना।

(14) स्वाध्याय की स्थिति में स्वाध्याय नहीं करना।

अस्वाध्याय के प्रकार–

अस्वाध्याय का अर्थ यहाँ पर स्वाध्याय का निषेध नहीं, किन्तु जिस क्षेत्र और काल में स्वाध्याय का वर्जन किया जाता है, वह अपेक्षित है, इस दृष्टि से अस्वाध्याय मुख्य रूप से दो प्रकार का होता है–(1) आत्म समुत्थ (2) पर समुत्थ। अपने शरीर में रक्त आदि से अस्वाध्याय का कारण होता है। अत: उसे आत्म समुत्थ कहा है। स्थानांग और आवश्यक निर्युक्ति आदि में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। वहाँ पर दस औदारिक शरीर की, दस आकाश सम्बन्धी, पाँच पूर्णिमा तथा पाँच महाप्रतिपदा की और चार सन्ध्याएँ, कुल मिलाकर 34 अस्वाध्याय कही गई हैं, जो इस प्रकार हैं–

दस आकाश सम्बन्धी–

(1) **उल्कापात**–तारे का टूटना, उल्कापात में एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।

(2) **दिग्दाह**–दिशा में जलते हुए बड़े नगर की तरह ऊपर की ओर प्रकाश दिखता है और नीचे अन्धकार प्रतीत हो, उसे दिग्दाह कहते हैं। इसमें भी एक प्रहर का अस्वाध्याय होता है।

(3) **गर्जित**–मेघ का गर्जन होने पर दो प्रहर का अस्वाध्याय।

(4) **असमय में गर्जन**–बिजली चमकना। आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक वर्षा–ऋतु में गर्जित और विद्युत् की अस्वाध्याय नहीं होती है।

(5) **निर्घात**–मेघ के होने या न होने की स्थिति में कड़कने की आवाज हो तो अहोरात्रि का अस्वाध्याय माना जाता है।

(6) **यूपक**–शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को चन्द्र प्रभ से सन्ध्या आवृत्त होने के कारण तीनों दिन प्रथम प्रहर में अस्वाध्याय माना जाता है।

(7) **धूमिका**–कार्तिक से माघ मास तक मेघ का गर्भ जमता है, इस समय जो धूम वर्ण की सूक्ष्म जल रूप धूवर पड़ती है, वह धूमिका कहलाती है। जब तक धूमिका रहती है, तब तक स्वाध्याय का वर्जन करना चाहिये।

(8) **महिका**–शीतकाल में सफेद वर्ण की सूक्ष्म अप्काय रूप धूवर गिरती है, उसे महिका कहते हैं। जब तक धूवर गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।

(9) **यक्षादीप्त**–कभी–कभी किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा रह–रह कर प्रकाश होता हो, उसे यक्षादीप्त कहते हैं। जब तक वह साफ दिखाई पड़े, तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।

(10) **रजोद्घात**–वायु के कारण आकाश में चारों ओर जो धूल छा जाती है, उसे रजोद्घात कहते हैं। जब तक यह रहे, तब तक अस्वाध्याय मानना चाहिये।

दस औदारिक शरीर सम्बन्धी–

(11–13) तिर्यञ्च के हाड़, मांस और रक्त, साठ हाथ के अन्दर हों, तथा साठ हाथ के भीतर बिल्ली आदि ने चूहे को मारा हो तो, अहोरात्रि का अस्वाध्याय कहा गया है। यदि मनुष्य सम्बन्धी हाड़–मांस

और रक्त आदि हो, तो सौ हाथ दूर तक अस्वाध्याय माना गया है। तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का साठ हाथ तक होता है। काल की अपेक्षा टीकाकारों ने एक अहोरात्रि का समय माना है, किन्तु वर्तमान में कलेवर हटाकर स्थान को धोकर साफ कर लेने के बाद अस्वाध्याय नहीं माना जाता है। बहिरंग के ऋतुधर्म का तीन दिन और बालक-बालिका के जन्म का क्रमश: सात और आठ दिन का अस्वाध्याय माना जाता है।

(14) **अशुचि**-मल, मूत्र और गटर आदि स्वाध्याय-स्थल के पास हो अथवा मलादि दृष्टिगोचर हो, तो वहाँ स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

(15) **श्मशान**-श्मशान के चारों ओर सौ-सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना गया है।

(16) **चन्द्रग्रहण**-चन्द्रग्रहण में कम से कम आठ और अधिक से अधिक बारह प्रहर तक अस्वाध्याय माना गया है। आचार्यों ने यदि उदित चन्द्र ग्रसित हो, तो चार प्रहर रात के व चार प्रहर दिन के अस्वाध्याय मानने का निर्णय किया है।

(17) **सूर्यग्रहण**-सूर्यग्रहण का कम से कम आठ, बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर तक अस्वाध्याय माना गया है। यदि पूरा ग्रहण हो तो सोलह प्रहर का अस्वाध्याय माना जाता है।

(18) **पतन**-राजा के निधन, राजा या उत्तराधिकारी की मृत्यु होने पर जब तक दूसरा राजा सत्तारूढ़ न हो, तब तक अस्वाध्याय माना जाता है।

(19) **राजव्युद्ग्रह**-राजाओं में परस्पर संग्राम होता रहे तथा इस कारण जब तक शान्ति न हो, तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिये।

(20) **औदारिक शरीर**-उपाश्रय के निकट तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का कलेवर पड़ा हो तो साठ हाथ तथा यदि मनुष्य का कलेवर हो तो सौ हाथ तक अस्वाध्याय माना जाता है।

(21-30) **पाँच महापूर्णिमा**-1. आषाढ़ी पूर्णिमा, 2. भादवा पूर्णिमा, 3. आश्विनी पूर्णिमा, 4. कार्तिकी पूर्णिमा, 5. चैत्र की पूर्णिमा। **पाँच प्रतिपदा**-1. श्रावण कृष्णा प्रतिपदा, 2. आसोज कृष्णा प्रतिपदा, 3. कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा, 4. मगसर कृष्णा प्रतिपदा, 5. वैशाख कृष्णा प्रतिपदा। इन दिनों में इन्द्र महोत्सव होते थे। अत: इन दस दिनों में अस्वाध्याय माना गया है।

(31-34) **चार संध्या**-दिन एवं रात्रि में संध्याकाल अर्थात् प्रात:, सायं, मध्याह्न तथा मध्य-रात्रि में दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्त का अस्वाध्याय माना जाता है। आगम तीन प्रकार के होते हैं-1. मूल पाठ को सुत्तागम, 2. अर्थ के पठन-पाठन को अर्थागम, 3. सूत्र बोलकर अर्थ पढ़ना तदुभयागम कहलाता है। अस्वाध्याय काल में सूत्र के मूल पाठ व उसके अर्थ को पढ़ने का निषेध समझना चाहिये। इस प्रकार अस्वाध्याय को छोड़कर, शुद्ध उच्चारण से शास्त्र का स्वाध्याय करना महती कर्म-निर्जरा का कारण होता है। अत: सुज्ञ पाठकों को प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये।

उत्तराध्ययन सूत्र में प्रभु ने कहा है कि-'सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ।' (उत्तरा. 29) अर्थात् स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ संख्या
	प्रकाशकीय	**III**
	प्राक्कथन	**V**
	उद्गार	**IX**
	शास्त्र पढ़ने की विधि	**XXII**
1.	**प्रथम वर्ग (10)**	**1–17**
	प्रथम अध्ययन (गौतम)	6
	दूसरे से दसवाँ अध्ययन	17
	(समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कांपिल्य, अक्षोभ, प्रसेन कुमार, विष्णु कुमार)	
2.	**द्वितीय वर्ग (8)**	**18–19**
	प्रथम से आठवाँ अध्ययन	18
	(अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, पूरण, अभिचन्द्र, धरण)	
3.	**तृतीय वर्ग (13)**	**20–85**
	प्रथम अध्ययन (अनीकसेन)	20
	दूसरे से छठा अध्ययन	26
	(अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन, शत्रुसेन)	
	सातवाँ अध्ययन (सारण)	27
	आठवाँ अध्ययन (गजसुकुमाल)	28
	नवमाँ अध्ययन (सुमुख)	83
	दसवें से तेरहवाँ अध्ययन (दुर्मुख, कूपक, दारुक, अनादृष्टि)	85
4.	**चतुर्थ वर्ग (10)**	**86–90**
	प्रथम से दसवाँ अध्ययन	86
	(जालि, मयालि, उवयालि, पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, सत्यनेमि, दृढ़नेमि)	

5. **पंचम वर्ग (10)** **91–115**

प्रथम अध्ययन (पद्मावती) 91

दूसरे से आठवाँ अध्ययन 112

(गौरी, गान्धारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी)

नवें से दसवाँ अध्ययन (मूलश्री, मूलदत्ता) 114

6. **षष्ठ वर्ग (16)** **116–169**

प्रथम अध्ययन (मंकाई) 116

दूसरा अध्ययन (किंकम) 119

तीसरा अध्ययन (अर्जुनमाली मुद्गरपाणि) 120

चौथा (काश्यप) 150

पाँचवाँ अध्ययन (क्षेमक) 151

छठा अध्ययन (घृतिधर) 152

सातवाँ अध्ययन (कैलाश) 152

आठवाँ अध्ययन (हरिचन्दन) 153

नवाँ अध्ययन (वारत्त) 153

दसवाँ अध्ययन (सुदर्शन) 154

ग्यारहवाँ अध्ययन (पूर्णभद्र) 154

बारहवाँ अध्ययन (सुमनभद्र) 155

तेरहवाँ अध्ययन (सुप्रतिष्ठ) 155

चौदहवाँ अध्ययन (मेघ) 156

पन्द्रहवाँ अध्ययन (अतिमुक्त कुमार) 156

सोलहवाँ अध्ययन (अलक्ष) 168

7. **सप्तम वर्ग (13)** **170–172**

प्रथम से तेरहवाँ अध्ययन 170

(नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दसेना, मरुता, सुमरुता,
महामरुता, मरुदेव, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमति, भूतदिन्ना)

8.	**अष्टम वर्ग (10)**	**173–224**
	प्रथम अध्ययन (काली)	173
	दूसरा अध्ययन (सुकाली)	187
	तीसरा अध्ययन (महाकाली)	189
	चौथा अध्ययन (कृष्णा)	194
	पाँचवाँ अध्ययन (सुकृष्णा)	195
	छठा अध्ययन (महाकृष्णा)	200
	सातवाँ अध्ययन (वीरकृष्णा)	204
	आठवाँ अध्ययन (रामकृष्णा)	212
	नवमाँ अध्ययन (पितृसेनकृष्णा)	217
	दसवाँ अध्ययन (महासेनकृष्णा)	220
	परिशिष्ट –1 (सूक्तियाँ)	225
	परिशिष्ट –2 (विशिष्ट तथ्य)	226
	परिशिष्ट –3 (संदर्भ सामग्री)	227
	परिशिष्ट –4 (मुक्त आत्माओं का विवरण)	235
	परिशिष्ट –5 (प्रश्नोत्तर)	239
	परिशिष्ट –6 (भजन)	264
	परिशिष्ट–7 (प्रत्याख्यान)	278
	परिशिष्ट–8 (तप विधि चार्ट)	282

◆◆◆

पढमो वग्गो-प्रथम वर्ग

सूत्र 1

मूल- **तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं चम्पाए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था। वणखंडे वण्णओ। तीसे णं चम्पाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था। महया हिमवंत, वण्णओ।।1।।**

संस्कृत छाया- तस्मिन् काले तस्मिन् समये चम्पा नाम नगरी अभवत्, वर्ण्यः। तत्र चम्पायां नगर्यां उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र पूर्णभद्रं नाम चैत्यमभवत्। वनखण्डः वर्ण्यः। तस्यां चम्पायां नगर्यां कोणिको नाम राजा अभवत्। महत्तया हिमवन्तः, वर्णकः।।1।।

अन्वायार्थ-तेणं कालेणं = उस काल, **तेणं समएणं** = उस समय, **चम्पा नामं नयरी होत्था** = चम्पा नाम की नगरी थी, **वण्णओ** = (जो) वर्णनीय थी। **तत्थ णं चम्पाएउत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए** = वहाँ चम्पा नगरी में उत्तर पूर्व दिशा भाग में, **एत्थ णं पुण्णभद्दे नामं चेइए होत्था** = यहाँ पूर्णभद्र नाम का चैत्य था। **वणखंडे वण्णओ** = (यहाँ) वन खण्ड (भी) वर्णनीय था। **तीसे णं चम्पाए नयरीए कोणिए नामं राया होत्था** = उस चम्पा नगरी में कोणिक नाम का राजा था। **महया हिमवंत, वण्णओ** = (जो) महाहिमवान् पर्वत के समान वर्णनीय था।।1।।

भावार्थ-उस काल उस समय अर्थात् इसी अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरक के अन्तिम समय में, जबकि भगवान महावीर विचर रहे थे, वर्णन करने योग्य नगरियों में आदर्श एवं प्रतीक स्वरूप चम्पा नाम की नगरी थी। उस चम्पानगरी के ईशानकोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य था। वहाँ का वनखण्ड वर्णनीय अर्थात् मन को प्रफुल्लित कर देने वाला, नयनाभिराम और बड़ा रम्य था। उस चम्पा नगरी में कोणिक नामक राजा था,

जो क्षेत्रों की मर्यादाओं को बनाये रखने वाले महाहिमवान् पर्वत के समान सुसभ्य, मानव समाज की मर्यादाओं का संरक्षक और वर्णन करने योग्य एक सुशासक के सभी गुणों से सम्पन्न था।

टिप्पणी–तेणं कालेणं तेणं समएणं–यहाँ काल और समय एकार्थक होते हुए भी अपनी विशेषता लिये हुए हैं। काल वर्ष सूचक है, जबकि समय दिन सूचक है।

चम्पा नामं नयरी–''नयरी सोहन्ति जलमूलवच्छा'' यानी नगरी की शोभा जल, मूल और वृक्षों से होती है। चम्पानगरी धन–धान्य से परिपूर्ण, चोर–डाकुओं के भय से रहित एवं आजीविका के प्रचुर साधनों से युक्त थी। वहाँ के नागरिकों को सभी सुख–सुविधाएँ उपलब्ध थीं।

चेइए–पूर्णभद्र नाम का यक्षायतन पुराना एवं बहुत जनों द्वारा पूजित था। उसके चारों ओर एक बड़ा वर्णनीय उद्यान था। उस उद्यान की कान्ति–दीप्ति, काली, नीली, हरी, शीतल, स्निग्ध और तीव्र थी। वह पाँच वर्णों के सुगन्धित फूलों, सभी ऋतुओं के फलों और पुष्पों से युक्त था। उसके वृक्ष सदा मंजरियों, फूलों के गुच्छों एवं पत्तों के समूह से सुशोभित थे। वह दर्शकों के चित्त में प्रसन्नता पैदा करने वाला, अनुपम नयनाभिराम मनोरम एवं शोभनीय था।

महाहिमवान पर्वत की विशेषताएँ–1. हिमवान् पर्वत जिस प्रकार भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला है, उसी प्रकार राजा अपने राज्य की मर्यादा करने वाला होता है। 2. पर्वत बाहरी उपद्रवों से क्षेत्र की रक्षा करता है, वैसे ही राजा बाहरी हमलों से प्रजा की रक्षा करता है। 3. पर्वत में जिस तरह अनेक प्रकार की जड़ी–बूँटियाँ एवं औषधियाँ होती हैं, उसी तरह राजा में दया, शौर्य, गाम्भीर्य, दान आदि अनेक गुण होते हैं। 4. पर्वत जैसे भंयकर तूफानों में भी अचल रहता है, वैसे ही राजा भी अपनी नीति और मर्यादाओं में अचल रहता है। 5.पर्वत जैसे सभी प्राणियों का आधार है, वैसे राजा; प्रजा का आधार होता है।।1।।

सूत्र 2

मूल– **तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्जसुहम्मे थेरे जाव पंचहिं अणगार–सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चम्पा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव समोसरिए। परिसा णिग्गया जाव परिसा पडिगया।**

तेणं कालेणं तेणं समएणं अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी अज्ज जम्बू जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–जइ णं भंते ! समणेणं भगवया

महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?।। 2 ।।

संस्कृत छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्यसुधर्मा स्थविर: यावत् पंचभि: अणगार-शतै: सार्द्धं संपरिवृत्त: पूर्वानुपूर्व्या: चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् सुखं सुखेन विहरमाण: यत्रैव चम्पा नगरी यत्रैव पूर्णभद्र: चैत्य: तत्रैव समवसृत: । परिषद् निर्गता यावत् परिषद् प्रतिगता ।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये आर्य-सुधर्मण: अन्तेवासी आर्यो जम्बू यावत् पर्युपासीन: एवं अवादीत्-यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण यावत् (सिद्धगतिनामधेयं स्थानं) संप्राप्तेन सप्तमस्य अंगस्य उपासकदशानां अयम् अर्थ: प्रज्ञप्त: अष्टमस्य खलु भदन्त ! अंगस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् (सिद्धगतिं) संप्राप्तेन क: अर्थ: प्रज्ञप्त: ?।।2।।

अन्वायार्थ–तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय, **अज्जसुहम्मे थेरे जाव** = आर्य सुधर्मा स्थविर यावत्, **पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं** = पाँच सौ साधुओं के साथ, **संपरिवुडे** = घिरे हुए, **पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे** = पूर्व परम्परानुसार विचरते हुए, **गामाणुगामं दूइज्जमाणे** = ग्रामानुग्राम चलते हुए, **सुहंसुहेणं विहरमाणे** = सुखपूर्वक विहार करते हुए, **जेणेव चम्पा नयरी** = जहाँ चम्पा नगरी थी, **जेणेव पुण्णभद्दे चेइए** = जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, **तेणेव समोसरिए ।** = वहीं पधारे । **परिसा णिग्गया** = परिषद् आई, **जाव परिसा पडिगया** = यावत् परिषद् लौट गई ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय, **अज्ज सुहम्मस्स अंतेवासी** = आर्य सुधर्मा स्वामी के अन्तेवासी शिष्य, **अज्ज जंबू जाव** = आर्य जम्बू स्वामी यावत्, **पज्जुवासमाणे** = सेवा उपासना करते हुए, **एवं वयासी–** = इस प्रकार बोले-, **जइ णं भंते !** = ''हे पूज्य ! यदि, **समणेणं भगवया महावीरेणं** = श्रमण भगवान महावीर, **आइगरेणं जाव** = (धर्म) की आदि करने वाले यावत्, **संपत्तेणं** = (सिद्धगति नामक स्थान को) प्राप्त (प्रभु), **सत्तमस्स अंगस्स उवासगदसाणं** = ने सातवें अंग शास्त्र उपासकदशा का, **अयमट्ठे पण्णत्ते** = यह भाव प्रतिपादित किया है (तो), **अट्ठमस्स णं भंते ! अंगस्स** = हे भगवन् ! आठवें अंग शास्त्र, **अंतगडदसाणं समणेणं** = अन्तगडदशा का (उन) श्रमण ने, **जाव संपत्तेणं** = यावत् सिद्धगति प्राप्त प्रभु ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = क्या भाव प्ररूपित किया है ?।।2।।

भावार्थ–उस काल उस समय में अर्थात् इस अवसर्पिणी के चतुर्थ आरक के अन्तिम समय में स्थविर आर्य सुधर्मा पाँच सौ साधुओं के परिवार सहित पूर्व परम्परा अर्थात् तीर्थङ्कर परम्परा के अनुसार विचरते तथा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में सुख पूर्वक विहार करते हुए, उस चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक उद्यान में पधारे। नागरिकों के समूह आर्य सुधर्मा की सेवा में उपस्थित हुए। दर्शन, वन्दन के पश्चात् वे सभा के रूप में बैठे। परिषद् ने आर्य सुधर्मा का उपदेश सुना। उपदेश सुनकर जन–समूह अपने–अपने स्थान को लौट गया।

उस काल उस समय में आर्य सुधर्मा स्वामी के अन्तेवासी शिष्य आर्य जम्बू स्वामी ने अपने गुरु को सविधि सविनय वन्दन–नमन के पश्चात् उनकी पर्युपासना करते हुए इस प्रकार पूछा–''हे भवभयहारी भगवन्! यदि धर्म की आदि करने वाले विशेषण से लेकर सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त विशेषण से अलंकृत श्रमण भगवान महावीर ने सातवें अंग शास्त्र उपासक–दशा का यह अर्थ निरूपित किया है, तो हे पूज्यवर! अब आप मुझे यह बताने की कृपा कीजिये कि संसार से मुक्त हुए उन श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग–शास्त्र अन्तकृद्दशा में किस विषय का प्रतिपादन किया है ?

टिप्पणी–थेरे (स्थविर)–स्थविर तीनप्रकार के होते हैं–(अ) वय स्थविर–जो कम से कम 60 वर्ष की उम्र का हो, (ब) दीक्षा स्थविर–जो कम से कम 20 वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला हो, (स) श्रुत स्थविर–जो स्थानांग व समवायांग सूत्र के 'मर्म' का जानकार हो।

चम्पानगरी के भोगकुल, उग्रकुल, ब्राह्मण, क्षत्रिय, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि में से कोई भगवान को वन्दन करने के लिये, कोई पूजासत्कार, सम्मान व दर्शन के लिये तो कोई कुतूहल वश समवशरण में आये। भगवान का उपदेश सुनकर हृदय में धारण कर अनेकों ने जीवादि पदार्थों के सम्बन्ध में निर्णय करके अगार व अनगार धर्म को अंगीकार किया। परिषद् परम सन्तुष्ट होकर लौट गई। (उववाइय सूत्र)

सुधर्मा स्वामी का जन्म वाणिजक ग्राम के पास कोल्लाग सन्निवेश में हुआ। धम्मिल्ल ब्राह्मण आपके पूज्य पिता एवं भदिल्ला आपश्री की माता थी। मध्यमा पावा के महासेन उद्यान में गौतम स्वामी के साथ ग्यारह गणधरों में आपकी भी भगवान महावीर के चरणों में दीक्षा हुई थी। पचास वर्ष गृहवास में रहे। वीर निर्वाण के बाद बारह वर्ष छद्मस्थ रहे, आठ वर्ष केवली पर्याय का पालन कर एक सौ वर्ष की उम्र में सम्पूर्ण कर्मों को क्षय करके सिद्ध–बुद्ध और मुक्त हुए। आप स्वयं धर्म में स्थिर तथा दूसरों को भी स्थिर करने वाले थे अत: आपके लिये 'थेरे' विशेषण लगाया गया है। आपके गुणों का विशेष वर्णन श्री ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र के प्रथम अध्याय में उपलब्ध होता है, जिसे परिशिष्ट भाग में देखा जाना चाहिये।

जाव और वण्णओ शब्दों का प्रयोग–जाव शब्द का अर्थ है यावत् यानी तब तक। इस शब्द से पाठ संकोच कर यह इंगित किया जाता है कि इस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन अन्यत्र किया गया है, उसे यहाँ समझ लेना चाहिये। प्रसंगवश इसका खुलासा इस प्रकार है–

1. सुहम्मे थेरे जाव पंचहिं। यहाँ 'जाव' शब्द से तात्पर्य–आर्य सुधर्मा स्वामी का वर्णन पाठ जो ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन में ''अज्ज सुहम्मे नाम थेरे जाई सम्पन्ने, कुल सम्पन्ने–चउनाणोवगए'' है वहाँ तक समझना चाहिये।
2. भगवया महावीरेणं, आइगरेणं जाव संपत्तेणं। यहाँ 'जाव' शब्द नमोत्थुणं के पाठ में आइगरेणं से लेकर संपत्तेणं तक जो भगवान के विशेषण पद हैं उनका बोधक है। 'वण्णओ' शब्द का प्रयोग वस्तु का अर्थ प्रकट करने के लिए, विशेषता या उस पर प्रकाश डालने के लिए किया जाता है। वर्णनीय वस्तुएँ भी अनेक तथा उनके गुण भी अनेक है। जैसे राजा, रानी, नगर, पर्वत, उद्यान आदि। इनका वर्णन जिन–जिन स्थानों पर आया है, उनका भी संकेत होता है। अत: वस्तु स्थिति को समझाने तथा पाठों की पुनरावृत्ति न हो इसलिये 'जाव' और 'वण्णओ' शब्दों का बार–बार प्रयोग किया जाता है।

परिसा णिग्गया जाव परिसा पडिगया–परिसा णिग्गया जाव परिसा पडिगया (परिषद् आई यावत् परिषद् लौट गई) उस वक्त की प्रचलित भाषा में परिसा–परिषद् शब्द नागरिक अथवा ग्रामीण जनों के अर्थ में प्रयुक्त होता था, जो भगवान का अथवा धर्माचार्यों एवं धर्मोपदेशकों का धर्मोपदेश सुनने के लिए अपने अपने घरों से निकल कर आते थे एवं धर्म श्रवण के पश्चात् पुन: लौट जाते थे।।2।।

सूत्र 3

मूल– **एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता। जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठ वग्गा पण्णत्ता पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कइ अज्झयणा पण्णत्ता ?**

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा–

गोयम समुद्द सागर, गंभीरे चेव होइ थिमिए य।
अयले कंपिल्ले खलु, अक्खोभ पसेणई विण्हू ।।

संस्कृत छाया– एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् (सिद्धगतिं) सम्प्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां अष्टौ वर्गा: प्रज्ञप्ता: । यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् (सिद्धगतिं) संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां अष्टौ वर्गा: प्रज्ञप्ता: , प्रथमस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् (सिद्धगतिं) संप्राप्तेन कति अध्ययानानि प्रज्ञप्तानि ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् (सिद्धगतिं) संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि । तद् यथा–गौतम: समुद्र: सागर: गम्भीरश्चैव भवति स्तिमितश्च अचल: काम्पिल्य: खलु अक्षोभ: प्रसेनजित: विष्णु: ।।3।।

अन्वायार्थ–एवं खलु जम्बू ! समणेणं = इस प्रकार निश्चय ही हे जम्बू ! श्रमण, **जाव संपत्तेणं** = यावत् (सिद्धगति) प्राप्त वीरप्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स** = आठवें अंग–शास्त्र, **अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशा के, **अट्ठ वग्गा पण्णत्ता।** = आठ वर्ग प्रतिपादित किये हैं। **जइ णं भंते !** = हे पूज्य ! यदि निश्चय ही, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति को प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स** = आठवें अंग, **अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशा के, **अट्ठ वग्गा पण्णत्ता** = आठ वर्ग प्रतिपादित किये हैं (तो), **पढमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं** = भदन्त ! निश्चय ही पहले अन्तकृद्दशांग सूत्र के प्रथम वर्ग के,

समणेणं जाव संपत्तेणं = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **कइ अज्झयणा पण्णत्ता ? =** कितने अध्ययन कहे हैं ?।।3।।

एवं खलु जंबू ! = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं =** श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं =** आठवें अंग अन्तकृद्दशा के, **पढमस्स वग्गस्स =** प्रथम वर्ग के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता। =** दस अध्ययन प्रतिपादित किये हैं। **तं जहा =** वे इस प्रकार हैं–

गोयम = गौतम, **समुद्द सागर =** समुद्र-सागर, **गंभीरे चेव =** गंभीर, **होइ =** होता, **थिमिए =** स्तिमित, **य =** और, **अयले =** अचल, **कंपिल्ले =** काम्पिल्य, **खलु =** निश्चय, **अक्खोभ =** अक्षोभ, **पसेणई =** प्रसेनजित, **विण्हू =** विष्णु।।3।।

भावार्थ–सुधर्मा स्वामी श्रीमुख से कहते हैं–''इस प्रकार निश्चित रूप से हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर, जो मोक्ष पधारे हैं, उन प्रभु ने अन्तकृद्दशा नामक आठवें अङ्ग शास्त्र के आठ वर्ग कहे हैं।''

जम्बू–''हे भगवन् ! यदि श्रमण यावत् मुक्ति -प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठ वर्ग फरमाये हैं, तो हे पूज्य ! अन्तकृद्दशांग के प्रथम वर्ग में श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने कितने अध्ययन कहे हैं ?''

सुधर्मा स्वामी–''इस प्रकार निश्चित रूप से हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त महावीर प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा सूत्र के प्रथम वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं–1. गौतम, 2. समुद्र, 3. सागर, 4. गम्भीर 5. स्तिमित, 6. अचल, 7. काम्पिल्य, 8. अक्षोभ 9. प्रसेनजित, 10. विष्णु।

पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन

सूत्र 4

मूल– **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा-गोयम जाव विण्हू। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था। दुवालस जोयणायामा नव जोयण वित्थिण्णा धणवइमइ-निम्मिया चामीगरपागारा नाणा मणि पंचवण्ण कविसीसग-परिमण्डिया

सुरम्मा। अलकापुरी–संकासा पमुइय–पक्कीलिया पच्चक्खं देव–लोगभूया पासाइया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।। 4।।

संस्कृत छाया– यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् सिद्धगतिं संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां प्रथमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा–गौतमः यावत् विष्णुः प्रथमस्य हे भदन्त ! अध्ययनस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् सिद्धगतिं संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारवती नाम नगरी अभवत्। द्वादश योजन–आयामा नव योजन–विस्तीर्णा धनपतिमति–निर्मिता चामीकरप्राकारा नाना मणि पंचवर्ण–कपिशीर्षकैः परिमण्डिता सुरम्या। अलकापुरी–संकाशा प्रमुदिता प्रक्रीडिता प्रत्यक्षं देवलोकभूता प्रासादीया दर्शनीया अभिरूपा प्रतिरूपा ।।4।।

अन्वयार्थ–जइणं भंते ! समणेणं = यदि निश्चय ही हे भदन्त ! श्रमण, **जाव संपत्तेणं** = यावत् मोक्षप्राप्त (प्रभु) ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं** = आठवें अंग अन्तकृद्दशा के, **पढमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता** = प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, **तं जहा** = जो इस प्रकार हैं, **गोयम जाव विण्हू** = ''गौतम से लेकर विष्णुकुमार तक'' (तो), **पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं** = हे भदन्त ! अन्तकृद्दशांग के प्रथम अध्ययन का, **समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?** = श्रमण यावत् मोक्षप्राप्त (प्रभु) ने क्या भाव प्रतिपादित किया है ?

एवं खलु जंबू ! = इस प्रकार निश्चय करके हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था।** = उस काल उस समय द्वारिका नाम की नगरी थी। **दुवालस जोयणायामा** = (वह) 12 योजन लम्बी (और), **नव जोयण वित्थिण्णा** = नौ योजन विस्तीर्ण (यानी चौड़ी), **धणवइमइ निम्मिया** = (स्वयं) धन कुबेर की बुद्धि से निर्मित, **चामीगरपागारा** = स्वर्ण प्राकार से युक्त, **नाणा मणि पंचवण्ण कविसीसगपरिमण्डिया** = अनेकों पाँच वर्ण की मणियों से मंडित कंगूरों वाली, **सुरम्मा** = सुरम्य, **अलकापुरी–संकासा** = कुबेर की नगरी के सदृश, **पमुइय–पक्कीलिया** = प्रमुदित और प्रक्रीड़ित, **पच्चक्खं देवलोगभूया** = साक्षात् देवलोक तुल्य, **पासाइया दरिसणिज्जा** = प्रमोदजनक, दर्शनीय, **अभिरूवा पडिरूवा** = अभिरूप, प्रतिरूप थी ।।4।।

भावार्थ–आर्य जम्बू–''हे पूज्य ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अंग शास्त्र अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, जैसे गौतम आदि, तो हे भगवन् ! अन्तकृद्दशांग सूत्र के प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या भाव कहा है ? कृपा करके बतलाएँ।''

आर्य सुधर्मा–"इस प्रकार हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नाम की एक नगरी थी। वह बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी, स्वयं कुबेर के कौशल (बुद्धि) से निर्मित, स्वर्ण के कोट से घिरी हुई और अनेक प्रकार की पाँच वर्ण की (इन्द्र, नील, वैडूर्य, पद्मरागादि) मणियों से जटित, कंगूरों वाली शोभनीय एवं अत्यन्त रमणीय थी। नगरियों में वह वैश्रमण की नगरी अलकापुरी के समान, प्रमुदित एवं क्रीड़ायुक्त होने से प्रत्यक्ष देव लोक के समान एवं मन को प्रफुल्लित करने वाली थी। उसकी दीवारों पर (राजहंस, चक्रवाक, सारस, हाथी, घोड़े, मयूर, मृग, मगर, आदि पशु–पक्षियों एवं अन्य अनेक प्राणियों) के चित्र बने हुए थे। विशिष्ट असाधारण सौन्दर्य से युक्त होने से वह अभिरूपा थी और जिसके स्फटिक निर्मित दीवारों पर प्रतिबिम्ब सर्वदा प्रतिफलित होते रहने से, जो प्रतिरूपा भी थी।।4।।

सूत्र 5

मूल– **तीसे णं बारवईए नयरीए बहिया उत्तर–पुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था, वण्णओ, तत्थ णं रेवयए पव्वए नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था वण्णओ। सुरप्पिए नामं जक्खाययणे होत्था पोराणे से णं एगेणं वणखंडेण परिक्खित्ते असोगवरपायवे तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ महया हिमवंत–राय वण्णओ।**

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं दसण्हं दसाराणं बलदेव–पामोक्खाणं पंचण्हं महावीराणं पज्जुण्ण–पामोक्खाणं अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं संबपामोक्खाणं सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं महासेण–पामोक्खाणं छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं वीरसेण–पामोक्खाणं एगवीसाए वीरसाहस्सीणं उग्गसेण–पामोक्खाणं सोलसण्हं रायसाहस्सीणं रूप्पिणी–पामोक्खाणं सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं अणंगसेणा–पामोक्खाणं अणेगाणं गणियासाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं ईसर जाव सत्थवाहाणं बारवईए नयरीए अद्धभरहस्स य सम्मत्तस्स य आहेवच्चं जाव विहरइ।। 5।।

संस्कृत छाया– तस्या: द्वारावत्या: नगर्या: बहिरुत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे अत्र खलु रैवतको नाम पर्वतोऽभूत् वर्णक:। तत्र खलु रैवतके पर्वते नन्दनवनं नाम उद्यानमासीत्। वर्णक:, सुरप्रिय: नाम यक्षायतनमभवत्। पुरातनं तत् खलु एकेन वनखंडेन परिक्षिप्तम्

अशोकवरपादप: तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां कृष्णो नाम वासुदेव: राजा परिवसति महता हिमवन्तराजवर्णक: ।

स: खलु तत्र समुद्रविजयप्रमुखानां दशानां दशार्हाणां बलदेवप्रमुखानां पंचानां महावीराणां प्रद्युम्न-प्रमुखानाम् अर्द्धचतुष्काणां कुमारकोटीनां शाम्ब-प्रमुखानां षष्ट्या दुर्दान्त साहस्रीणाम् महासेन-प्रमुखानां षट्पञ्चाशत् बलवर्गसाहस्रीणाम् वीरसेन-प्रमुखानाम् एकविंशति: वीरसाहस्रीणाम् उग्रसेन-प्रमुखानां षोडशानां राज-साहस्रीणां रुक्मिणी-प्रमुखानां षोडशानां देवीसाहस्रीणाम् अनंगसेना-प्रमुखानां अनेकासाम् गणिकासाहस्रीणाम् अन्येषां च बहूनाम् ईश्वर यावत् सार्थवाहानां द्वारावत्या: नगर्या: अर्धभरतस्य च समस्तस्य च आधिपत्यं यावत् विहरति ।।5।।

अन्वायार्थ-तीसे णं बारवईए नयरीए = उस द्वारिका नगरी के, **बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसिभाए** = बाहर ईशान कोण में, **एत्थ णं रेवयए नामं पव्वए होत्था** = यहाँ रैवतक नाम का पर्वत था, **वण्णओ** = जो वर्णन करने योग्य था। **तत्थ णं रेवयए पव्वए** = उस रैवतक पर्वत पर, **नंदणवणे नामं उज्जाणे होत्था ।** = नन्दनवन नामक उद्यान था, **वण्णओ, सुरप्पिए नामं** = जो वर्णनीय था, जिसमें सुरप्रिय नाम का, **जक्खाययणे होत्था** = यक्षायतन था, **पोराणे से णं एगेणं** = जो प्राचीन था वह एक, **वणखंडेण परिक्खित्ते** = वनखण्ड से घिरा हुआ था। **असोगवरपायवे** = (उसमें एक) श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था। **तत्थ णं बारवईए नयरीए** = वहाँ निश्चय करके (उस) द्वारिका नगरी में, **कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसइ** = कृष्ण नाम के वासुदेव राजा रहते थे। **महया हिमवंतराय वण्णओ** = वे महान् हिमवन्त पर्वत की तरह मर्यादा पालक थे।

से णं तत्थ समुद्दविजयपामोक्खाणं = वहाँ द्वारिका में समुद्र विजय प्रमुख, **दसण्हं दसाराणं** = दस दशार्ह अर्थात् पूजनीय पुरुष, **बलदेवपामोक्खाणं** = बलदेव प्रमुख, **पंचण्हं महावीराणं** = पाँच महावीर (और), **पज्जुण्ण-पामोक्खाणं** = प्रद्युम्नकुमार प्रमुख, **अद्धुट्ठाणं कुमारकोडीणं** = साढ़े तीन करोड़ कुमार, **संबपामोक्खाणं** = शाम्ब प्रमुख, **सट्ठीए दुद्दंत साहस्सीणं** = साठ हजार दुर्दान्त वीर तथा, **महासेण-पामोक्खाणं** = महासेन प्रमुख, **छप्पण्णाए बलवग्गसाहस्सीणं** = छप्पन हजार बलवर्ग सैनिक, **वीरसेण-पामोक्खाणं** = वीरसेन आदि, **एगवीसाए वीरसाहस्सीणं** = इक्कीस हजार वीर योद्धा, **उग्गसेण-पामोक्खाणं** = उग्रसेन प्रमुख, **सोलसण्हं रायसाहस्सीणं** = सोलह हजार राजा एवं, **रूप्पिणी-पामोक्खाणं** = रुक्मिणी प्रमुख, **सोलसण्हं देवीसाहस्सीणं** = सोलह हजार रानियाँ, **अणंगसेणा-पामोक्खाणं** = अनंगसेना प्रमुख, **अणेगाणं गणियासाहस्सीणं** = अनेक हजार गणिकाएँ, **अण्णेसिं च बहूणं** = एवं अन्य बहुत से, **ईसर जाव सत्थवाहाणं** = ईश्वर पदधारी से लेकर सार्थवाहों से सम्पन्न, **अद्धभरहस्स य सम्मत्तस्स य** = समस्त

अर्द्ध भरत यानी 3 खण्ड के, **बारवईए नयरीए =** द्वारिका नगरी के (तथा), **आहेवच्चं जाव विहरइ =** अधिपतित्व को धारण करते हुए यावत् (श्रीकृष्ण) विचरते थे ।। 5 ।।

भावार्थ– ''ऐसी उस द्वारिकानगरी के बाहर ईशान कोण में रैवतक नाम का एक पर्वत था, जो वर्णन करने योग्य था। उस रैवतक पर्वत पर नन्दनवन नामक एक उद्यान था, जो भी वर्णनीय था। उस उद्यान में सुरप्रिय नाम का एक यक्षायतन था, जो प्राचीन था। वह उद्यान चारों ओर एक वन खण्ड से घिरा हुआ था और उसमें एक श्रेष्ठ जाति का अशोक का वृक्ष था। उस द्वारिका नगरी में श्रीकृष्ण नाम के वासुदेव राज्य करते थे, जो हिमवान पर्वत की भाँति मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उनके राज्य का वर्णन कौणिक के राज्य के वर्णन की भाँति समझना चाहिये।'' (नगरियों एवं राज्यों के वर्णन को विस्तार पूर्वक समझने की जिज्ञासा वालों को औपपातिकसूत्र का अवलोकन करना चाहिए।) ''ऐसी द्वारिका नगरी में समुद्र विजयजी आदि दस दशार्ह अर्थात् पूज्य पुरुष निवास करते थे। बलदेव, प्रमुख पाँच महावीर और प्रद्युम्न प्रमुख साढ़े तीन करोड़ कुमार भी वहाँ रहते थे। वहीं शाम्ब, जिनमें प्रमुख गिने जाते थे, ऐसे साठ हजार दुर्दान्त वीर, महासेन आदि छप्पन हजार बलवर्ग सैनिक भी थे। वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीर योद्धा, उग्रसेन प्रमुख सोलह हजार राजा एवं रुक्मिणी प्रमुख 16 हजार रानियाँ, अनंगसेना आदि हजारों गणिकाएँ तथा अन्य बहुत से ईश्वर पदधारी नागरिकों से लेकर अनेक सार्थवाह भी उस नगरी के निवासी थे।''

''इस प्रकार सब प्रकार के वैभव एवं शक्तिशाली नागरिकों से सम्पन्न उस द्वारिका नगरी के तथा समस्त अर्द्ध-भरत के अर्थात् इस जम्बू द्वीप के तीन खण्डों के अधिपतित्व को धारण करते हुए यावत् श्रीकृष्ण विचरण करते थे ।।5।।''

सूत्र 6

मूल– **तत्थ णं बारवईए नयरीए अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ महया हिमवन्त वण्णओ। तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ, तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महाबले सुमिणदंसण-कहणा जम्मं बालत्तणं कलाओ य जोव्वणे-पाणिग्गहणं कंता पासाय भोगा य नवरं गोयमो नामेणं अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ ।। 6 ।।**

संस्कृत छाया– तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्याम् अन्धकवृष्णिः नाम राजा परिवसति महता हिमवान् वर्णकः तस्य खलु अन्धकवृष्णेः राज्ञः धारिणीनामा देवी अभवत्, वर्णकः ततः सा धारिणी देवी अन्यदा कदाचिद् तस्मिन् तादृशके (कृतपुण्योपसेव्ये) शयनीये एवं यथा महाबलः–स्वप्नदर्शनं कथनं जन्म बालत्वं कलाश्च यौवनं पाणिग्रहणं कान्ता प्रासाद भोगाश्च विशेषः गौतमो नाम्ना अष्टानां राजवरकन्यानाम् एकस्मिन् दिवसे पाणिं ग्राहयन्ति, अष्टौ अष्टौ दायः ।। 6 ।।

अन्वायार्थ–तत्थ णं बारवईए नयरीए = उस द्वारिका नगरी में, **अंधगवण्ही नामं राया परिवसइ** = अन्धकवृष्णि नाम के राजा रहते थे, **महया हिमवन्त वण्णओ ।** = जो महाहिमवान् की भाँति वर्णनीय थे । **तस्स णं अंधगवण्हिस्स रण्णो** = उस अंधकवृष्णि राजा के, **धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ** = धारिणी नाम की वर्णन करने योग्य रानी थी, **तए णं सा धारिणी देवी अण्णया कयाइं** = तदनन्तर वह धारिणी रानी किसी दिन, **तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि एवं जहा महाबले** = कदाचित् पुण्यवान् के योग्य, शय्या पर सोई हुई थी जैसे महाबल । **सुमिणदंसण–कहणा** = स्वप्न दर्शन, उसका कथन, **जम्मं बालत्तणं कलाओ य** = जन्म, बाल लीला, कला ज्ञान, **जोव्वण–पाणिग्गहणं** = यौवन, पाणिग्रहण, **कंता पासाय भोगा य** = रम्य प्रासाद एवं भोगादि, **नवरं गोयमो नामेणं** = विशेष गौतम नाम रखा, **अट्ठण्हं रायवरकन्नाणं** = आठ उत्तम राजकन्याएँ, **एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति, अट्ठट्ठओ दाओ ।** = एक ही दिन पाणिग्रहण, आठ–आठ का दहेज ।। 6 ।।

भावार्थ–''उस द्वारिका नगरी में अंधकवृष्णि नाम के एक राजा भी रहते थे, जो महान् हिमालय पर्वत की भाँति शक्तिशाली एवं मर्यादापालक थे । उनकी धारिणी नाम की रानी थी, जो वर्णन करने योग्य थी । वह धारिणी रानी किसी एक पुण्यशालिनी के योग्य शय्या पर सोई हुई थी, जिसका वर्णन महाबल के प्रकरण में वर्णित वर्णन के समान समझ लेना चाहिये । जैसे कि उस धारिणी राणी का स्वप्न देखना, पति को निवेदन करना, बालक का जन्म लेना, उसका बाल्यकाल बीतना और कलाचार्यों के पास शिक्षण लेना, युवावस्था को प्राप्त होना, योग्य कन्याओं से उसका पाणिग्रहण होना, रमणीय प्रासाद में रहना एवं सांसारिक भोगों को भोगना आदि ।''

''महाबलकुमार के वर्णन से यहाँ इतना विशिष्ट है कि उस कुमार का नाम गौतमकुमार रक्खा गया, आठ उत्तम कुलीन राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका पाणिग्रहण कराया गया एवं उसे दहेज के रूप में आठ–आठ हिरण्य कोटि प्रदान की गई ।।6।।''

सूत्र 7

मूल– **तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी आइगरे जाव विहरइ चउव्विहा देवा आगया, कण्हे वि णिग्गए तए णं से गोयमे कुमारे जहा मेहे तहा णिग्गए, धम्मं सोच्चा निसम्म जं नवरं देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि।**

एवं जहा मेहे जाव अणगारे जाए, इरियासमिए जाव इणमेव णिग्गंट्ठं पावयणं पुरओ काउं विहरइ।

तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तए णं अरहा अरिट्ठणेमी अण्णया कयाइं बारवइओ नयरीओ नंदणवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवय–विहारं विहरइ।। 7।।

संस्कृत छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमी आदिकरो यावत् विहरति चतुर्विधा देवा: आगता: कृष्ण: अपि निर्गत:, तत: खलु स: गौतम: कुमार: यथा मेघ: तथा निर्गत:, धर्मं श्रुत्वा निशम्य यद् नवरं देवानुप्रिया ! मातापितरौ आपृच्छामि देवानुप्रियाणाम् अन्तिके प्रव्रजामि।

एवं यथा मेघ: यावत् अणगारो जात:, ईर्यासमित: यावत् एतदेव नैर्ग्रन्थ्यं प्रवचनं पुरत: कृत्वा विहरति।

तत: खलु स गौतम: अनगार: अन्यदा कदाचित् अर्हत: अरिष्टनेमे: तथारूपाणां स्थविराणाम् अन्तिके सामायिकादीनि एकादश अंगानि अधीते, अधीत्य बहुभि: चतुर्थभक्तादिभि: यावत् आत्मानं भावमान: विहरति। तत: खलु अर्हन् अरिष्टनेमि: अन्यदा कदाचित् द्वारावत्या नगर्या: नन्दनवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रमति, प्रतिनिष्क्रम्य बहि: जनपद–विहारं विहरति।।7।।

अन्वायार्थ–तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय, **अरहा अरिट्ठणेमी आइगरे** = आदिकर अर्हन् अरिष्टनेमि, **जाव विहरइ** = यावत् विचरते हैं। **चउव्विहा देवा आगया,** = चार प्रकार के देव आये। **कण्हे वि णिग्गए** = श्रीकृष्णजी भी निकले। **तए णं से गोयमे कुमारे** = इसके बाद वह गौतम

कुमार भी, **जहा मेहे तहा णिग्गए,** = मेघ कुमार की तरह निकले। **धम्मं सोच्चा निसम्म** = धर्मोपदेश सुनकर व धारण करके, **जं नवरं देवाणुप्पिया !** = (वे बोले) हे देवानुप्रिय ! मैं यथावसर, **अम्मापियरो आपुच्छामि** = माता-पिता को पूछता हूँ (और), **देवाणुप्पियाणं अंतिए पव्वयामि** = देवानुप्रिय के समीप प्रव्रज्या लेता हूँ।

एवं जहा मेहे = इस प्रकार मेघकुमार के समान, **जाव अणगारे जाए** = यावत् (वे गौतमकुमार) अणगार हो गये (एवं), **इरियासमिए जाव इणमेव** = ईर्या समिति आदि को एवं, **णिग्गंट्ठं पावयणं पुरओ** = निर्ग्रन्थ प्रवचन को अपने आगे, **काउं विहरइ** = रखकर विचरते हैं।

तए णं से गोयमे अणगारे = इसके बाद निश्चय ही गौतम अणगार ने, **अण्णया कयाइं** = अन्य किसी दिन, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान के, **तहारूवाणं थेराणं** = तथा-रूप (गुणसम्पन्न गीतार्थ) स्थविरों के, **अंतिए सामाइयमाइयाइं** = पास सामायिक आदि, **एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ** = 11 अंगों का अध्ययन किया। **अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ** = अध्ययन करके बहुत से उपवासादि द्वारा, **जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ** = यावत् अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहार करने लगे। **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = तदनन्तर निश्चय से अर्हन्त अरिष्टनेमि ने, **अण्णया कयाइं बारवइओ नयरीओ** = अन्यदा किसी दिन द्वारिकानगरी के, **नंदणवणाओ उज्जाणाओ** = नन्दनवन उद्यान से, **पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता** = प्रस्थान किया, प्रस्थान करके, **बहिया जणवय-विहारं विहरइ** = बाहर जनपद में विचरने लगे ।।7।।

भावार्थ–उस काल उस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान धर्मतीर्थ की आदि करने वाले यावत् विचरते हुए उस द्वारिकानगरी में पधारे। भगवान के समवसरण में चार प्रकार के देव आये। श्रीकृष्ण भी उन्हें वन्दन करने को निकले। गौतमकुमार भी ज्ञातासूत्र में वर्णित मेघकुमार की तरह प्रभु का धर्मोपदेश सुनने को निकले। धर्मोपदेश सुनकर एवं उसे अपने हृदय पटल पर अंकित करके गौतमकुमार प्रभु से बोले–"हे प्रभो ! मैं अपने माता-पिता को पूछकर आप देवानुप्रिय के पास श्रमण दीक्षा अंगीकार करूँगा।"

इस प्रकार ज्ञातासूत्र में वर्णित मेघ-कुमार के समान यावत् गौतमकुमार भी श्रमणधर्म में दीक्षित हो गये। वे ईर्या समिति आदि गुणों वाले यावत् इसी वीतराग निर्ग्रन्थ शासन को अपने आगे रखकर भगवान की आज्ञाओं का पालन करते हुए विचरने लगे।

तदनन्तर उन गौतम अणगार ने अन्य किसी दिन अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान के गुण सम्पन्न गीतार्थ स्थविरों के पास, सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। अध्ययन करके बहुत से उपवास आदि तपश्चरण द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए एवं उसकी शुद्धि करते हुए वे ग्रामानुग्राम विहार करने लगे।

तत्पश्चात् अरिहन्त अरिष्टनेमि भगवान ने अन्यदा किसी दिन उस द्वारिका नगरी के नन्दनवन नामक उद्यान से प्रस्थान किया। वहाँ से प्रस्थान करके बाहर जनपद में विचरण करने लगे ।।7।।

सूत्र 8

मूल– **तए णं से गोयमे अणगारे अण्णया कयाइं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।**

एवं जहा खंदओ, तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ, फासित्ता गुणरयणं वि तवोकम्मं तहेव फासेइ, निरवसेसं जहा खंदओ तहा चिंतइ, तहा आपुच्छइ, तहा थेरेहिं सद्धिं सेत्तुंजं दुरूहइ, मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं परियाए जाव सिद्धे ।।8 ।।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः गौतमः अनगारः अन्यदा कदाचित् यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैव उपागच्छति उपागत्य अर्हन्तम् अरिष्टनेमिम् त्रिःकृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वंदते, नमस्यति, वंदित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत् इच्छामि खलु भदन्त ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् मासिकीं भिक्षुप्रतिमाम् उपसंपद्य विहर्तुम्।

एवं यथा स्कंदकः तथा द्वादश भिक्षुप्रतिमाः स्पृशति स्पृष्ट्वा गुणरत्नमपि तपः कर्म तथैव स्पृशति, निरवशेषं यथा स्कन्दकः तथा चिन्तयति, तथा आपृच्छति, तथा स्थविरैः सार्द्धं शत्रुञ्जयं दूरोहति मासिक्या संलेखनया द्वादश वर्षाणि पर्यायः (दीक्षाकालः) यावत् सिद्धः ।।8 ।।

अन्वायार्थ–तए णं से गोयमे अणगारे = इसके बाद वह गौतम अणगार, **अण्णया कयाइं जेणेव** = अन्यदा किसी दिन जहाँ, **अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ** = अरिहन्त अरिष्टनेमि थे वहीं आये। **उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं** = आकर (उन्होंने) अरिहन्त अरिष्टनेमि को, **तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ** = तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की। **करित्ता, वंदइ, नमंसइ,** = प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी** = वन्दन-नमस्कार करके ऐसे बोले-, **इच्छामि णं भंते !** = ''हे

भगवन्! मैं चाहता हूँ, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे** = आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर, **मासियं भिक्खुपडिमं** = मासिकी भिक्षु प्रतिमा, **उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए** = अंगीकार करके विचरण करूँ।''

एवं जहा खंदओ = इस प्रकार जैसे स्कंधक ने समाराधन किया, **तहा बारस भिक्खुपडिमाओ फासेइ** = वैसे ही बारह भिक्षु प्रतिमाओं का (गौतम ने भी) समाराधन किया। **फासित्ता गुणरयणं वि तवोकम्मं तहेव फासेइ** = आराधन करके गुण रत्न नामक तप का भी वैसे ही आराधन किया।

निरवसेसं जहा खंदओ तहा चिंतइ, तहा आपुच्छइ = पूर्ण रूपेण स्कन्धक की तरह ही चिन्तन किया, भगवान से पूछा, **तहा थेरेहिं सद्धिं** = तथा स्थविर मुनियों के साथ, **सेत्तुंजं दुरूहइ** = वैसे ही शत्रुञ्जय पर्वत पर चढ़े। **मासियाए संलेहणाए बारस वरिसाइं** = 1 मास की संलेखणा से 12 वर्ष की, **परियाए जाव सिद्धे** = दीक्षा पर्याय पूर्ण करके यावत् सिद्ध हुए।।8।।

भावार्थ–इसके बाद वह गौतम अणगार अन्यदा किसी दिन जहाँ अरिहन्त भगवान अरिष्टनेमि थे, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने अरिहन्त अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। तिक्खुत्तो का पाठ बोलते तिक्खुत्तो शब्द के उच्चारण के साथ ही दोनों हाथ मस्तक (ललाट) के बीच में रखने चाहिए। आयाहिणं शब्द के उच्चारण के साथ अपने दोनों हाथ अपने मस्तक के बीच में से अपने स्वयं के दाहिने (Right) कान की ओर ले जाते हुए गले के पास से होकर बायें (Left) कान की ओर घुमाते हुए पुन: ललाट के बीच में लाना चाहिए। इस प्रकार एक आवर्तन पूरा करना चाहिए। इसी प्रकार से पयाहिणं और करेमि शब्द बोलते हुए भी एक-एक आवर्तन पूरा करना, इस प्रकार तिक्खुत्तो का एक बार पाठ बोलने में तीन आवर्तन देने चाहिए। तीनों बार तिक्खुत्तो के पाठ से इसी प्रकार तीन-तीन आवर्तन देकर वंदना की। वन्दन-नमस्कार करके वे प्रभु से इस प्रकार बोले-''हे भगवन्! मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं मासिकी भिक्षुप्रतिमा को अंगीकार करके विचरूण करूँ।''

इस प्रकार जैसे स्कन्धक मुनि ने साधना की वैसे ही मुनि गौतमकुमार ने भी बारह भिक्षु प्रतिमाओं# का आराधन करके गुणरत्न नामक तप का भी उसी प्रकार आराधन किया।

सम्पूर्ण रूप से मुनि स्कन्धक की तरह ही मुनि गौतमकुमार ने भी वैसा ही चिन्तन किया और उसी प्रकार भगवान से पूछा तथा स्थविर मुनियों के साथ वैसे ही जैसे, मुनि स्कन्धक ने किया वे भी शत्रुंजय पर्वत पर चढ़े। पर्वत पर चढ़कर उन्होंने एक मास की संलेखणा की एवं इस संलेखणापूर्वक 12 वर्ष की अपनी दीक्षा पर्याय पूर्ण करके यावत् सिद्ध हुए।

गुणरयणं वि तवो कम्मं–गुणरत्न नामक तप सोलह महीनों में सपन्न होता है। इसमें तप के 407 दिन और पारणा के 73 दिन होते हैं। पहले मास में एकान्तर उपावस किया जाता है। दूसरे मास में बेले-बेले पारणा और तीसरे मास में तेले-तेले पारणा किया जाता है। इसी प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह-

\# भिक्षु प्रतिमा के लिए 20 वर्ष की दीक्षा, 29 वर्ष की आयु एवं 9 पूर्व की तीसरी वस्तु का ज्ञान आवश्यक बताया जाता है, जो उचित नहीं लगता है। इसका विस्तृत वर्णन परिशिष्ट के प्रश्नोत्तर संख्या 12 में देखे।

सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप में दिन को उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि में वस्त्र रहित वीरासन से बैठकर ध्यान किया जाता है ।।8।।

गुणरत्न संवत्सर तप–तालिका

महीना	तप व तप की संख्या	तप के दिन	पारणे के दिन	योग
पहला	15 उपवास	15	15	30
दूसरा	10 बेला	20	10	30
तीसरा	8 तेला	24	8	32
चौथा	6 चोला	24	6	30
पाँचवाँ	5 पचोला	25	5	30
छट्ठा	4 छह	24	4	28
सातवाँ	3 सात	21	3	24
आठवाँ	3 अठाई	24	3	27
नवमाँ	3 नव	27	3	30
दसवाँ	3 दस	30	3	33
ग्यारहवाँ	3 ग्यारह	33	3	36
बारहवाँ	2 बारह	24	2	26
तेरहवाँ	2 तेरह	26	2	28
चौदहवाँ	2 चौदह	28	2	30
पन्द्रहवाँ	2 पन्द्रह	30	2	32
सोलहवाँ	2 सोलह	32	2	34
योग		**407**	**73**	**480**

मूल– **एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।। सूत्र 9 ।।**

संस्कृत छाया– एवं खलु जंबू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां प्रथमस्य वर्गस्य प्रथमस्य अध्ययनस्य अयमर्थ: प्रज्ञप्त: ।। सूत्र 9 ।।

अन्वायार्थ–एवं खलु जम्बू ! = ''इस प्रकार निश्चय से हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं =** श्रमण यावत् मोक्ष को प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं =** आठवें अंग अन्तकृद्दशा के, **पढमस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स =** प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का, **अयमट्ठे पण्णत्ते =** यह भाव फरमाया है।

भावार्थ–आर्य सुधर्मा–''इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण भगवान यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने आठवें अंगशास्त्र अन्तकृद्दशा के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन का यह भाव कहा है।''

।। इइ पढममज्झयणं–प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

2-10 अज्झयणाणि

मूल– **एवं जहा गोयमो तहा सेसा वण्ही पिया, धारिणी माया समुद्दे सागरे गंभीरे थिमिए अयले कंपिल्ले अक्खोभे पसेणई विण्हू एए एगगमा पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता।**

संस्कृत छाया– एवं यथा गौतम: तथा शेषाणि वृष्णि: पिता धारिणी माता समुद्र: सागर: गम्भीर: स्तिमित: अचल: काम्पिल्य: अक्षोभ: प्रसेनजित् विष्णु: एते एकगमा: प्रथम: वर्ग: दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि।

अन्वायार्थ–एवं जहा गोयमो तहा सेसा = इस प्रकार जैसे गौतम वैसे बाकी के, **वण्ही पिया, धारिणी माया =** वृष्णि पिता, धारिणी माता, **समुद्दे सागरे गंभीरे थिमिए =** समुद्र, सागर, गम्भीर, स्तिमित, **अयले कंपिल्ले अक्खोभे =** अचल, काम्पिल्य, अक्षोभ, **पसेणई विण्हू एए एगगमा =** प्रसेनजित, विष्णु ये सब एक समान हैं। **पढमो वग्गो, दस अज्झयणा पण्णत्ता =** (इस प्रकार) प्रथम वर्ग और उसके, दस अध्ययन कहे गये हैं।

भावार्थ–इस प्रकार मुनि गौतम कुमार की तरह शेष 9 अध्ययन भी समझने चाहिये। सबके पिता वृष्णि एवं माता धारिणी थी। उनके नाम इस प्रकार हैं–''2. समुद्र कुमार, 3. सागर कुमार, 4. गम्भीर कुमार, 5. स्तिमित कुमार, 6. अचल कुमार, 7. काम्पिल्य कुमार, 8. अक्षोभ कुमार, 9. प्रसेनजित, 10. विष्णु कुमार।'' ये सब अध्ययन एक समान हैं। आगे का सबका वर्णन गौतम कुमार मुनि की तरह है। इस तरह यह प्रथम वर्ग और उसके दस अध्ययन कहे गये हैं।

।। इइ 2–10 अज्झयणाणि–2–10 अध्ययन समाप्त।।

।। इइ पढमो वग्गो–प्रथम वर्ग समाप्त।।

बिइओ वग्गो-द्वितीय वर्ग

सूत्र 1

मूल- **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, दोच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं कई अज्झयणा पण्णत्ता ? एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा-गाहा-**

अक्खोभे सागरे खलु समुद्द हिमवंत अयलणामे य।
धरणे य पूरणे वि य अभिचंदे चेव अट्ठमए।।

संस्कृत छाया- यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन प्रथमस्य वर्गस्य अयमर्थ: प्रज्ञप्त:, द्वितीयस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानाम् श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कति अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि ? एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् (मुक्तिं) संप्राप्तेन अष्टौ अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तानि यथा-गाथा-अक्षोभ: सागर: खलु समुद्र: हिमवान् अचलनामा च ! धरणश्च पूरणोऽपि च अभिचन्द्रश्चैव अष्टमक: ।।

अन्वायार्थ-जइ णं भंते ! = ''यदि निश्चय करके हे पूज्य !, **समणेणं जाव संपत्तेणं पढमस्स** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने पहले, **वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = वर्ग का यह भाव कहा है, **दोच्चस्स णं भंते !** = तो भदन्त ! दूसरे, **वग्गस्स अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशांग के वर्ग के, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **कई अज्झयणा पण्णत्ता ?** = कितने अध्ययन प्रतिपादित किये हैं ? **एवं खलु जम्बू !** = निश्चय करके हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठ अज्झयणा पण्णत्ता** = आठ अध्ययन कहे हैं। **तं जहा-गाहा** = वे इस प्रकार हैं-गाथा, **अक्खोभे सागरे खलु** = 1. अक्षोभ 2. सागर, **समुद्द हिमवंत अयलणामे य** = 3. समुद्र 4. हिमवन्त 5. अचल, **धरणे य पूरणे वि य** = 6. धरण 7. पूरण, **अभिचंदे चेव अट्ठमए** = 8. अभिचन्द्र।''

भावार्थ-जम्बू स्वामी बोले-''हे पूज्य ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने प्रथम वर्ग का यह वर्णन किया है। अब हे भगवन् ! अंतकृद्दशा के दूसरे वर्ग में श्रमण भगवान महावीर ने कितने अध्ययन फरमाये हैं।''

आर्य सुधर्मा श्रीमुख से कहते हैं–''इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने दूसरे वर्ग के आठ अध्ययन फरमाये हैं, जैसे कि–प्रथम अक्षोभ कुमार, दूसरे सागर, तीसरे समुद्र, चौथे हिमवान और पांचवे अचल कुमार, छठे धरण, सातवें पूरण और आठवें अभिचन्द्र हैं।''

मूल– **तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए वण्ही पिया धारिणी माया। जहा पढमो वग्गो, तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा। गुणरयणं तवोकम्मं, सोलस वासाइं परियाओ सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धा। एवं खलु जंबू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।**

संस्कृत छाया– तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां वृष्णिः पिता धारिणी माता। यथा प्रथमः वर्गः तथा सर्वाणि अष्ट अध्ययनानि। गुणरत्नं तपःकर्म षोडश वर्षाणि (दीक्षा) पर्यायः शत्रुंजये (पर्वते) मासिक्या संलेखनया यावत् सिद्धाः। एवं खलु जम्बू! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य द्वितीयस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

अन्वयार्थ–तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय, **बारवईए नयरीए वण्ही पिया** = द्वारिका नगरी में वृष्णि (राजा) पिता थे, **धारिणी माया** = और धारिणी रानी माता थी। **जहा पढमो वग्गो** = जैसे प्रथम वर्ग, **तहा सव्वे अट्ठ अज्झयणा** = वैसे सभी आठ अध्ययन। **गुणरयणं तवोकम्मं** = (सभी ने) गुणरत्न तप किया, **सोलस वासाइं परियाओ** = सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली, **सेत्तुंजे मासियाए संलेहणाए** = शत्रुंजय पर मासिकी संलेखना की, **जाव सिद्धा** = यावत् सिद्ध हुए। **एवं खलु जंबू!** = इस प्रकार निश्चय करके हे जम्बू!, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष-प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स** = (इस) आठवें अंग शास्त्र के, **दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = दूसरे वर्ग का यह भाव कथन किया है।

भावार्थ–उस काल उस समय में द्वारिका नगरी में इन आठों कुमारों के वृष्णि राजा पिता और धारिणी माता थी। जिस प्रकार प्रथम वर्ग कहा, उसी प्रकार ये सभी आठों अध्ययन समझने चाहिये।

इन सभी ने गुणरत्न संवत्सर तप किया। सोलह वर्ष का चारित्र पालन कर, शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना से यावत् सिद्ध हुए।

इस प्रकार हे जम्बू! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग शास्त्र अंतगडदशा के दूसरे वर्ग का यह भाव श्रीमुख से कहा है।

।। इइ बिइओ वग्गो–द्वितीय वर्ग समाप्त।।

तइओ वग्गो-तृतीय वर्ग

पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

संस्कृत छाया- यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य द्वितीयस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, तृतीयस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कः अर्थः प्रज्ञप्तः ?

अन्वयार्थ-जइ णं भंते ! = (आर्य जम्बू) ''यदि निश्चय करके हे पूज्य !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स दोच्चस्स वग्गस्स** = आठवें अंग शास्त्र के दूसरे वर्ग का, **अयमट्ठे पण्णत्ते** = यह भाव कथित किया है (तो), **तच्चस्स णं भंते ! वग्गस्स** = हे पूज्य (अब) तीसरे वर्ग का, **समणेणं जाव संपतेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = क्या भाव कहा है ?''

भावार्थ-आर्य जम्बू-''हे पूज्य ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतकृद्दशा के दूसरे वर्ग का यह भाव कहा है। अब हे पूज्य ! तीसरे वर्ग का श्रमण भगवान महावीर यावत् मुक्ति -प्राप्त प्रभु ने क्या भाव कहा है ?

मूल- **एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा- अणीयसेणे, अणंतसेणे, अजियसेणे, अणिहयरिऊ, देवसेणे, सत्तुसेणे, सारणे, गए, सुमुहे, दुम्मुहे, कूवए, दारुए, अणादिट्ठी। जइ णं भंते! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स**

वग्गस्स तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा–अणीयसेणे जाव अणादिट्ठी, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

संस्कृत छाया– एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य तृतीयस्य वर्गस्य अन्तकृद्दशानां त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा–अनीकसेनः, अनन्तसेनः, अजितसेनः, अनिहतरिपुः, देवसेनः, शत्रुसेनः, सारणः, गजः, सुमुखः, दुर्मुखः, कूपकः, दारुकः, अनादृष्टिः। यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा–अनीकसेनः यावत् अनादृष्टिः, प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कः अर्थः प्रज्ञप्तः ?

अन्वयार्थ–एवं खलु जंबू ! = इस प्रकार निश्चय करके हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त (प्रभु) ने, **अट्ठमस्स अंगस्स तच्चस्स वग्गस्स** = आठवें अंग के तृतीय वर्ग के, **अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशा के, **तेरस अज्झयणा पण्णत्ता** = तेरह अध्ययन कहे हैं। **तं जहा–** = जो इस प्रकार हैं–, **अणीयसेणे, अणंतसेणे,** = अनीक सेन, अनन्त सेन, **अजियसेणे, अणिहयरिऊ** = अजितसेन, अनिहत रिपु, **देवसेणे, सत्तुसेणे, सारणे** = देवसेन, शत्रुसेन, सारण, **गए, सुमुहे, दुम्मुहे** = गज सुकुमाल, सुमुख, दुर्मुख, **कूवए, दारुए, अणादिट्ठी** = कूपक, दारुक, अनादृष्टि, **जइ णं भंते !** = यदि निश्चय ही हे भदन्त !, **समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स** = श्रमण यावत् मुक्त (प्रभु) ने आठवें, **अंगस्स अंतगडदसाणं** = अंग अन्तकृद्दशा के, **तच्चस्स वग्गस्स तेरस** = तृतीय वर्ग के तेरह, **अज्झयणा पण्णत्ता** = अध्ययन कहे हैं, **तं जहा–** = जो इस प्रकार हैं–, **अणीयसेणे जाव अणादिट्ठी** = अनीकसेन से लेकर अनादृष्टि तक, **पढमस्स णं भंते !** = (तो) हे भदन्त ! प्रथम का, **अज्झयणस्स अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशांग के अध्ययन का, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त (प्रभु) ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = क्या भाव प्रतिपादित किया है ?

भावार्थ–श्री सुधर्मा स्वामी–"हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आठवें अंग शास्त्र अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग में तेरह अध्ययनों का वर्णन किया है। वे इस प्रकार हैं–1. अनीक सेन, 2. अनन्त सेन, 3. अजित सेन, 4. अनिहत रिपु, 5. देवसेन, 6. शत्रुसेन, 7. सारण, 8. गज सुकुमाल, 9. सुमुख, 10. दुर्मुख, 11. कूपक, 12. दारुक और 13. अनादृष्टि।

श्री जम्बू स्वामी–"यदि निश्चय ही हे भगवन् ! श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु महावीर ने आठवें अंग

शास्त्र अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग में ''अनीकसेन से अनादृष्टि तक'' तेरह अध्ययन कहे हैं तो हे भगवन् ! इस तीसरे वर्ग में श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन का क्या भाव प्रतिपादित किया है ?''

सूत्र 2

मूल– **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमिय समिद्धे, वण्णओ। तस्सणं भद्दिलपुरस्स नयरस्स बहिया उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए सिरीवणे नामं उज्जाणे होत्था, वण्णओ। जियसत्तू राया। तत्थणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई होत्था, अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्सणं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा। तस्स णं नागस्स गाहावइस्स पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए अणीयसेणे नामं कुमारे होत्था, सुकुमाले जाव सुरूवे। पंचधाई परिक्खित्ते। तं जहा खीरधाई, मज्जणधाई, मंडणधाई, कीलावणधाई, अंकधाई। जहा दढपइण्णे जाव गिरि–कन्दरमल्लीणेव चंपकवर–पायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।**

संस्कृत छाया– एवं खलु जंबू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये भद्दिलपुरं नाम नगरं अभवत्। ऋद्धस्तिमितसमृद्धं, वर्णकः। तस्य खलु भद्दिलपुरस्य नगरस्य बहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे श्रीवनं नाम उद्यानं अभवत्, वर्णकः। जितशत्रुः नाम राजा तत्र खलु भद्दिलपुरे नगरे नाग नाम गाथापतिः अभवत्। आढ्यो यावत् अपरिभूतः तस्य खलु नागस्य गाथापतेः सुलसा नाम भार्या अभवत्, सुकुमारा यावत् सुरूपा। तस्य खलु नागस्य गाथापतेः पुत्रः सुलसायाः भार्यायाः आत्मजः अनीकसेनो नाम कुमारः आसीत्, सुकुमारः यावत् सुरूपः। पंचधात्री परिक्षिप्तः। तद् यथा क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मण्डनधात्री, क्रीडनधात्री, अङ्कधात्री। यथा दृढप्रतिज्ञः यावत् गिरिकन्दरासीनः चंपकवरपादप इव सुखं सुखेन परिवर्द्धते।

अन्वयार्थ–एवं खलु जंबू ! = इस प्रकार निश्चय से हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल में और उस समय में, **भद्दिलपुरे नामं नयरे होत्था** = 'भद्दिलपुर' नाम का नगर था, (जो), **रिद्धत्थिमिय समिद्धे, वण्णओ** = ऋद्ध, स्तिमित, समृद्ध व वर्णनीय था। **तस्सणं भद्दिलपुरस्स नयरस्स बहिया** = उस भद्दिलपुर नगर के बाहर, **उत्तर पुरत्थिमे दिसिभाए** = उत्तरपूर्व दिशा (ईशानकोण) में, **सिरीवणे नामं उज्जाणे होत्था** = श्रीवन नाम का उद्यान था, **वण्णओ। जियसत्तू राया** = वर्णनीय, (वहाँ का) जितशत्रु

राजा था। **तत्थणं भद्दिलपुरे नयरे नागे** = उस भद्दिलपुर नगर में नाग, **नामं गाहावई होत्था** = नाम का गाथापति था, (जो), **अड्ढे जाव अपरिभूए** = आढ्य यावत् अपरिभूत था। **तस्सणं नागस्स गाहावइस्स सुलसा** = उस नाग गाथापति की सुलसा, **नामं भारिया होत्था** = नाम की स्त्री थी, **सुकुमाला जाव सुरूवा** = (जो) सुकुमार यावत् सुरूपवती थी। **तस्स णं नागस्स गाहावइस्स** = उस नाग गाथापति का, **पुत्ते सुलसाए भारियाए अत्तए** = पुत्र सुलसा पत्नी का आत्मज, **अणीयसेणे नामं कुमारे होत्था** = अनीकसेन नाम का कुमार था, **सुकुमाले जाव सुरूवे** = (जो) सुकोमल यावत् रूपवान था। **पंचधाई-परिक्खित्ते** = पाँच धायमाताओं से घिरा हुआ प्रतिपालित था, **तं जहा** = वे ये हैं-, **खीरधाई, मज्जणधाई, मंडणधाई** = क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मंडनधात्री, **कीलावणधाई, अंकधाई** = क्रीड़नधात्री, अंकधात्री। **जहा दढपइण्णे जाव** = जैसे दृढप्रतिज्ञ उसी प्रकार यावत्, **गिरिकन्दर-मल्लीणेव चंपकवर-पायवे** = गिरिकन्दरा में लीन चम्पक वृक्ष के समान, **सुहंसुहेणं परिवड्ढइ** = सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

भावार्थ-श्री सुधर्मा-''हे जम्बू! उस काल उस समय में 'भद्दिलपुर' नाम का नगर था। वह नगर उत्तम नगरों के सभी गुणों से युक्त धन-धान्यादि से परिपूर्ण, भय रहित एवं भवनादि से समृद्ध वर्णन करने योग्य था।

उस भद्दिलपुर नगर के बाहर ईशान कोण में श्रीवन नाम का उद्यान था। वह फलदार व फूलों से वेष्टित वृक्षों से युक्त था। वहाँ 'जितशत्रु' राजा राज करता था। उस नगर में 'नाग' नाम का गाथापति रहता था। वह अत्यन्त समृद्धिशाली और अपरिभूत यानी जिसका कोई अपमान नहीं कर सके, ऐसा था।

उस नाग गाथापति के सुलसा नाम की भार्या थी। जो सुकुमाल यावत् अत्यन्त रूपवती थी। उस नाग गाथापति का पुत्र और सुलसा भार्या का अंगज अनीकसेन नाम का कुमार था। वह सुकोमल यावत् शरीर से रूपवान् था। वह पाँच धाय-माताओं से घिरा रहता था, जो उसका लालन-पालन करती थीं-जैसे-1. क्षीर धात्री यानी दूध पिलाने वाली धाय, 2. मज्जनधात्री-स्नान कराने वाली धाय, 3. मंडनधात्री-वस्त्रादि से अलंकृत करने वाली धाय, 4. क्रीड़ा धात्री-क्रीड़ा यानी खेल खिलाने वाली धाय, और 5. अंक धात्री-गोद में खिलाने वाली धाय। दृढ़ प्रतिज्ञ कुमार के समान यावत् पहाड़ी गुफा में लीन-सुरक्षित चंपक वृक्ष के समान वह सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

सूत्र 3

मूल- **तएणं तं अणीयसेणं कुमारं साइरेगं अट्ठवास-जायं अम्मापियरो कलायरिय जाव भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तएणं तं अणीयसेणं कुमारं उम्मुक्क-बालभावं जाणित्ता अम्मापियरो सरिसयाणं सरिस-वयाणं, सरिसत्तयाणं, सरिसलावण्ण-रूवजोवण्ण गुणोववेयाणं, सरिसेहिंतो कुलेहिंतो आणिल्लियाणं बत्तीसाए इब्भवरकण्णगाणं एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति।**

संस्कृत छाया– ततः खलु तं अनीकसेनं नाम कुमारं सातिरेकं अष्टवर्षजातम् अम्बापितरौ कलाचार्यः यावत् भोगसमर्थो जातश्चापि आसीत्। ततः खलु तं अनीकसेनं कुमारं उन्मुक्तबालभावं ज्ञात्वा अम्बापितरौ सदृशीनां सदृशवयस्कानां, सदृशत्वचां सदृशलावण्यरूपयौवनगुणोपपेतानां, सदृशेभ्यः कुलेभ्यः आनीतानां द्वात्रिंशत् इभ्यवरकन्यकानां एकदिवसे खलु पाणिं ग्राहयन्ति।

अन्वयार्थ–तएणं तं अणीयसेणं कुमारं = तदनन्तर उस अनीकसेन कुमार को, **साइरेगं अट्ठवास–जायं =** साधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर, **अम्मापियरो कलायरिय जाव =** मातापिता ने कलाचार्य के पास भेजा, **भोगसमत्थे जाए यावि होत्था =** यावत् भोग समर्थ युवावस्था सम्पन्न हुआ। **तएणं तं अणीयसेणं कुमारं =** तब उस अनीकसेन कुमार को, **उम्मुक्क–बालभावं जाणित्ता =** बालभाव से मुक्त जानकर, **अम्मापियरो सरिसयाणं =** (उसके) माता–पिता (उस) सरीखी, **सरिसवयाणं, सरिसत्तयाणं = सरिसलावण्ण–रूवजोवण्ण =** समान वयवाली, समान त्वचावाली, समान लावण्य–रूप–यौवन–, **गुणोववेयाणं, सरिसेहिंतो कुलेहिंतो =** गुण सम्पन्न, समान कुलवाली, **आणिल्लियाणं बत्तीसाए =** आनीत (लाई गई), बत्तीस, **इब्भवरकण्णगाणं =** श्रेष्ठ इभ्य सेठों की कन्याओं के साथ, **एगदिवसेणं पाणिं गिण्हावेंति =** एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाते हैं।

भावार्थ–इस तरह अनीकसेन कुमार को आठ वर्ष से अधिक वय का होने पर माता–पिता ने कलाचार्य के पास भेजा, यावत् वह भोग समर्थ युवावस्था को प्राप्त हुआ। तब उस अनीकसेन कुमार को माता–पिता ने उन्मुक्त बालभाव–अर्थात् युवावस्था में प्रविष्ट हुआ जानकर, उसके अनुरूप समान वय वाली, समान त्वचा और समान रूप लावण्य तथा तारुण्य गुण वाली, अपने समान कुलों से लाई गई बत्तीस इभ्य श्रेष्ठियों की कन्याओं के साथ उसका एक ही दिन में पाणिग्रहण संस्कार करवाया।

सूत्र 4

मूल– **तएणं से नागे गाहावई अणीयसेणस्स कुमारस्स इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा–बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा महब्बलस्स जाव उप्पिंपासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं भोगभोगाइं, भुंजमाणे विहरइ।**

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी जाव समोसढे, सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तए णं तस्स अणीयसेणस्स कुमारस्स तं महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा,

नवरं सामाइयमाइयाइं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ। वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे। एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः नागः गाथापतिः अनीकसेनाय कुमाराय इदं एतद् रूपं प्रीतिदानं ददाति, तद् यथा–द्वात्रिंशत् हिरण्यकोटिकं यथा महाबलस्य यावत् उपरिप्रासादवरगते स्फुटद्भिः मृदंगमस्तकैः (ताड्यमानैः) भोगभोगान् भुञ्जानः विहरति।

तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमिः यावत् समवसृतः, श्रीवने उद्याने यथाप्रतिरूपम् अवग्रहं यावत् विहरति। परिषद् निर्गता। ततः खलु तस्य अनीकसेनस्य कुमारस्य तं महज्जनशब्दं यथा गौतमस्तथा, विशेषेण सामायिकादीनि चतुर्दश पूर्वाणि अधीते। विंशति वर्षाणि दीक्षापर्यायः, शेषं तथैव यावत् शत्रुञ्जये पर्वते मासिक्या संलेखनया यावत् सिद्धः। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्यांगस्य अंतकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य प्रथमस्य अध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

अन्वयार्थ–तएणं से नागे गाहावई = तब वह नाग गाथापति, **अणीयसेणस्स कुमारस्स इमं** = अनीकसेन कुमार के लिए यह, **एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा–** = इस प्रकार का प्रीतिदान देता है। जैसे, **बत्तीसं हिरण्णकोडीओ जहा** = बत्तीस करोड़ चाँदी सोना आदि जैसा, **महब्बलस्स जाव** = महाबल के प्रकरण में उल्लेख है। **उप्पिंपासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं** = यावत् श्रेष्ठ भवन में ऊपर बजते हुए मृदंग यन्त्रों के साथ, **भोगभोगाइं, भुंजमाणे विहरइ** = भोग भोगता हुआ (वह) विचरने लगा।

तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय में, **अरहा अरिट्ठणेमी जाव समोसढे** = अरिहन्त अरिष्टनेमि यावत् पधारे, **सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं** = (और) श्रीवन उद्यान में यथा विधि, **उग्गहं जाव विहरइ** = अवग्रह आदि की आज्ञा लेकर यावत् विचरने लगे। **परिसा णिग्गया** = परिषद् आई, **तए णं तस्स अणीयसेणस्स कुमारस्स** = तब उस अनीकसेन कुमार ने, **तं महया जणसद्दं जहा गोयमे तहा** = जन समुदाय का कोलाहल सुनकर 'गौतम' की तरह दीक्षादि ली, **नवरं सामाइयमाइयाइं** = विशेष रूप से सामायिक आदि, **चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ** = चौदह पूर्व का ज्ञान सीखा, **वीसं वासाइं**

परियाओ = बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली, **सेसं तहेव जाव सेत्तुंजे पव्वए** = शेष उसी प्रकार यावत् शत्रुंजय पर्वत पर, **मासियाए संलेहणाए जाव सिद्धे** = 1 मास की संलेखणा करके यावत् सिद्ध हुए, **एवं खलु जम्बू !** = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें, **अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स** = अंग अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग के, **पढमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = प्रथम अध्ययन का यह भाव दर्शाया है।

भावार्थ–पाणिग्रहण कराने के पश्चात् उस नाग गाथापति ने अनीकसेन कुमार को इस प्रकार का प्रीति-दान दिया, जैसे कि बत्तीस करोड़, चाँदी-सोना आदि। इसका विवरण महाबल के समान समझना। यावत् अनीकसेन ऊपर प्रासाद में बजती हुई मृदङ्गों की तालों के साथ उत्तम भोगों को भोगता हुए रहने लगा। उस काल उस समय में अरिहंत अरिष्टनेमि यावत् भद्दिलपुर पधारे। श्रीवन नाम के उद्यान में यथाविधि अवग्रह-तृणादि की आज्ञा लेकर यावत् विचरने लगे। धर्म श्रवण करने परिषद् आई। तदनन्तर उस अनीकसेन कुमार के कर्ण रन्ध्रों में प्रभु दर्शनार्थ जाते हुए जन समूह का विपुल जनरव पड़ा। गौतम के समान कुमार अनीकसेन ने भी समवसरण में जा, प्रभु का उपदेश सुन, माता पिता की आज्ञा ले प्रभु चरणों में दीक्षा ग्रहण की। विशेष यह कि सामायिक आदि 14 पूर्वों का ज्ञान सीखा। 20 वर्ष की श्रमण पर्याय का पालन किया। शेष उसी प्रकार यावत् शत्रुंजय पर्वत पर जाकर एक मास की संलेखना करके यावत् सिद्ध हुए। उपसंहार-इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंतकृद्दशा नामक अंग शास्त्र के तीसरे वर्ग में प्रथम अध्ययन का इस भाँति वर्णन किया है।''

।। इइ पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

2-6 अज्झयणाणि-2-6 अध्ययन

सूत्र 5

मूल– **जहा अणीयसेणे, एवं सेसावि-(अणंतसेणे अजियसेणे अणिहयरिऊ देवसेणे सत्तुसेणे) छ अज्झयणा एगगमा-बत्तीसओ दाओ, बीसं वासाइं परियाओ, चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जंति, सेत्तुंजे जाव सिद्धा। छट्ठमज्झयणं समत्तं।**

संस्कृत छाया– यथा अनीकसेनः, एवं शेषान्यपि-(2. अनंतसेनः, 3. अजितसेनः, 4. अनिहतरिपुः, 5. देवसेनः, 6. शत्रुसेनः।) षडध्ययनानि एकगमानि, द्वात्रिंशत्

दाय: विंशति वर्षाणि दीक्षापर्याय: चतुर्दशपूर्वाणि अधीयते, शत्रुञ्जये यावत् सिद्धा: । षष्ठाध्ययनं समाप्तम् ।

अन्वयार्थ–जहा अणीयसेणे, एवं सेसावि– = जैसे अनीकसेन वैसे शेष दूसरे भी। जैसे, **(अणंतसेणे अजियसेणे अणिहयरिऊ देवसेणे सत्तुसेणे** = (अनन्तसेन, अजितसेन, अनिहतरिपु, देवसेन, शत्रुसेन) ये, **छ अज्झयणा एगगमा–बत्तीसओ दाओ बीसं वासाइं परियाओ** = छ अध्ययन एक समान हैं। (सबने) बत्तीस करोड़ का दहेज (लेकर) बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय पालन कर, **चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जंति** = चौदह पूर्वों का अध्ययन किया एवं, **सेत्तुंजे जाव सिद्धा छट्ठमज्झयणं समत्तं** = शत्रुंजय पर्वत पर यावत् सिद्ध हुए।

भावार्थ–जिस प्रकार अनीकसेन कुमार का वर्णन किया गया, उसी प्रकार शेष अध्ययन भी–2. अनन्तसेन, 3. अजितसेन, 4. अनिहतऋपु, 5. देवसेन और 6. शत्रुसेन–समझना। ये छ ही अध्ययन एक समान हैं। इन सबको भी बत्तीस–बत्तीस करोड़ चाँदी सोने का दहेज मिला। सबका 20/20 वर्ष का दीक्षा काल रहा। सबने चौदह पूर्व का अध्ययन किया एवं सभी शत्रुंजय पर्वत पर यावत् सिद्ध हुए।

।। इइ 2–6 अज्झयणाणि–2–6 अध्ययन समाप्त ।।

सत्तममज्झयणं–सप्तम अध्ययन

मूल– **जइ णं भंते ! उक्खेवो सत्तमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारईए नयरीए जहा पढमे, नवरं–वसुदेवे राया, धारिणी देवी, सीहो सुमिणे, सारणे कुमारे, पण्णासओ दाओ, चोद्दस पुव्वाइं, वीसं वासाइं परियाओ, सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे।**

संस्कृत छाया– यदि खलु भदन्त ! उत्क्षेपक: सप्तमस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां यथा प्रथमे, विशेषेण वसुदेवो राजा, धारिणी देवी, सिंह: स्वप्ने, सारण: कुमार:, पंचाशत् दाय:, चतुर्दश पूर्वाणि, विंशति वर्षाणि दीक्षापर्याय:, शेष: यथा गौतमस्य यावत् शत्रुञ्जये सिद्ध: ।

अन्वयार्थ–जइ णं भंते ! उक्खेवो सत्तमस्स = हे पूज्य ! सातवें का यह उत्क्षेपक है, **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **बारईए नयरीए जहा पढमे** = द्वारिका नगरी थी। जैसे प्रथम में, **नवरं–वसुदेवे राया धारिणी देवी** = विशेष–वसुदेव राजा, धारिणी रानी थी, **सीहो सुमिणे,**

सारणे कुमारे = स्वप्न में रानी ने सिंह देखा। उनके सारण नाम का कुमार था, **पण्णासओ दाओ, चोद्दस पुव्वाइं वीसं वासाइं परियाओ =** पचास-पचास स्वर्ण रजत कोटि का दहेज मिला। 14 पूर्व सीखे, बीस वर्ष दीक्षा पर्याय पाली, **सेसं जहा गोयमस्स जाव =** शेष गौतम की तरह यावत्, **सेत्तुंजे सिद्धे =** शत्रुंजय पर सिद्ध हुए।

भावार्थ–उत्क्षेपक शब्द सातवें अध्ययन का प्रारम्भिक वाक्य है। अर्थात् आर्य जम्बू–''हे पूज्य! श्रमण भगवान महावीर ने छठे अध्ययन का जो भाव कहा वह सुना, अब सातवें अध्ययन का क्या अधिकार है ? कृपा कर कहिये।''

आर्य सुधर्मा–''उस काल उस समय में द्वारिका नगरी थी। वहाँ का वर्णन प्रथम अध्ययन के समान समझा जाय। विशेष वहाँ वसुदेव राजा थे और धारिणी देवी उनकी रानी थी। देवी ने सिंह का स्वप्न देखा। उनके सारण नाम का कुमार था। उसे विवाह में पचास-पचास स्वर्ण रजत कोटि का दहेज मिला। सारण कुमार ने सामायिक आदि 14 पूर्वों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। शेष गौतम कुमार की तरह शत्रुंजय पर्वत पर एक मास की संलेखना सहित यावत् सिद्ध हुए।''

।। इइ सत्तमं अज्झयणं–सप्तम अध्ययन समाप्त ।।

अट्ठममज्झयणं-अष्टम अध्ययन

मूल– **जइ णं भंते ! उक्खेवो अट्ठमस्स ! एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए जहा पढमे, जाव अरहा अरिट्ठणेमी सामी समोमढे। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स छ अंतेवासी, छ अणगारा भायरो सहोयरा होत्था। सरिसया, सरिसत्तया, सरिसव्वया, नीलुप्पल-गवल-गुलिय अयसिकुसुमप्पगासा, सिरिवच्छंकियवच्छा कुसुमकुंडल-भद्दलया, नलकुब्बरसमाणा। तए णं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणा**

विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबन्धं करेह तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, जहा गोयमसामी, जाव इच्छामो णं भंते! छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं संघाडएहिं बारवईए नयरीए जाव अडित्तए। अहा सुहं देवाणुप्पिया! तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ सहस्संबवणाओ, उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति पडिणिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं अतुरियं जाव अडंति। तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए नयरीए उच्चणीय मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए गिहं अणुप्पविट्ठे। तएणं सा देवई देवी ते अणगारे एज्जमाणे पासित्ता हट्ठ तुट्ठ चित्तमाणंदिया पीईमाणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदिता, नमंसित्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, भरित्ता ते अणगारे पडिलाभेइ पडिलाभित्ता वंदइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

संस्कृत छाया– यदि खलु भदन्त ! उत्क्षेपकः अष्टमस्य। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन्काले तस्मिन्समये द्वारावत्यां नगर्यां यथा प्रथमे, यावन्नर्हनरिष्टनेमिः स्वामी समवसृतः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हतः अरिष्टनेमेः षट् अन्तेवासिनः, षट् अनगाराः भ्रातरः सहोदराः अभवन्। सदृशकाः, सदृक्त्वचः, सदृशवयस्काः, नीलोत्पल-गवलगुलिका अलसीकुसुमप्रकाशाः श्रीवत्सांकितवक्षसः, कुसुमकुंडलभद्र-

अलका: नलकूवरसमाना: । तत: खलु ते षडनगारा: यस्मिन्नेव दिवसे मुंडा: भूत्वा अगारात् अनगारितां प्रव्रजिता:, तस्मिन्नेव दिवसे अर्हन्तं अरिष्टनेमिं वंदन्ति नमस्यन्ति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवं अवदन्–इच्छाम: खलु भदन्त ! युष्माभि: अभ्यनुज्ञाता: सन्त: यावज्जीवं षष्ठं षष्ठेन अनिक्षिप्तेन तप:कर्मणा आत्मानं भावयन्त: विहर्तुम् । यथासुखं देवानुप्रिय ! मा प्रतिबन्धं कुरुत तत: खुल ते षडनगारा: अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञाता: सन्त: यावज्जीवं षष्ठं षष्ठेन यावत् विहरन्ति । तत: खलु ते षड् अनगारा: अन्यदा कदाचित् षष्ठक्षपण–पारणायां प्रथमायां पौरुष्यां स्वाध्यायं कुर्वन्ति, यथा गौतमस्वामी, यावत् इच्छाम: खलु भदन्त ! षष्ठक्षपणस्य पारणायां युष्माभि: अभ्यनुज्ञाता: सन्त: त्रिभि: संघाटकै: द्वारावत्यां नगर्यां यावत् अटितुम् । यथासुखं देवानुप्रिया ! तत: खलु ते षडनगारा: अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञाता: सन्त: अर्हन्तं अरिष्टनेमिं वंदन्ति, नमस्यन्ति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा, अर्हत: अरिष्टनेमे: अन्तिकात् सहस्राम्रवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रामन्ति, प्रतिनिष्क्रम्य त्रिभि: संघाटकै: अत्वरितं यावत् अटन्ति तत्र खलु एक: संघाटक: द्वारावत्यां नगर्याम् उच्च–नीच–मध्यमानि कुलानि गृहसमुदानस्य भिक्षाचर्यायै अटन् वसुदेवस्य राज्ञो देवक्या: देव्या: गृहे अनुप्रविष्ट: । तत: खलु सा देवकी देवी तौ अणगारौ आगच्छन्तौ दृष्ट्वा हृष्टतुष्टचित्तानन्दिता प्रीतिमना परमसौमनस्यिता हर्षवशविसर्पणहृदया आसनात् अभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्त्थाय सप्ताष्ट पदानि अनुगच्छति । अनुगम्य त्रि: कृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणां करोति । कृत्वा, वन्दति नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्र भक्तगृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सिंहकेसराणां मोदकानां स्थालं भरति, भृत्वा तौ अनगारौ प्रतिलाभयति प्रतिलाभ्य, वंदति, नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा प्रतिविसर्जयति ।

अन्वयार्थ–जइणं भंते ! उक्खेवो अट्ठमस्स ! = हे पूज्य ! यह आठवें का उत्क्षेपक है, **एवं खलु जम्बूं ! तेणं कालेणं तेणं समएणं** = इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल उस समय, **बारवईए नयरीए जहा पढमे** = पूर्वोक्त वर्णन वाली द्वारिका नगरी में, **जाव अरहा अरिट्ठणेमी सामी समोमढे** = यावत् अर्हन् अरिष्टनेमि स्वामी पधारे, **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स छ अंतेवासी** = अर्हन्त अरिष्टनेमि के छ अन्तेवासी शिष्य, **अणगारा भायरो सहोयरा होत्था** = अणगार सहोदर भाई थे, **सरिसया, सरिसत्तया, सरिसव्वया** = वे समान आकार त्वचा रूपवय वाले थे, **नीलुप्पल–गवल–गुलिय अयसिकुसुमप्पगासा** = नील कमल, सींग की गुली, अलसी के फूल के तुल्य,

सिरिवच्छंकियवच्छा = श्रीवत्स से अंकित वक्ष वाले थे। **कुसुमकुंडल–भद्दलया, नलकुब्बरसमाणा** = कुसुम तुल्य कोमल, कुंडल सम घुंघराले बाल वाले नलकूवर के समान थे। **तएणं ते छ अणगारा जं चेव दिवसं मुंडा भवित्ता अगाराओ अणगारियं** = इसके बाद वे छ अणगार जिस दिन अगार से अणगार धर्म में दीक्षित, **पव्वइया, तं चेव दिवसं** = होकर प्रव्रजित हुए, उसी दिन, **अरहं अरिट्ठणेमिं वंदंति, नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–** = अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दन नमन करते हैं। वन्दन नमस्कार कर वे इस प्रकार बोले–, **इच्छामो णं भंते! तुब्भेहिं** = "हे भदन्त! हम चाहते हैं आपकी, **अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए** = आज्ञा पाकर जीवन भर के लिए, **छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं** = बेले–बेले का तप करते हुए एवं उससे, **अप्पाणं भावेमाणा विहरित्तए** = अपनी आत्मा को भावित करते हुए विहरना।" **अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबन्धं करेह** = "हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो वैसा करो, धर्म कार्य में प्रमाद मत करो।" **तएणं ते छ अणगारा अरहया अरिट्ठणेमिणा** = तब वे छ ही मुनि अर्हन्त अरिष्टनेमि की, **अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए** = आज्ञा पाकर जीवन पर्यन्त, **छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरंति** = बेले–बेले का तप करते हुए विचरने लगे, **तए णं ते छ अणगारा अण्णया कयाइं** = तब उन छ अणगारों ने अन्यदा किसी दिन, **छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए** = बेले के तप के पारणों में प्रथम, **पोरिसीए सज्झायं करेंति** = प्रहर में स्वाध्याय की। **जहा गोयमसामी** = गौतम कुमार की तरह, **जाव इच्छामो णं भंते!** = यावत् बोले–"हे भगवन्! हम चाहते हैं, **छट्ठक्खमणस्स पारणए तुब्भेहिं** = बेले के तप के पारणों में आपकी, **अब्भणुण्णाया समाणा तिहिं** = आज्ञा पाकर तीन (दो–दो के तीन), **संघाडएहिं बारवईए नयरीए** = संघाड़ों से द्वारिका नगरी में, **जाव अडित्तए** = यावत् भ्रमण करना।" **अहा सुहं देवाणुप्पिया!** = 'तथास्तु देवानुप्रियों!', **तएणं ते छ अणगारा** = इसके बाद वे 6 अणगार, **अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा** = अर्हन्त अरिष्टनेमि से आज्ञा प्राप्त कर, **अरहं अरिट्ठणेमिं** = उन अर्हन्त अरिष्टनेमि भगवान को, **वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता** = वन्दन करते हैं नमस्कार करते हैं। वन्दन, **नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = नमस्कार करके अर्हन्त अरिष्टनेमि के, **अंतियाओ सहस्संबवणाओ** = पास से सहस्राम्र वन नामक (उस), **उज्जाणाओ पडिणिक्खमंति** = उद्यान से वे प्रस्थान करते हैं। **पडिणिक्खमित्ता तिहिं संघाडएहिं** = प्रस्थान करके दो–दो मुनि तीन संघाड़ों में, **अतुरियं जाव अडंति** = त्वरा रहित यावत् भ्रमण करने लगे। **तत्थ णं एगे संघाडए बारवईए** = इसके बाद एक संघाड़ा द्वारिका, **नयरीए उच्चणीय मज्झिमाइं** = नगरी में ऊँच नीच मध्यम, **कुलाइं घरसमुदाणस्स** = कुलों के घरों में सामूहिक, **भिक्खायरियाए अडमाणे** = भिक्षाचरी हेतु भ्रमण करते–करते, **वसुदेवस्स रण्णो देवईए देवीए** = वसुदेवजी की राणी देवकी देवी के, **गिहं अणुप्पविट्ठे** = प्रासाद में प्रविष्ट हुआ। **तएणं सा देवई देवी** = इसके बाद वह देवकी देवी, **ते अणगारे एज्जमाणे** = उन दोनों मुनियों को आते हुए, **पासित्ता हट्ठ तुट्ठ चित्तमाणंदिया** = देख हृष्टतुष्टचित्त व आनन्दित हुई, **पीईमाणा परमसोमणस्सिया** = (उसके) मन

में प्रीति हुई (तथा वह) परम सौमनस्यवती हुई। **हरिसवसविसप्पमाणहियया =** हर्ष के कारण उसका हृदय नाचने लगा। **आसणाओ अब्भुट्ठेइ =** आसन से उठती है, **अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठपयाइं =** उठकर, सात आठ कदम, **अणुगच्छइ =** सामने जाती है, **अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो =** सामने जाकर तीन बार, **आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता =** आदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है प्रदक्षिणा करके, **वंदइ नमंसइ, वंदिता नमंसित्ता =** वंदन-नमस्कार करता है, वंदन-नमस्कार करके, **जेणेव भत्तघरे तेणेव =** जहाँ रसोई घर था, **उवागच्छइ, उवागच्छित्ता =** आती है, आकर, **सीहकेसराणं मोयगाणं थालं भरेइ, भरित्ता =** सिंहकेशरी मोदक का थाल भरती है भरकर, **ते अणगारे पडिलाभेइ पडिलाभित्ता =** उन अनगारों को प्रतिलाभित करती है, प्रतिलाभित करके, **वंदइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ =** वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार करके विसर्जित करती है।

भावार्थ–आर्य जम्बू-''हे पूज्य! सातवें अध्ययन का भाव सुना, अब आठवें का क्या अधिकार है?'' आर्य सुधर्मा-''इस प्रकार हे जम्बू! उस काल, उस समय में द्वारिका नगरी में प्रथम अध्ययन में किये गये वर्णन के अनुसार यावत् अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान पधारे।'' उस काल और उस समय में भगवान नेमिनाथ के अन्तेवासी-शिष्य छः मुनि सहोदर भाई थे। वे समान आकार वाले, समान त्वचा और अवस्था में समान दिखने वाले थे, शरीर का रंग नीलकमल, सींग की गुली और अलसी के फूल जैसा था। श्रीवत्स से अंकित वक्ष और कुसुम के समान कोमल एवं कुंडल के समान घुंघराले बालों वाले वे सभी मुनि नल-कूवर के समान थे। तब (दीक्षित होने के पश्चात्) वे छहों मुनि जिस दिन मुंडित होकर अगार से अणगार धर्म में प्रव्रजित हुए, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोले-''हे भगवन्! हम चाहते हैं कि आपकी आज्ञा पाकर जीवन पर्यन्त निरन्तर बेले-बेले की तपस्या द्वारा अपनी-अपनी आत्मा को भावित (शुद्ध) करते हुए विचरण करें।'' प्रभु ने कहा-''हे देवानुप्रियों! जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो वही कार्य करो, प्रमाद मत करो।'' तब भगवान के ऐसा कहने पर वे छहों मुनि भगवान अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर जीवन भर के लिये बेले-बेले की तपस्या करते हुए यावत् विचरण करने लगे। तदनन्तर उन छहों मुनियों ने अन्यदा किसी समय, बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय की और गौतम स्वामी के समान यावत् बोले-''हे भगवन्! हम बेले की तपस्या के पारणे में आपकी आज्ञा पाकर दो-दो के तीन संघाड़ों से द्वारिका नगरी में यावत् भिक्षा हेतु भ्रमण करना चाहते हैं।''

तब उन छहों मुनियों ने अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा पाकर प्रभु को वंदन नमस्कार किया। वंदन नमस्कार कर वे भगवान अरिष्टनेमि के पास से सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान करते हैं। उद्यान से निकल कर वे दो-दो के तीन संघाटकों में सहज गति से यावत् भ्रमण करने लगे। उन तीन संघाटकों (संघाड़ों) में से एक संघाड़ा द्वारिका नगरी के ऊँच-नीच-मध्यम कुलों में, एक घर से दूसरे घर, भिक्षाचर्या के हेतु भ्रमण करता

हुआ राजा वसुदेव की महारानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ। उस समय वह देवकी रानी उन दो मुनियों के एक संघाड़े को अपने यहाँ आते देखकर हृष्ट-तुष्ट चित्त के साथ आनन्दित हुई। प्रीतिवश उसका मन परमाह्लाद को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय कमल प्रफुल्लित हो उठा। आसन से उठकर वह सात आठ पग (कदम) मुनियुगल के सम्मुख गई। सामने जाकर उसने तीन बार दक्षिण की ओर से उनकी प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा कर उन्हें वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार के पश्चात् जहाँ भोजनशाला है, वहाँ आई। भोजनशाला में आकर कृष्ण के प्रसाद योग्य सिंहकेसर मोदकों से एक थाल भरा और थाल भर कर उन मुनियों को प्रतिलाभ दिया, प्रतिलाभ देने के पश्चात् देवकी ने उन्हें पुन: वन्दन-नमन किया एवं वंदन-नमन कर उन्हें प्रतिविसर्जित किया अर्थात् लौटने दिया।

सूत्र 4

मूल- **तयाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए बारवईए नयरीए उच्च जाव पडिविसज्जेइ। तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए उच्चणीय जाव पडिलाभेइ, पडिलाभित्ता एवं वयासी-किण्णं देवाणुप्पिया! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए दुवालस-जोयण-आयामाए नवजोयण-वित्थिण्णाए पच्चक्खं देवलोग-भूयाए समणा णिग्गंथा उच्चणीयमज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणा भत्तपाणं नो लभंति ? जण्णं ताइं चेव कुलाइं भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो अणुप्पविसंति।**

संस्कृत छाया- तदनन्तरं च खलु द्वितीय: संघाटक: द्वारावत्यां नगर्यां उच्चै: यावत् प्रतिविसर्जयति। तदनन्तरं च खलु तृतीय: संघाटक: उच्चनीच यावत् प्रतिलाभयति, प्रतिलाभ्य एवमवदत्-किं खलु देवानुप्रिया! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारावत्यां नगर्यां द्वादशयोजनायामायां नव योजनविस्तीर्णायां प्रत्यक्षं देवलोकभूतायां श्रमणा: निर्ग्रन्था: उच्चनीचमध्यमानि कुलानि गृहसमुदायस्य भिक्षाचर्यायै अटन्त: भक्तपानं न लभन्ते ? येन खलु तानि चैव कुलानि भक्तपानाय भूयोभूय: अनुप्रविशन्ति।

अन्वयार्थ-तयाणंतरं च णं दोच्चे संघाडए = इसके बाद मुनियों का दूसरा संघाड़ा, **बारवईए नयरीए उच्च जाव =** द्वारिका नगरी में उच्च यावत् नीच आदि, **पडिविसज्जेइ =** कुलों में भ्रमण करता हुआ आया पूर्ववत् उसको भी विसर्जित किया। **तयाणंतरं च णं तच्चे संघाडए =** इसके बाद मुनियों का

तीसरा संघाड़ा, **उच्चणीय जाव पडिलाभेइ =** आया यावत् उसे भी प्रतिलाभ देती है।, **पडिलाभित्ता एवं वयासी– =** उसको प्रतिलाभ देकर इस प्रकार बोली–, **किण्णं देवाणुप्पिया ! =** हे देवानुप्रिय ! क्या, **कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे =** कृष्ण वासुदेव की इस, **बारवईए नयरीए =** द्वारावती नगरी में, **दुवालस–जोयण–आयामाए =** बारह योजन लम्बाई वाली, **नवजोयण–वित्थिण्णाए =** नौ योजन विस्तार वाली, **पच्चक्खं देवलोग–भूयाए =** प्रत्यक्ष देवलोक रूपिणी में, **समणा णिग्गंथा उच्चणीयमज्झिमाइं =** श्रमण निर्ग्रन्थ ऊँच–नीच व मध्यम, **कुलाइं घरसमुदाणस्स =** कुलों में गृह समुदाय की, **भिक्खायरियाए अडमाणा =** भिक्षाचर्या के लिए भ्रमण करते हुए, **भत्तपाणं नो लभंति ? =** आहार पानी नहीं प्राप्त करते हैं ? **जण्णं ताइं चेव कुलाइं =** जिससे कि उन्हीं कुलों में, **भत्तपाणाए भुज्जो भुज्जो =** आहार पानी के लिए बार–बार, **अणुप्पविसंति =** प्रवेश करते हैं।

भावार्थ–प्रथम संघाटक के लौट जाने के पश्चात् उन छ: सहोदर साधुओं के तीन संघाटकों में से दूसरा संघाटक भी द्वारिका के उच्च–नीच–मध्यम आदि कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद में आया। देवकी ने प्रथम संघाटक की भाँति दूसरे मुनि संघाटक को भी हृष्टतुष्ट हो सिंह केसर मोदकों का प्रतिलाभ देकर यावत् विसर्जित किया। द्वितीय संघाटक के लौट जाने के अनन्तर उन मुनियों का तीसरा संघाड़ा भी द्वारिका नगरी में ऊँच–नीच–मध्यम कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करता हुआ महारानी देवकी के प्रासाद में प्रविष्ट हुआ। देवकी ने पहले आये दो संघाटकों के समान उस तीसरे संघाटक को भी हृष्ट–तुष्ट हो यावत् सिंह केसर मोदकों का प्रतिलाभ दिया।

प्रतिलाभ देकर महारानी देवकी इस प्रकार बोली–हे देवानुप्रियों ! क्या कृष्ण–वासुदेव की इस बारह योजन लम्बी, नौ योजन चौड़ी प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारिका नगरी में श्रमण–निर्ग्रन्थ उच्च–नीच एवं मध्यम कुलों के गृह समुदाय से, भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए आहार–पानी नहीं प्राप्त करते, जिससे कि उन्हें (श्रमण–निर्ग्रन्थों को) आहार–पानी के लिये जिन कुलों में पहले आ चुके हैं, उन्हीं कुलों में पुन: पुन: आना पड़ता है ?''

टिप्पणी–देवकी के द्वारा भगवान नेमिनाथ के छ: मुनियों के तीन संघाड़ों को प्रतिलाभ देकर तीसरी बार आए हुए संघाड़े से प्रतिलाभ के बाद पृच्छा की गई–क्या श्री कृष्ण की इस देव–निर्मित द्वारिका नगरी में श्रमण निर्ग्रन्थों को गोचरी के लिए विविध कुलों में घूमते हुए आहार–पानी प्राप्त नहीं होता, जिससे कि उनको एक ही कुल में आहार–पानी के लिये बार–बार आना पड़ता है ? चरितानुवाद के इस प्रसंग से निम्न फलितार्थ निकलते हैं–

1. उस समय के मुनियों का तीसरे प्रहर में ही एक बार भिक्षा जाना।
2. साधु मण्डल में 2–2 का संघाड़ा बनाकर भिक्षा की जाती थी। आज की तरह सब की एक गोचरी नहीं होती थी।
3. जिस घर में एक संघाड़ा होकर गया है, वहाँ–पीछे घूमते–घूमते दूसरा संघाड़ा भी चला जाता था।
4. श्रमण–निर्ग्रन्थ बिना कारण दूसरी–तीसरी बार घरों में नहीं जाते थे।
5. संभावित भिक्षाकाल में यदि दूसरी–तीसरी बार में भी कोई साधु मधुकरी वृत्ति से भिक्षा करने आवे तो श्रावक निर्दोष आहार से उनको महारानी देवकी की तरह प्रतिलाभ दें, यह गृहस्थ का धर्म है।

सूत्र 5

मूल– **तए णं ते अणगारा देवइं देवीं एवं वयासी–नो खलु देवाणुप्पिये! कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे बारवईए नयरीए जाव देवलोगभूयाए समणा णिग्गंथा उच्चणीय–जाव अडमाणा भत्तपाणं नो लब्भंति नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं दोच्चंपि तच्चंपि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति। एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए अत्तया छ भायरो सहोयरा सरिसया जाव नलकुब्बरसमाणा अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म संसार भउव्विग्गा भीया जम्ममरणाओ, मुंडा जाव पव्वइया। तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो नमंसामो वंदित्ता, नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो इच्छामो णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा जाव अहासुहं। देवाणुप्पिया! तए णं अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाया समाणा जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं जाव विहरामो तं अम्हे अज्ज छट्ठक्खमणपारणगंसि–पढमाए पोरिसीए जाव अडमाणा तव गेहं अणुप्पविट्ठा। तं नो खलु देवाणुप्पिए! ते चेव णं अम्हे। अम्हे णं अण्णे। देवईं देवीं एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।**

संस्कृत छाया– ततः खलु तौ अनगारौ देवकीं देवीं एवम् अवदताम् न खलु देवानुप्रिये! कृष्णस्य वासुदेवस्य अस्यां द्वारावत्यां नगर्यां यावत् देवलोकभूतायां श्रमणाः निर्ग्रन्थाः उच्चनीच यावत् अटन्तः भक्तपानं न लभन्ते। नो चैव खलु तानि तानि कुलानि द्वितीयमपि तृतीयमपि भक्त–पानाय अनुप्रविशन्ति। एवं खलु देवानुप्रिये! वयं भद्दिलपुरे नगरे नागस्य गाथापतेः पुत्राः सुलसायाः भार्यायाः आत्मजाः षट् भ्रातरः सहोदराः सदृशकाः यावत् नल–कूवरसमानाः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य संसारभयोद्विग्नाः भीताः जन्म–मरणाभ्याम्, मुंडाः यावत् प्रव्रजिताः। ततः खलु वयं यस्मिन् एव दिवसे प्रव्रजिताः तस्मिन् एव दिवसे अर्हन्तं अरिष्टनेमिं

वन्दाम: नमस्याम: वन्दित्वा, नमस्यित्वा इमम् एतद् रूपम् अभिग्रहम् अभिगृह्णीम: इच्छाम: खलु भदन्त ! युष्माभि: अभ्यनुज्ञाता: सन्त: यावत् यथासुखम्। हे देवानुप्रिये ! तत: खलु वयम् अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञाता: सन्त: यावज्जीवं षष्ठं षष्ठेन यावत् विहराम: । तद् वयम् अद्य षष्ठक्षपणपारणके प्रथमायां पौरुष्यां यावत् अटन्त: तव गृहं (गेहं) अनुप्रविष्टा: । तत् न खलु देवानुप्रिये ! ते चैव खलु वयम्। वयं खलु अन्ये। देवकीं देवीं एवं वदति, उदित्वा यस्या: दिश: प्रादुर्भूता: तस्यामेव दिशायां प्रतिगता: ।

अन्वयार्थ–तए णं ते अणगारा = इसके बाद उन दोनों मुनियों ने, **देवइं देवीं एवं वयासी–** = देवकी देवी को इस प्रकार कहा, **नो खलु देवाणुप्पिये !** = हे देवानुप्रिये ! ऐसा नहीं है कि, **कण्हस्स वासुदेवस्स इमीसे** = कृष्ण वासुदेव की इस, **बारवईए नयरीए जाव** = द्वारिका नगरी में जो यावत्, **देवलोगभूयाए** = देवलोक के समान है, **समणा णिग्गंथा उच्चणीय–** = श्रमण निर्ग्रन्थ उच्च-नीच आदि, **जाव अडमाणा** = कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए, **भत्तपाणं नो लब्भंति** = आहार पानी नहीं प्राप्त करते हैं, **नो चेव णं ताइं ताइं कुलाइं** = और न ही उन-उन कुलों में, **दोच्चंपि तच्चंपि भत्तपाणाए अणुप्पविसंति** = दूसरी बार तीसरी बार आहार, पानी के लिए मुनि लोग प्रवेश करते हैं। **एवं खलु देवाणुप्पिए !** = हे देवानुप्रिये ! बात इस प्रकार है कि-, **अम्हे भद्दिलपुरे नयरे नागस्स** = हम भद्दिलपुर नगर में नाग, **गाहावइस्स पुत्ता सुलसाए भारियाए** = गाथापति के पुत्र उनकी भार्या सुलसा के, **अत्तया छ भायरो** = अंगजात छ: भाई, **सहोयरा सरिसया जाव** = एक ही उदर से उत्पन्न हुए समान आकृति वाले यावत्, **नलकुब्बरसमाणा** = नलकूबर के समान हैं। **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = (हमने) अर्हंत अरिष्टनेमि भगवान से, **अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म** = धर्म सुनकर मन में धारण करके, **संसार भउव्विग्गा** = संसार के भय से उद्विग्न, **भीया जम्ममरणाओ** = जन्म व मरण के भय से भीत, **मुंडा जाव पव्वइया** = मुण्डित होकर आखिर प्रव्रज्या, (दीक्षा), ग्रहण कर ली। **तए णं अम्हे जं चेव दिवसं पव्वइया तं चेव दिवसं** = तदनन्तर हमने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की उसी दिन, **अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामो नमंसामो** = अरिहन्त अरिष्टनेमि की वन्दना की उन्हें नमस्कार किया। **वंदित्ता, नमंसित्ता** = वन्दना नमस्कार करके, **इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हामो** = इस प्रकार के अभिग्रह को धारण किया है। **इच्छामो णं भंते !** = हे भगवन् ! निश्चय से हम चाहते हैं, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा** = आपसे आज्ञा दिये गये होते हुए, **जाव अहासुहं** = (बेले-बेले की तपस्या करना) (प्रभु ने कहा) तथास्तु-जैसा सुख हो। **देवाणुप्पिया ! तए णं** = हे देवानुप्रिये ! तदनन्तर, **अम्हे अरहया अरिट्ठणेमिणा** = हम भगवान अरिष्टनेमि से, **अब्भणुण्णाया समाणा** = आज्ञा दिये गये होकर, **जावज्जीवाए छट्ठं छट्ठेणं** = जीवनभर के लिए निरन्तर बेले-बेले की तपस्या करते हुए, **जाव विहरामो** = विचरण कर रहे हैं। **तं अम्हे अज्ज**

छट्ठक्खमणपारणगंसि– = अत: हम आज बेले के तप के पारणे में, **पढमाए पोरिसीए जाव** = प्रथम प्रहर में (स्वाध्याय करके) यावत्, **अडमाणा** = विचरण करते हुए, **तव गेहं अणुप्पविट्ठा** = आपके घर में प्रविष्ट हुए हैं। **तं नो खलु देवाणुप्पिए!** = इस कारण नहीं है हे देवानुप्रिये!, **ते चेव णं अम्हे** = हम वे ही (पहले आये हुए)। **अम्हे णं अण्णे** = हम निश्चय ही दूसरे हैं। **देवईं देवीं एवं वयइ** = देवकी देवी को इस प्रकार मुनि कहते हैं। **वइत्ता** = कहकर, **जामेव दिसं पाउब्भूए** = जिस दिशा से प्रगट हुए थे। **तामेव दिसं पडिगए** = उसी दिशा में चले गये।

भावार्थ–देवकी देवी द्वारा इस प्रकार का प्रश्न पूछे जाने पर वे मुनि देवकी देवी से इस प्रकार बोले– ''हे देवानुप्रिये! ऐसी बात तो नहीं है कि कृष्ण–वासुदेव की नगरी में श्रमण–निर्ग्रन्थ उच्च–नीच–मध्यम कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए आहार–पानी प्राप्त नहीं करते और न ही मुनि जन भी आहार–पानी के लिये उन एक बार स्पृष्ट कुलों में दूसरी–तीसरी बार जाते हैं।

वास्तव में बात इस प्रकार है–''हे देवानुप्रिये! भद्दिलपुर नगर में हम नाग गाथापति के पुत्र और नाग की सुलसा भार्या के आत्मज छ: सहोदर भाई हैं, पूर्णत: समान आकृति वाले यावत् नल कुबेर के समान। हम छहों भाइयों ने अरिहंत अरिष्टनेमि के पास धर्म–उपदेश सुनकर और उसे धारण करके संसार के भय से उद्विग्न एवं जन्ममरण से भयभीत हो।

मुंडित होकर यावत् श्रमण–धर्म की दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर हमने जिस दिन दीक्षा ग्रहण की थी, उसी दिन अरिहंत अरिष्टनेमि को वंदन–नमन किया और वन्दन–नमस्कार कर इस प्रकार का यह अभिग्रह धारण करने की आज्ञा चाही–''हे भगवन्! आपकी अनुज्ञा पाकर हम जीवन पर्यन्त बेले–बेले की तपस्या पूर्वक अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरना चाहते हैं।'' यावत् प्रभु ने कहा–''देवानुप्रियो! जिससे तुम्हें सुख हो वैसा ही करो, प्रमाद न करो।'' उसके बाद अरिहंत अरिष्टनेमि की अनुज्ञा प्राप्त होने पर हम जीवन भर के लिये निरन्तर बेले–बेले की तपस्या करते हुए विचरण करने लगे।

इस प्रकार आज हम छहों भाई–बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करने के पश्चात्–प्रभु अरिष्टनेमि की आज्ञा प्राप्त कर यावत् तीन संघाटकों में भिक्षार्थ उच्च–मध्यम एवं निम्न कुलों में भ्रमण करते हुए तुम्हारे घर आ पहुँचे हैं। तो देवानुप्रिये! ऐसी बात नहीं है कि पहले दो संघाटकों में जो मुनि तुम्हारे यहाँ आये थे वे हम ही हैं। वस्तुत: हम दूसरे हैं।''

उन मुनियों ने देवकी देवी को इस प्रकार कहा और यह कहकर वे जिस दिशा से आये थे उसी दिशा की ओर चले गये।

सूत्र 6

मूल– **तए णं तीसे देवईए देवीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे। एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं–बालत्तणे वागरिया–तुमं णं देवाणुप्पिए! अट्ठपुत्ते पयाइस्ससि, सरिसए जाव नलकुब्बरसमाणे, नो चेव णं भारहेवासे अण्णाओ अम्मयाओ तारिसए पुत्ते पयाइस्संति। तं णं मिच्छा इमं णं पच्चक्खमेव दिस्सइ भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ सरिसए जाव पुत्ते पयायाओ। तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं वंदामि नमंसामि वंदित्ता, नमंसित्ता इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी लहुकरणजाणप्पवरं जाव उवट्ठवेंति जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ।**

संस्कृत छाया– ततः खलुः तस्याः देवक्याः देव्याः अयमेतद्रूपः अध्यवसायः यावत् समुत्पन्नः। एवं खलु अहं पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तकुमारश्रमणेन बालत्वे व्याकृता–त्वं खलु देवानुप्रिये! अष्ट पुत्रान् प्रजनिष्यसे, सदृशकान् यावत् नलकूवरसमानान्, न चैव खलु भारते वर्षे अन्याः अम्बाः तादृशकान् पुत्रान् प्रजनिष्यन्ते। तत् खलु मिथ्या इदम् खलु प्रत्यक्षमेव दृश्यते भारते वर्षे अन्या अपि अम्बा ईदृशान् यावत् पुत्रान् प्राजनिषत। तद् गच्छामि खलु अर्हन्तं अरिष्टनेमिं वन्दामि, नमस्यामि, वन्दित्वा, नमस्यित्वा इदं च खलु एतद्रूपं व्याकृतं प्रक्ष्यामि इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते। संप्रेक्ष्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दाययति, शब्दयित्वा एवमवादीत्–लघुकरणं यानप्रवरं यावत् उपस्थापयतु। यथा देवानन्दा यावत् पर्युपासते।

अन्वयार्थ–तएणं तीसे देवईए देवीए = तदनन्तर उस देवकी देवी के मन में, **अयमेयारूवे अज्झत्थिए** = इस प्रकार का विचार, **जाव समुप्पण्णे** = यावत् उत्पन्न हुआ। **एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे** = पोलासपुर नगर में मुझे इस प्रकार, **अइमुत्तेणं कुमारसमणेणं–** = अतिमुक्त कुमार श्रमण ने, **बालत्तणे वागरिया–** = बचपन में कहा था–, **तुमं णं देवाणुप्पिए! अट्ठपुत्ते** = हे देवानुप्रिये! तूं आठ पुत्रों को, **पयाइस्ससि, सरिसए जाव** = जन्म देगी (जो) समान आकृतिवाले यावत्, **नलकुब्बरसमाणे** = नलकूवर के समान (होंगे), **नो चेव णं भारहेवासे अण्णाओ** = निश्चय ही भारत में अन्य कोई, **अम्मयाओ तारिसए पुत्ते** = माता वैसे पुत्रों को नहीं, **पयाइस्संति** = जन्म देगी। **तं णं मिच्छा इमं णं** = वह (कथन)

निश्चय ही मिथ्या है यह, **पच्चक्खमेव दिस्सइ** = प्रत्यक्ष ही दिख रहा है, **भारहे वासे अण्णाओ वि अम्मयाओ** = भारतवर्ष में दूसरी भी माताओं ने, **सरिसए जाव पुत्ते पयायाओ।** = ऐसे यावत् पुत्रों को जन्म दिया है। **तं गच्छामि णं अरहं अरिट्ठणेमिं** = इसलिये मैं अर्हन्त भगवान अरिष्टनेमि के पास जाती हूँ। **वंदामि नमंसामि** = वंदना नमस्कार करती हूँ। **वंदित्ता, नमंसित्ता इमं** = वन्दना, नमस्कार करके इस, **च णं एयारूवं वागरणं** = इस प्रकार के उक्ति वैपरीत्य को, **पुच्छिस्सामि त्ति कट्टु एवं संपेहेइ** = पूछूँगी ऐसा मन में विचार करती है। **संपेहित्ता कोडुंबियपुरिसे** = विचार कर अमात्यादि पुरुषों को, **सद्दावेइ सद्दावित्ता एवं वयासी** = बुलवाती है, बुलाकर ऐसे कहा, **लहुकरणजाणप्पवरं जाव** = शीघ्रगति वाले यानप्रवर को यावत्, **उवट्ठवेंति** = शीघ्र उपस्थित करो। (यान द्वारा वहाँ जाकर), **जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ** = देवानन्दा की तरह उपासना करती है।

भावार्थ–इस प्रकार की बात कहकर मुनियों के लौट जाने के पश्चात् उस देवकी देवी को इस प्रकार का विचार यावत् चिन्तापूर्ण अध्यवसाय उत्पन्न हुआ–"पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार नामक श्रमण ने मेरे समक्ष बचपन में इस प्रकार भविष्यवाणी की थी कि हे देवानुप्रिये देवकी! तुम परस्पर एक–दूसरे से पूर्णत: समान आठ पुत्रों को जन्म दोगी, जो नलकूबर के समान होंगे। भरतक्षेत्र में दूसरी कोई माता वैसे पुत्रों को जन्म नहीं देगी।" पर वह भविष्यवाणी मिथ्या सिद्ध हुई। क्योंकि यह प्रत्यक्ष ही दिख रहा है कि भरतक्षेत्र में अन्य माताओं ने भी सुनिश्चितरूपेण ऐसे पुत्रों को जन्म दिया है। मुनि की बात मिथ्या नहीं होनी चाहिये, फिर यह प्रत्यक्ष में उससे विपरीत क्यों? ऐसी स्थिति में मैं अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान की सेवा में जाऊँ, उन्हें वन्दन–नमस्कार करूँ और वन्दन–नमस्कार करके इस प्रकार के कथन के विषय में प्रभु से पूछूँगी।

इस प्रकार सोचा। ऐसा सोचकर देवकी देवी ने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाया और बुलाकर ऐसा बोली–"शीघ्रगामी श्रेष्ठ रथ को उपस्थित करो।" आज्ञाकारी पुरुषों ने रथ उपस्थित किया। देवकी महारानी उस रथ में बैठ कर यावत् प्रभु के समवसरण में उपस्थित हुई और देवानन्दा द्वारा जिस प्रकार भगवान महावीर की पर्युपासना किये जाने का वर्णन है, उसी प्रकार महारानी देवकी भगवान अरिष्टनेमि की यावत् पर्युपासना करने लगी।

जहा देवाणंदा जाव पज्जुवासइ–देवकी महारानी का भगवान की सेवा में जाने का वर्णन भगवती सूत्र शतक 9 उद्देशक 33 में वर्णित देवानन्दा की दर्शन यात्रा के समान बतलाया गया है। अर्थात् महारानी देवकी धार्मिक रथ में बैठकर द्वारिका के मध्य बाजारों में होती हुई नन्दन वन में भगवान के अतिशय को देखकर रथ से नीचे उतरी और पाँच अभिगम करके समवशरण में जाकर भगवान को विधिवत् वन्दन नमस्कार करके सेवा करने लगी।

सूत्र 7

मूल– **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी देवइं देवीं एवं वयासी–से नूणं तव देवई ! इमे छ अणगारे पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था, एवं खलु पोलासपुरे नयरे अइमुत्तेणं तं चेव जाव णिग्गच्छसि, णिग्गच्छित्ता जेणेव ममं अंतियं हव्वमागया से नूणं देवई देवी अयमट्ठे समट्ठे ? हंता! अत्थि। एवं खलु देवाणुप्पिए! तेणं कालेणं तेणं समएणं भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे०। तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था। सा सुलसा गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएणं वागरिया–एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ। तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं चेव हरिणेगमेसि देवभत्ता यावि होत्था। हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव पायच्छित्ता उल्लपडसाडिया महरिहं पुप्फच्चणं करेइ, करित्ता जाणुपायवडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा आहारेइ वा नीहारेइ वा।**

संस्कृत छाया– ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमी देवकीं देवीम् एवम् अवदत्–तत् नूनं तव देवकि ! इमान् षडनगारान् दृष्ट्वा एतद्रूपः अध्यवसायः यावत् समुत्पन्नः एवं खलु पोलासपुरे नगरे अतिमुक्तेन तत् चैव यावत् निर्गच्छसि, निर्गत्य यथैव मम अन्तिके शीघ्रमागता, तत् नूनं देवकि देवि ! अयम् अर्थः समर्थः ? हन्त ! अस्ति। एवं खलु देवानुप्रिये ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये भद्रिलपुरे नगरे नागो नामकः गाथापतिः परिवसति, आढ्यः। तस्य खलु नागस्य गाथापतेः सुलसा नाम भार्या आसीत्। सा सुलसा गाथापत्नी बालत्वे चैव नैमित्तिकेन व्याकृता–एषा खलु दारिका निंदुः भविष्यति। ततः खलु सा सुलसा बालप्रभृतिं चैव हरिणगमेषिणो देवस्य भक्ता अभवत्। हरिणगमेषिणः प्रतिमां करोति, कृत्वा कल्याकल्यं (प्रतिदिनं प्रातः) स्नाता यावत् प्रायश्चित्ता सार्द्रपटशाटिका महार्घ्यं पुष्पार्चनं करोति, कृत्वा जानुपादपतिता प्रणामं करोति, ततः पश्चात् आहारयति वा नीहारयति वा

अन्वयार्थ–तए णं अरहा अरिट्ठणेमी = तदनन्तर अरिहन्त अरिष्टनेमि ने देवकी, **देवइं देवीं एवं वयासी– =** देवी को इस प्रकार कहा–, **से नूणं तव देवई ! इमे =** तो निश्चय ही हे देवकी ! तुझे इन, **छ अणगारे पासित्ता =** छ: अनगारों को देखकर इस, **अयमेयारूवे अज्झत्थिए =** प्रकार का मतिभ्रम, **जाव समुप्पज्जित्था =** यावत् उत्पन्न हो गया है। **एवं खलु पोलासपुरे =** इस प्रकार पोलासपुर, **नयरे अइमुत्तेणं =** नगर में अतिमुक्त कुमार ने मुझे, **तं चेव जाव णिग्गच्छसि =** ऐसा कहा था और उसी प्रकार यावत् वन्दन को निकली, **णिग्गच्छित्ता जेणेव =** निकलकर जैसे ही, **ममं अंतियं हव्वमागया से नूणं देवई देवी =** शीघ्रता से मेरे पास चली आई हो। तब क्या निश्चय ही देवकी देवि ! **अयमट्ठे समट्ठे ? =** यह अर्थ तुम्हारे द्वारा समर्थित है ? **हंता ! अत्थि। =** हे भगवन् ! ऐसा ही है। **एवं खलु देवाणुप्पिए ! =** इस प्रकार हे देवानुप्रिये ? **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस काल उस समय में, **भद्दिलपुरे नयरे नागे नामं =** भद्रिलपुर नगर में नाग नामक, **गाहावई परिवसइ, अड्ढे० =** गाथापति रहा करता था, जो कि धन सम्पन्न (आढ्य) था। **तस्स णं नागस्स गाहावइस्स सुलसा नामं भारिया होत्था =** उस नाग नामक गाथापति के सुलसा नाम की भार्या थी। **सा सुलसा–गाहावइणी बालत्तणे चेव निमित्तिएणं वागरिया– =** उस सुलसा गाथापत्नी को बचपन में ही किसी निमित्तज्ञ ने कहा–, **एस णं दारिया णिंदू भविस्सइ =** यह बालिका मृतवत्सा होगी। **तए णं सा सुलसा बालप्पभिइं =** तब वह सुलसा बाल्यकाल, **चेव हरिणेगमेसि =** से ही हरिणैगमेषी, **देवभत्ता यावि होत्था =** देवभक्ता थी, **हरिणेगमेसिस्स पडिमं करेइ, करित्ता =**(उसने) हरिणैगमेषी की प्रतिमा बनाई, बना कर, **कल्लाकल्लिं ण्हाया जाव =** शास्त्रविधि से स्नान कर यावत्, **पायच्छित्ता उल्लपडसाडिया =** दु:स्वप्न निवारण को प्रायश्चित्त कर गीली साड़ी पहने हुए उसकी, **महरिहं पुप्फच्चणं करेइ =** महर्घ (उत्तमोत्तम) पुष्पों से अर्चना करती थी। **करित्ता जाणुपायवडिया पणामं करेइ, तओ पच्छा =** अर्चना करके घुटने व पैर टेककर (पंचांग) प्रणाम करती, इसके बाद, **आहारेइ वा नीहारेइ वा =** आहार नीहारादि करती।

भावार्थ–तदनन्तर अर्हत् अरिष्टनेमि देवकी को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले–"हे देवकी ! क्या इन छ: साधुओं को देख कर वस्तुत: तुम्हारे मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ कि पोलासपुर नगर में अतिमुक्त कुमार ने तुम्हें आठ अप्रतिम पुत्रों को जन्म देने का जो भविष्यकथन किया था, वह मिथ्या सिद्ध हुआ। उस विषय में पृच्छा करने के लिये तुम यावत् वन्दन को निकली और निकलकर शीघ्रता से मेरे पास चली आई हो, हे देवकी ! क्या यह बात ठीक है ?" देवकी ने कहा–"हाँ भगवन् ! ऐसा ही है।" प्रभु की दिव्य ध्वनि प्रस्फुटित हुई–"हे देवानुप्रिये ! उस काल उस समय में भद्दिलपुर नगर में नाग नाम का गाथापति रहा करता था, जो आढ्य (महान् ऋद्धिशाली) था। उस नाग गाथापति की सुलसा नामक पत्नी थी। उस सुलसा गाथापत्नी को बाल्यावस्था में ही किसी निमितज्ञ ने कहा–यह बालिका मृतवत्सा यानी मृत बालकों को जन्म देने वाली होगी। तत्पश्चात् वह सुलसा बाल्यकाल से ही हरिणैगमेषी देव की भक्त बन गई।

उसने हरिणैगमेषी देव की मूर्ति बनाई। मूर्ति बना कर प्रतिदिन प्रात:काल स्नान करके यावत् दु:स्वप्न निवारणार्थ प्रायश्चित्त कर गीली साड़ी पहने हुए उसकी बहुमूल्य पुष्पों से अर्चना करती। पुष्पों द्वारा पूजा के पश्चात् घुटने टिकाकर पाँचों अंग नमा कर प्रणाम करती, तदनन्तर आहार करती, निहार करती एवं अपनी दैनन्दिनी के अन्य कार्य करती।

सूत्र 8

मूल– **तए णं तीसे सुलसाए गाहावइणीए भत्तिबहुमाण–सुस्सूसाए हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था। तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठाए सुलसां गाहावइणीं तुमं च णं दोण्णि वि समउउयाओ करेइ। तएणं तुब्भे दो वि सममेव गब्भे गिण्हह, सममेव गब्भे परिवहह, सममेव दारए पयायह। तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइइ। तए णं से हरिणेगमेसी देवे सुलसाए अणुकंपणट्ठाए विणिहायमावण्णाए दारए करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता तव अंतियं साहरइ। तं समयं च णं तुमं पि नवण्हं मासाणं सुकुमालदारए पसवसि। जे वि य णं देवाणुप्पिए! तव पुत्ता ते वि य तव अंतियाओ करयल–संपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए अंतिए साहरइ। तं तव चेव णं देवइ ! एए पुत्ता, नो चेव णं सुलसाए गाहावइणीए।**

संस्कृत छाया– ततः खलु तस्याः सुलसायाः गाथापत्न्याः भक्तिबहुमान–शुश्रूषया हरिणैगमेषी देवः आराधितः यावत् अभवत्। ततः खलु सः हरिणैगमेषी देवः सुलसायाः गाथापत्न्याः अनुकंपनार्थम् सुलसां गाथापत्नीं त्वां च खलु द्वेऽपि समऋतुके करोति। ततः खलु युवां द्वेऽपि सममेव काले गर्भौ ग्रह्णीथः, समकालमेव गर्भौ परिवहथः, सममेव च दारकौ प्रजनयथः ततः खलु सा सुलसा गाथापत्नी विनिघातमापन्नान् दारकान् प्रजनयति। ततः खलु सः हरिणैगमेषी देवः सुलसायाः अनुकंपनार्थम् विनिघातमापन्नान् दारकान् करतलसंपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा तव अन्तिकं समाहरति। तस्मिन् समये च खलु त्वमपि नवानां मासानां सुकुमारदारकान् प्रसूषे। येऽपि च खलु हे देवानुप्रिये! तव पुत्राः तेऽपि च तव अन्तिकात् करतलसंपुटेन गृह्णाति, गृहीत्वा सुलसायाः गाथापत्न्याः अंतिके समाहरति। तत् तव चैव खलु देवकि ! एते पुत्राः, न चैव खलु सुलसायाः गाथापत्न्याः।

अन्वयार्थ–तए णं तीसे सुलसाए = तदनन्तर उस सुलसा, **गाहावइणीए भत्तिबहुमाण–** = गाथापत्नी की उस भक्ति व, **सुस्सूसाए** = बहुमानपूर्वक शुश्रूषा (सेवा) से, **हरिणेगमेसी देवे आराहिए यावि होत्था** = हरिणैगमेषी देव प्रसन्न हो गया। **तए णं से हरिणेगमेसी देवे** = तब उस हरिणैगमेषी देव ने, **सुलसाए गाहावइणीए अणुकंपणट्ठाए** = सुलसा गाथापत्नी पर अनुकंपा हेतु, **सुलसां गाहावइणीं तुमं च** = सुलसा गाथापत्नी को और तुझको, **णं दोण्णि वि समउउयाओ करेइ** = दोनों को समकाल में ऋतुयुक्त किया। **तएणं तुब्भे दो वि सममेव** = तदनन्तर तुम दोनों ने ही समान काल में, **गब्भे गिण्हह, सममेव** = गर्भ धारण किया, समान काल में ही, **गब्भे परिवहह** = गर्भ की पालना की व, **सममेव दारए पयायह** = समान काल में ही बालकों को जन्म दिया था। **तए णं सा सुलसा गाहावइणी विणिहायमावण्णे दारए पयाइइ** = तब उस सुलसा गाथापत्नी ने मरे हुए बालकों को जन्म दिया। **तए णं से हरिणेगमेसी देवे** = तदनन्तर वह हरिणैगमेषी देव, **सुलसाए अणुकंपणट्ठाए** = सुलसा पर अनुकम्पा करने के लिये, **विणिहायमावण्णाए दारए** = उसके मृत बालकों को, **करयलसंपुडेणं गिण्हइ** = दोनों हाथों में ले लेता है, **गिण्हित्ता तव अंतियं साहरइ** = लेकर तेरे पास ले आता है। **तं समयं च णं तुमं पि नवण्हं** = उस समय तुम भी नव, **मासाणं सुकुमालदारए पसवसि** = मास का काल पूर्ण होने पर सुकुमार बालकों को जन्म देती, **जे वि य णं देवाणुप्पिए !** = और जो भी हे देवानुप्रिये !, **तव पुत्ता ते वि य तव** = तुम्हारे पुत्र होते उनको भी वह तुम्हारे, **अंतियाओ करयल–संपुडेणं गिण्हइ** = पास से दोनों हाथों से ग्रहण कर लेता, **गिण्हित्ता सुलसाए गाहावइणीए** = लेकर सुलसा गाथापत्नी के, **अंतिए साहरइ** = पास ले जाता, **तं तव चेव णं देवइ !** = अत: तेरे ही हैं हे देवकि !, **एए पुत्ता, नो चेव णं** = ये पुत्र। नहीं हैं उस, **सुलसाए गाहावइणीए** = सुलसा गाथापत्नी के।

भावार्थ–तत्पश्चात् उस सुलसा गाथापत्नी की उस भक्ति–बहुमान पूर्वक की गई शुश्रूषा से देव प्रसन्न हो गया। प्रसन्न होने के पश्चात् हरिणैगमेषी देव सुलसा गाथापत्नी पर अनुकम्पा करने हेतु सुलसा गाथापत्नी को तथा तुम्हें–दोनों को समकाल में ही ऋतुमती (रजस्वला) करता और तब तुम दोनों समकाल में ही गर्भ धारण करतीं, समकाल में ही गर्भ का वहन करतीं और समकाल में ही बालक को जन्म देतीं। प्रसवकाल में वह सुलसा गाथापत्नी मरे हुए बालक को जन्म देती।

तब वह हरिणैगमेषी देव सुलसा पर अनुकम्पा करने के लिये उसके मृत बालक को दोनों हाथों में लेता और लेकर तुम्हारे पास लाता। इधर उस समय तुम भी नव मास का काल पूर्ण होने पर सुकुमार बालक को जन्म देतीं। हे देवानुप्रिये ! जो तुम्हारे पुत्र होते उनको भी हरिणैगमेषी देव तुम्हारे पास से अपने दोनों हाथों में ग्रहण करता और उन्हें ग्रहण कर सुलसा गाथापत्नी के पास लाकर रख देता (पहुँचा देता)। अत: वास्तव में हे देवकी ! ये तुम्हारे ही पुत्र हैं, सुलसा गाथापत्नी के नहीं है।

टिप्पणी–देवकी देवी के पुत्रों का हरिणेगमेषी देव द्वारा संहरण–देवकी देवी ने पूर्व जन्म में अपनी जेठानी के छह रत्न चुराये थे, उसके बदले में उसके छह पुत्र चुराये गये। कथा–सुलसा और देवकी पूर्व जन्म में देवरानी–जेठानी थी। एक बार देवकी ने सुलसा के छह रत्न चुराकर भय के वश किसी चूहे के बिल में डाल दिये। बिल में छुपाने का मतलब यह था कि खोजने पर कदाचित् मिल भी जाय तो मेरी बदनामी नहीं हो, और चूहों ने इधर–उधर कर दिया समझकर सन्तोष कर लिया जाय। कदाचित् नहीं मिले तो कुछ दिनों बाद में उन्हें अपने बना लूँगी। संयोगवश वे रत्न देवरानी को मिल गये और उनकी नजरों में चूहा चोर समझा गया। कहा जाता है कि वह चूहा हरिणेगमेषी देव बना और देराणी सुलसा के रूप में उत्पन्न हुई। पूर्व भव की रत्नचोरी के फलस्वरूप देवकी के पुत्रों का हरण हुआ, और चूहे पर चोरी को दोष मँढ़ा जाने से हरिणेगमेषी देव ने पुत्रों का हरण कर सुलसा के पास पहुँचाया। हरिणेगमेषी देव चूहे का जीव कहा गया है।

सूत्र 9

मूल– **तए णं सा देवई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव हियया, अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता। आगय–पण्हुया पप्फुयलोयणा कंचुय पडिक्खित्तिया दरियवलयबाहा धाराहय–कलंब–पुप्फगं विव समूससिय रोमकूवा ते छप्पि अणगारे अणिमिसाए दिट्ठीए पेहमाणी, पेहमाणी सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता वंदइ, नमंसइ। वंदित्ता, नमंसित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवई नयरी अणुप्पविसइ। अणुप्पविसित्ता जेणेव सए गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव सए वासघरे, जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, सयंसि सयणिज्जंसि निसीयइ।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सा देवकी देवी अर्हतः: अरिष्टनेमेः अंतिके एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टा यावत् हृदया, अर्हन्तम् अरिष्टनेमिम् वन्दते, नमस्यति। वन्दित्वा नमस्यित्वा यत्रैव ते षडनगारा तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य तान् षडपि अनगारान् वन्दते नमस्यति। वन्दित्वा नमस्यित्वा आगतप्रस्नुता (स्तन्यप्रस्रवणा) प्रफुल्ल-लोचना परिक्षिप्तकंचुका दीर्णवलयभुजा (बाहू) धाराहतकदंबपुष्पकं इव समुच्छ्वसित रोमकूपा तान् षडप्यनगारान् अनिमेषया दृष्ट्या प्रेक्षमाणा प्रेक्षमाणा सुचिरं निरीक्षते, निरीक्ष्य वन्दते नमस्यति। वन्दित्वा, नमस्यित्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तम् अरिष्टनेमिम् त्रिः कृत्वा आदक्षिणं प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा तमेव धार्मिकम् यानप्रवरम् दूरोहति, दूरुह्य यत्रैव द्वारावती नगरी तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य द्वारावतीं नगरीम् अनुप्रविशति। अनुप्रविश्य यत्रैव स्वकं गृहम् यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव स्वकं वासगृहम्, यत्रैव स्वकं शयनीयम् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, स्वके शयनीये निषीदति।

अन्वयार्थ–तए णं सा देवई देवी = तब वह देवकी देवी, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = अरिहंत अरिष्टनेमिनाथ के, **अंतिए एयमट्ठं सोच्चा** = पास यह बात सुनकर, **निसम्म हट्ठतुट्ठा जाव** = मनन कर यावत् हृष्टतुष्ट, **हियया, अरहं अरिट्ठणेमिं** = हृदय वाली ने अरिहन्त अरिष्टनेमि, **वंदइ नमंसइ। वंदित्ता नमंसित्ता** = को वन्दना की, नमस्कार किया, वन्दना नमस्कार करके, **जेणेव ते छ अणगारा तेणेव उवागच्छइ** = जहाँ वे छः अनगार थे वहीं आई, **उवागच्छित्ता ते छप्पि अणगारे** = आकर उन छः ही मुनिवरों को, **वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता** = वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके, **आगय-पण्हुया** = स्तनों से दूध झराती हुई, **पप्फुयलोयणा कंचुय पडिक्खित्तिया** = प्रफुल्लित नयन वाली कंचुकी के बन्धन जिसके टूट गये हैं, **दरियवलयबाहा** = हर्षातिरेक से जिसकी बाहुओं के कड़े चटक गये हैं, **धाराहय-कलंब-पुप्फगंविव** = वर्षा की धारा से सिक्त कदंबपुष्प की तरह, **समूससिय रोमकूवा** = जिसके रोमकूप उच्छ्वसित हो रहे हैं, **ते छप्पि अणगारे** = ऐसी वह उन छहों अनगारों को, **अणिमिसाए दिट्ठीए** = अपलक दृष्टि से देखती हुई-, **पेहमाणी, पेहमाणी सुचिरं** = देखती हुई बहुत समय तक, **निरिक्खइ, निरिक्खित्ता** = देखती रही, देखकर, **वंदइ, नमंसइ। वंदित्ता, नमंसित्ता** = वन्दना नमस्कार करके, **जेणेव अरहा अरिट्ठणेमि** = जहाँ भगवान अरिष्टनेमि थे, **तेणेव उवागच्छइ** = वहीं पर आ जाती

है, **उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं** = आकर भगवान नेमिनाथ को, **तिक्खुत्तो आयाहिणं** = तीन बार आदक्षिणा, **पयाहिणं करेइ** = प्रदक्षिणा करती है, **करित्ता वंदइ नमंसइ** = करके वन्दन-नमस्कार करती है। **वंदित्ता नमंसित्ता** = वन्दन-नमस्कार करके, **तमेव धम्मियं जाणप्पवरं** = उसी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर, **दुरुहइ, दुरुहित्ता** = आरूढ होती है, आरूढ होकर, **जेणेव बारवई नयरी** = जहाँ पर द्वारावती नगरी है, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ पर आती है, **उवागच्छित्ता बारवई** = वहाँ आकर द्वारावती, **नयरी अणुप्पविसइ** = नगरी में प्रवेश करती है। **अणुप्पविसित्ता जेणेव** = द्वारावती नगरी में प्रवेश करके, **सए गिहे, जेणेव बाहिरिया** = जहाँ पर अपना प्रासाद और बाहरी, **उवट्ठाणसाला तेणेव** = उपस्थान शाला (बैठक) है वहाँ, **उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = पर आती है, आकर उस, **धम्मियाओ जाणप्पवराओ** = धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर से, **पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता** = उतरती है, उतरकर, **जेणेव सए वासघरे** = जहाँ स्वयं का निवास गृह है, **जेणेव सए सयणिज्जे** = जहाँ स्वयं का शयन स्थान है, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ पर आती है, **उवागच्छित्ता, सयंसि** = वहाँ आकर अपनी, **सयणिज्जंसि निसीयइ** = शय्या पर बैठती है।

भावार्थ–इसके अनन्तर उस देवकी देवी ने अरिहंत अरिष्टनेमि के मुखारविन्द से इस प्रकार की यह रहस्यपूर्ण बात सुनकर तथा हृदयंगम कर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदया होकर अरिहंत अरिष्टनेमि भगवान को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके वे छहों मुनि जहाँ विराजमान थे, वहाँ आई। आकर वह उन छहों मुनियों को वंदन-नमस्कार करती है।

उन अनगारों को देखकर पुत्र-प्रेम के कारण उसके स्तनों से दूध झरने लगा। हर्ष के कारण उसकी आँखों में आँसू भर आये एवं अत्यन्त हर्ष के कारण शरीर फूलने से उसकी कंचुकी की कसें टूट गई और भुजाओं के आभूषण तथा हाथ की चूड़ियाँ तंग हो गईं। जिस प्रकार वर्षा की धारा के पड़ने से कदम्ब पुष्प एक साथ विकसित हो जाते हैं उसी प्रकार उसके शरीर के सभी रोम पुलकित हो गये। वह उन छहों मुनियों को पलक झपकाये बिना लगातार एक दृष्टि से देखती हुई चिरकाल तक निरखती ही रही।

तत्पश्चात् उसने छहों मुनियों को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके वह जहाँ भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आई और आकर अर्हत् अरिष्टनेमि को तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार करके उसी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होती है। रथारूढ़ होकर जहाँ द्वारिका नगरी है, वहाँ आती है और वहाँ आकर द्वारिका नगरी में प्रविष्ट होती है।

देवकी द्वारिका नगरी में प्रवेश कर जहाँ अपने प्रासाद के बाहर की उपस्थानशाला अर्थात् बैठक है वहाँ आती है। वहाँ आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरती है। नीचे उतर कर जहाँ अपना वासगृह है, जहाँ अपनी शय्या है, वहाँ आती है। वहाँ आकर अपनी शय्या पर बैठ जाती है।

सूत्र 10

मूल– **तए णं तीसे देवईए देवीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे, एवं खलु अहं सरिसए जाव नल–कुब्बर–समाणे सत्तपुत्ते पयाया, नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणए समणुभूए। एस वि य णं कण्हे वासुदेवे छण्हं मासाणं ममं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छइ। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जासिं मण्णे नियगकुच्छि–संभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुर–समुल्लावयाइं मम्मण पजंपियाइं, थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं, मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे निवेसयाइं, देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मंजुलप्पभणिए।**

अहं णं अधण्णा अपुण्णा एत्तो एगयरमवि न पत्ता (एवं) ओहयमण–संकप्पा जाव झियायइ।

संस्कृत छाया– ततः खलु तस्याः देवक्याः देव्याः अयमध्यवसायः चिंतितः प्रार्थितः मनोगतः संकल्पः समुत्पन्नः, एवं खलु अहं सदृशकान् यावत् नल कूवर समानान् सप्तपुत्रान् प्रजाता न चैव खलु मया एकस्य अपि बालत्वं समनुभूतम्। एषः अपि च खलु कृष्णः वासुदेवः षण्णां मासानाम् मम अन्तिके पादवन्दनाय शीघ्रमागच्छति। तत् धन्याः खलु ताः अम्बाः यासां मन्ये निजकुक्षि संभूताः स्तनदुग्धलुब्धकाः मधुरसमुल्लापकाः मन्मनप्रजल्पकाः स्तनमूलकक्षदेशभागम् अभिसरन्ति, मुग्धकान् पुनश्च कोमलकमलोपमैः हस्तैः गृहीत्वा उत्संगे निवेशयन्ति, ददति समुल्लापकान् सुमधुरान् पुनः पुनः मंजुल प्रभणितान्।

अहं खलु अधन्या, अपुण्या एषु (इतः) एकतरमपि न प्राप्ता एवं अपहतम–नस्संकल्पा यावत् ध्यायति।

अन्वयार्थ–तए णं तीसे देवईए देवीए = तदनन्तर उस देवकी देवी को, **अयं अज्झत्थिए चिंतिए** = इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्ता, **पत्थिए मणोगए संकप्पे** = और अभिलाषा युक्त मानसिक संकल्प, **समुप्पण्णे, एवं खलु** = उत्पन्न हुआ कि अहो ! निश्चय ही, **अहं सरिसए जाव** = इस प्रकार मैंने समान आकृति वाले, **नल–कुब्बर–समाणे सत्तपुत्ते पयाया** = नल, कूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया, **नो**

चेव णं मए एगस्स = परन्तु मैंने एक की भी, **वि बालत्तणए समणुभूए** = बालक्रीड़ा का अनुभव नहीं किया, **एस वि य णं कण्हे** = और यह कृष्ण, **वासुदेवे छण्हं मासाणं** = वासुदेव भी छः छः महीनों के, **ममं अंतियं पायवंदए** = बाद मेरे पास चरण वंदना, **हव्वमागच्छइ** = के लिए शीघ्रता से आता है। **तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ** = इसलिये वे माताएँ धन्य हैं, **जासिं मण्णे नियगकुच्छि-** = जिनकी अपनी कुक्षि से, **संभूयाइं थणदुद्धलुद्धयाइं** = उत्पन्न, स्तनपान के लोभी, **महुर-समुल्लावयाइं मम्मण** = बालक मधुर आलाप करने वाले मन्मन, **पजंपियाइं, थणमूलकक्खदेसभागं** = बोलते हुए, स्तन मूल कक्ष भाग में, **अभिसरमाणाइं, मुद्धयाइं** = अभिसरण करते हैं, (ऐसे उन) मुग्ध (भोले), **पुणो य कोमलकमलोवमेहिं** = बालकों को फिर कोमल कमल के समान, **हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगे णिवेसयाइं** = हाथों से पकड़कर गोद में बैठा लेती हैं, **देंति समुल्लावए** = और उन बालकों के आलापकों का, **सुमहुरे पुणो पुणो** = बार-बार सुमधुर, **मंजुलप्पभणिए** = और मंजुल उत्तर, **देंति** = देती हैं।

अहं णं अधण्णा अपुण्णा = मैं निश्चय ही अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, **एत्तो एगयरमवि न पत्ता** = इनमें से मैंने एक भी प्राप्त नहीं किया, **(एवं) ओहयमणसंकप्पा** = (इस प्रकार) खिन्नमन (देवकी), **जाव झियायइ** = यावत् आर्त्तध्यान करने लगी।

भावार्थ-उस समय उस देवकी देवी को इस प्रकार का विचार, चिन्तन और अभिलाषापूर्ण मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि अहो ! मैंने पूर्णतः समान आकृति वाले यावत् नलकूबर के समान सात पुत्रों को जन्म दिया पर मैंने एक की भी बाल्यक्रीड़ा का आनन्दानुभव नहीं किया। फिर यह कृष्ण वासुदेव भी छः-छः महीनों के पश्चात् मेरे पास चरण-वन्दन के लिये आता है और वह भी भागता-दौड़ता। तो ऐसी स्थिति में वस्तुतः वे माताएँ धन्य हैं जिनकी अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुए, स्तनपान के लोभी बालक, मधुर आलाप करते हुए, तुतलाती बोली से मन्मन बोलते हुए जिनके स्तनमूलकक्ष भाग में अभिसरण करते हैं, फिर उन मुग्ध बालकों को जो माताएँ कमल के समान अपने कोमल हाथों द्वारा पकड़ कर गोद में बिठाती हैं और अपने-अपने बालकों से मंजुल-मधुर-शब्दों में बार-बार बातें करती हैं।

मैं निश्चित रूपेण अधन्य और पुण्यहीन हूँ क्योंकि मैंने इनमें से किसी एक पुत्र की भी बाल क्रीड़ा नहीं देखी। इस प्रकार देवकी खिन्न मन से यावत् आर्त्तध्यान करने लगी। वह इस प्रकार का चिन्तन कर ही रही थी कि-

सूत्र 11

मूल- **तए णं से कण्हे वासुदेवे ण्हाए जाव विभूसिए देवईए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देवीं पासइ, पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता देवइं देविं एवं वयासी-अन्नया**

णं अम्मो ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठजाव, भवह, किं नो अम्मो ! अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह। तए णं सा देवई देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु अहं पुत्ता ! सरिसए जाव समाणे सत्तपुत्ते पयाया। नो चेव णं मए एगस्स वि बालत्तणे अणुभूए। तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं छण्हं–छण्हं मासाणं अंतियं पायवंदए हव्वमागच्छसि, तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाव झियामि।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णवासुदेवः स्नातः यावत् विभूषितः देवक्याः देव्याः पादवंदनार्थं शीघ्रमागच्छति। ततः खलु सः कृष्णवासुदेवः देवकीं देवीं पश्यति, दृष्ट्वा देवक्याः देव्याः पादग्रहणं करोति, (चरणवंदनं) कृत्वा देवकीं देवीं एवमवदत् अन्यदा खलु अम्ब ! त्वं मां दृष्ट्वा हृष्टा यावत् भवसि, किं खलु अम्ब ! अद्य त्वं अवहता यावत् ध्यायसि। ततः खलु सा देवकी देवी कृष्णं वासुदेवं एवम् अवदत्–एवं खलु अहं पुत्र ! सदृशकान् यावत् समानान् सप्त पुत्रान् प्रजाता। न चैव खलु मया एकस्य अपि बालत्वम् अनुभूतम्। हे पुत्र ! त्वमपि च खलु षण्णां षण्णां मासानां मम अन्तिके पादवन्दनार्थं शीघ्रमागच्छसि, तत् धन्याः खलु ताः अम्बाः यावत् ध्यायामि।

अन्वयार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे ण्हाए = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव स्नान, **जाव विभूसिए देवईए =** किये हुए यावत् विभूषित हुए महारानी देवकी, **देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ =** देवी के चरण वन्दनार्थ शीघ्रता से आये, **तए णं से कण्हे वासुदेवे =** तब उस कृष्ण वासुदेव ने, **देवइं देवीं पासइ =** देवकी देवी के दर्शन किये। **पासित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ =** चरण वन्दना की। **करित्ता देवइं देविं एवं वयासी– =** वन्दना करके देवकी देवी को ऐसे बोले–, **अन्नया णं अम्मो ! तुब्भे =** हे माताजी! पहले तो आप, **ममं पासित्ता हट्ठजाव =** मुझको देखकर प्रसन्न होती थीं, **भवह, किं नो अम्मो ! =** परन्तु हे माता !, **अज्ज तुब्भे ओहय जाव झियायह =** आज आप विश्रान्त की तरह यावत् विचार मग्न दिखती हो, **तए णं सा देवई देवी =** तदनन्तर वह देवकी देवी, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी =** कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोली–, **एवं खलु अहं पुत्ता ! =** इस प्रकार हे पुत्र ! मैंने, **सरिसए जाव समाणे =** एक सी (समान) आकृति वाले, **सत्तपुत्ते पयाया =** सात पुत्रों को जन्म दिया। **नो चेव णं मए एगस्स =** परन्तु मैंने एक के भी, **वि बालत्तणे अणुभूए =** बाल्यपन का अनुभव नहीं किया। **तुमं पि य णं पुत्ता ! ममं =** हे पुत्र ! तुम भी मेरे पास, **छण्हं–छण्हं मासाणं अंतियं =** छह–छह महीनों के बाद, **पायवंदए हव्वमागच्छसि =**

चरण वन्दन के लिये शीघ्रता से आते हो, **तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ =** इसलिये वे माताएँ धन्य हैं, **जाव झियामि =** यावत् आर्त्तध्यान करती हूँ।

भावार्थ–उसी समय वहाँ श्री कृष्ण वासुदेव स्नान कर यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर देवकी माता के चरण–वंदन के लिये शीघ्रतापूर्वक आये। तब वे कृष्ण वासुदेव देवकी माता के दर्शन करते हैं, दर्शन कर देवकी के चरणों में वन्दन करते हैं। उन्होंने अपनी माता को उदास और चिन्तित देखा तो चरण–वन्दन कर देवकी देवी को इस प्रकार पूछने लगे–''हे माता ! पहले तो मैं जब जब आपके चरण–वन्दन के लिये आता था, तब–तब आप मुझे देखते ही हृष्ट–तुष्ट यावत् आनन्दित हो जाती थीं, पर माँ ! आज आप उदास, चिन्तित यावत् आर्त्तध्यान में निमग्न सी क्यों दिख रही हो ? हे माता ! इसका क्या कारण है ? कृपा करके बतावें।'' कृष्ण द्वारा इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर वह देवकी देवी कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहने लगी–''हे पुत्र ! वस्तुत: बात यह है कि मैंने समान आकार यावत् समान रूप वाले सात पुत्रों को जन्म दिया। पर मैंने उनमें से किसी एक के भी बाल्यकाल अथवा बाल–लीला का अनुभव नहीं किया। पुत्र ! तुम भी छ: छ: महीनों के अन्तर से मेरे पास चरण–वंदन के लिये आते हो इसलिये मैं ऐसा सोच रही हूँ कि वे माताएँ धन्य हैं, पुण्य शालिनी हैं जो अपनी सन्तान को स्तनपान कराती हैं, यावत् उनके साथ मधुर आलाप–संलाप करती हैं, और उनकी बाल क्रीड़ा के आनन्द का अनुभव करती हैं। मैं अधन्य हूँ अकृत–पुण्य हूँ। यही सब सोचती हुई मैं उदासीन होकर इस प्रकार का आर्त्तध्यान कर रही हूँ।''

सूत्र 12

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे देवइं देविं एवं वयासी–मा णं तुब्भे अम्मो ! ओहय जाव झियायह। अहण्णं तहा वत्तिस्सामि जहा णं ममं सहोयरे कणीयसे भाउए भविस्सइ त्ति कट्टु देवइं देविं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव वग्गूहिं समासासेइ, समासासित्ता तओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्खमित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता जहा अभओ, नवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं पगिण्हइ, जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी–इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सहोयरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं।**

संस्कृत छाया– तत: खलु स: कृष्ण: वासुदेव: देवकीं देवीम् एवम् अवदत्–मा खलु त्वमम्ब ! अवहता यावत् ध्याय। अहम् खलु तथा वर्तिष्ये यथा खलु मम सहोदर: कनीयान् भ्राता भविष्यति, इति कृत्वा देवकीं देवीं ताभि: इष्टाभि: कान्ताभि: यावत् वाग्भि:

समाश्वासयति, समाश्वास्य ततः प्रतिनिष्क्राम्यति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पौषधशाला तत्रैव उपागच्छति उपागत्य यथा अभयः,[19] विशेषतः हरिणैगमेषिणः अष्टमभक्तं प्रगृह्णाति यावत् अंजलिं कृत्वा एवम् अवादीत्–इच्छामि खलु देवानुप्रिय ! सहोदरं कनीयांसं भ्रातरं वितीर्णम्।

अन्वयार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव, **देवइं देविं एवं वयासी– =** देवकी देवी को इस प्रकार बोले–, **मा णं तुब्भे अम्मो ! =** हे माता ! तुम इस प्रकार, **ओहय जाव झियायह =** उदास और चिंतित मत होवो। **अहण्णं तहा वत्तिस्सामि =** मैं ऐसा काम करूँगा, **जहा णं ममं सहोयरे =** जिससे मेरे सहोदर, **कणीयसे भाउए भविस्सइ =** छोटा भाई होगा, **त्ति कट्टु देवइं देविं =** ऐसा करके श्री कृष्ण ने देवकी देवी को, **ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं जाव =** उन इष्ट व कान्त यावत्, **वग्गूहिं समासासेइ =** वचनों से आश्वस्त किया, **समासासित्ता तओ पडिणिक्खमइ =** आश्वासन देकर वहाँ से बाहर निकले, **पडिणिक्खमित्ता जेणेव =** वहाँ से निकलकर जहाँ पर, **पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ =** पौषधशाला थी वहाँ आये। **उवागच्छित्ता जहा अभओ =** वहाँ आकर अभय कुमार की तरह, **नवरं हरिणेगमेसिस्स अट्ठमभत्तं =** विशेष रूप से हरिणैगमेषी का अष्टम भक्त व्रत (तीन उपवास), **पगिण्हइ =** ग्रहण किया, **जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी–=** यावत् दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा–, **इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! =** हे देवानुप्रिय ! मेरे, **सहोयरं कणीयसं भाउयं विदिण्णं =** छोटा सहोदर भाई हो, यह मैं चाहता हूँ।

भावार्थ–माता की यह बात सुनकर श्री कृष्ण वासुदेव देवकी महारानी से इस प्रकार बोले–''हे माताजी ! आप उदास अथवा चिन्तित होकर अब आर्त्तध्यान मत कीजिए। मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे मेरे एक सहोदर छोटा भाई उत्पन्न हो।'' इस प्रकार कह कर श्री कृष्ण ने देवकी माता को प्रिय, अभिलषित, मधुर एवं इष्ट यावत् कान्त वचनों से धैर्य बंधाया, आश्वस्त किया।

इस प्रकार अपनी माता को आश्वस्त कर श्री कृष्ण अपनी माता के महल से निकले। निकलकर जहाँ पौषधशाला थी वहाँ आये। पौषधशाला में आकर जिस प्रकार अभयकुमार ने अष्टम भक्त तप (तेला) स्वीकार करके अपने मित्र–देवता की आराधना की थी, उसी प्रकार श्री कृष्ण वासुदेव भी अभय कुमार की तरह अष्टम भक्त तप यानी तेला करके हरिणेगमैषी देवता की आराधना करने लगे। आराधना से आकृष्ट होकर हरिणेगमैषी देव श्री कृष्ण के सन्मुख उपस्थित हुआ और श्री कृष्णवासुदेव से बोला–''हे देवानुप्रिय ! आपने मुझे क्यों याद किया है ? मैं उपस्थित हूँ। कहिये आपका क्या मनोरथ है ? मैं आपका क्या शुभ कर सकता हूँ ?''

जहा अभओ–जिस प्रकार अभयकुमार ने अपनी छोटी माता धारिणी के दोहद की पूर्ति के लिए अपने पूर्व भव के सौधर्म कल्पवासी देव को पौषधयुक्त तेले के तप से स्मरण किया, उसी प्रकार श्रीकृष्ण ने पौषधशाला में जाकर विधियुक्त अष्टम तप द्वारा हरिणेगमेषी देव का ध्यान किया। तेले की पूर्ति पर उस देव का आसन चलायमान हुआ और अवधिज्ञान के उपयोग से उसने जाना कि श्रीकृष्ण मुझको याद कर रहे हैं, तब वह देव उत्तर वैक्रिय करके श्री कृष्ण के पास आया।

तब श्री कृष्ण वासुदेव ने दोनों हाथ जोड़कर उस देव से ऐसा कहा–''हे देवानुप्रिय! मेरे एक सहोदर लघुभ्राता का जन्म हो, यह मेरी इच्छा है।''

सूत्र 13

मूल– **तए णं से हरिणेगमेसी देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–होहिइ णं देवाणुप्पिया! तव देवलोयचुए सहोयरे कणीयसे भाउए से णं उम्मुक्कबालभावे जाव जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुण्डे जाव पव्वइस्सइ। कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ। वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः हरिणैगमेषी देवः कृष्णं वासुदेवम् एवम् अवदत्–भविष्यति खलु देवानुप्रिय! तव देवलोकच्युतः सहोदरः कनीयान् भ्राता सः खलु उन्मुक्तबालभावः यावत् यौवनमनुप्राप्तः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिकम् मुण्डो यावत् प्रव्रजिष्यति। कृष्णं वासुदेवं द्विवारं त्रिवारमपि एवं वदति। उदित्वा यस्याः एव दिशः प्रादुर्भूतस्तामेव दिशं प्रतिगतः।

अन्वयार्थ–तए णं से हरिणेगमेसी = तब वह हरिणैगमेषी, **देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी** = देव कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोला, **होहिइ णं देवाणुप्पिया!** = हे देवानुप्रिय! होगा, **तव देवलोयचुए** = देवलोग से च्युत हुआ तेरे, **सहोयरे कणीयसे भाउए से णं** = सहोदर छोटा भाई, वह, **उम्मुक्कबालभावे जाव** = बाल्यकाल बीतने पर यावत्, **जोव्वणगमणुप्पत्ते अरहओ** = युवावस्था प्राप्त करने पर, **अरिट्ठणेमिस्स अंतियं** = भगवान श्री नेमिनाथ के पास, **मुण्डे जाव पव्वइस्सइ** = मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण करेगा। **कण्हं वासुदेवं दोच्चंपि** = कृष्ण वासुदेव को दुबारा, **तच्चंपि एवं वयइ** = तिबारा भी इस प्रकार कहता है। **वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए** = कहकर जिस दिशा से वह प्रकट, **तामेव दिसं पडिगए** = हुआ था उसी दिशा को चला गया।

भावार्थ–तदनन्तर श्री कृष्ण वासुदेव द्वारा तेले की तपस्या द्वारा की गई अपनी आराधना से प्रसन्न होकर हरिणेगमैषी देव श्री कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला–''हे देवानुप्रिय! देवलोक का एक देव वहाँ की आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक से च्युत होकर आपके सहोदर छोटे भाई के रूप में जन्म लेगा और इस तरह आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। पर वह बाल्यकाल बीतने पर यावत् युवावस्था प्राप्त होने पर भगवान अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर श्रमण-दीक्षा ग्रहण करेगा।''

श्री कृष्ण वासुदेव को उस देव ने दूसरी बार, तीसरी बार भी यही कहा और यह कहने के पश्चात् जिस दिशा की ओर से आया था उसी दिशा की ओर लौट गया।

सूत्र 14

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ पडिणिक्ख-मित्ता जेणेव देवई देवी तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता देवईए देवीए पायग्गहणं करेइ, करित्ता एवं वयासी–होहिइ णं अम्मो! ममं सहोयरे कणीयसे भाउत्ति कट्टु देवइं देविं इट्ठाहिं जाव आसासेइ, आसासित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए। तए णं सा देवई देवी अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा, जाव हट्ठ तुट्ठ हियया, तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः पौषधशालातः प्रतिनिष्क्राम्यति प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव देवकी देवी तत्रैव उपागच्छति उपागत्य देवक्याः देव्याः पादग्रहणं करोति, कृत्वा एवम् अवदत्–भविष्यति खलु अम्ब ! मम सहोदरः कनीयान् भ्राता, इति कृत्वा देवकीं देवीं इष्टाभिः (वाग्भिः) यावत् आश्वासयति, आश्वास्य यस्याः दिशः प्रादुर्भूतः तामेव दिशं प्रतिगतः। ततः खलु सा देवकी देवी अन्यदा कदाचित् तस्मिन् तादृशके यावत् सिंहं स्वप्ने दृष्ट्वा प्रतिबुद्धा, यावत् हृष्ट-तुष्ट-हृदया, तं गर्भं सुखं सुखेन परिवहति।

अन्वयार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे = इसके बाद श्री कृष्ण वासुदेव, **पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ** = पौषधशाला से निकले, **पडिणिक्खमित्ता जेणेव** = निकलकर जहाँ पर, **देवई देवी तेणेव उवागच्छइ** = देवकी देवी थी वहाँ आये, **उवागच्छित्ता देवईए देवीए** = आकर देवकी देवी की, **पायग्गहणं करेइ** = चरण-वन्दना की। **करित्ता एवं वयासी** = वन्दना करके इस प्रकार कहा, **होहिइ णं अम्मो ! ममं सहोयरे कणीयसे भाउत्ति** = हे माता! मेरे सहोदर छोटा भाई अवश्य होगा इस प्रकार, **कट्टु**

देवइं देविं इट्ठाहिं = देवकी देवी को इष्ट वचनों से, **जाव आसासेइ =** यावत् आश्वस्त करता है, **आसासित्ता जामेव दिसं =** आश्वस्त करके जिस दिशा से, **पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए =** प्रकट हुए थे उसी दिशा में, वापस चले गये। **तए णं सा देवई देवी =** तदनन्तर वह देवकी देवी, **अण्णया कयाइं तंसि तारिसगंसि जाव =** अन्यदा किसी दिन योग्य सुख शय्या में सोती हुई, **सीहं सुमिणे पासित्ता पडिबुद्धा =** सिंह को स्वप्न में देखकर जाग गई, **जाव हट्ठ तुट्ठ हियया =** यावत् हृष्टतुष्ट हृदय होकर, **तं गब्भं सुहं सुहेणं परिवहइ =** सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करने लगी।

भावार्थ–इसके पश्चात् श्री कृष्ण–वासुदेव पौषध–शाला से निकले, वहाँ से निकलकर देवकी माता के पास आये और आकर अपनी माता का चरण–वंदन किया।

चरण–वन्दन करके वे माता से इस प्रकार बोले–''माताजी! मेरे एक सहोदर छोटा भाई होगा। अब आप चिन्ता न करें। आपकी इच्छा पूरी होगी।''

ऐसा कह करके उन्होंने देवकी माता को मधुर एवं इष्ट वचनों से आश्वस्त किया और आश्वस्त करके जिधर से आये उधर ही लौट गये।

कालान्तर में उस देवकी माता ने, जब वह योग्य सुख–सेज पर सोई हुई थी, तब एक दिन सिंह का स्वप्न देखा।

स्वप्न देखकर वह जागृत हुई। पति से स्वप्न का वृत्तान्त कहा। अपने मनोरथ की पूर्णता को निश्चित समझकर यावत् हर्षित एवं हृष्ट तुष्ट हृदय होती हुई वह सुखपूर्वक अपने उस गर्भ का पालन–पोषण करने लगी।

सूत्र 15

मूल– **तए णं सा देवई देवी नवण्हं मासाणं जासुमणा–रत्तबंधु–जीवय–लक्खरस–सरसपारिजातकतरुणदिवायर–समप्पभं, सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं गयतालुयसमाणं दारयं पयाया। जम्मं णं जहा मेहकुमारे। जाव जम्हाणं अम्हं इमे दारए गयतालुसमाणे तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स नामधेज्जे गयसुकुमाले, तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामं करेइ गयसुकुमाले त्ति, सेसं जहा मेहे जाव अलं भोगसमत्थे जाए यावि होत्था। तत्थणं बारवईए नयरीए–सोमिले नामं माहणे परिवसइ, अड्ढे रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स सोमिलस्स माहणस्स सोमसिरी नामं माहणी होत्था।**

सुकुमाला। तस्स णं सोमिलस्स माहणस्स धूया सोमसिरीए अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था, सुकुमाला जाव सुरूवा। रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा, उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था।

संस्कृत छाया– ततः खलु सा देवकी देवी नवानां मासानां जपाकुसुम-रक्तबंधु-जीव-लाक्षारस-सरसपारिजातकतरुणदिवाकर समप्रभं, सर्वनयनकान्तं सुकुमारं यावत् सुरूपं गजतालुसमानं दारकं प्रजनितवती। जन्म यथा मेघकुमारः। यावत् यस्मात् (कारणात् जातः) अस्माकम् अयम् दारकः गजतालुसमानः तद्भवतु खलु आवयोः एतस्य दारकस्य नामधेयम् गजसुकुमालः ततः खलु तस्य दारकस्य अम्बापितरौ नाम अकुरुताम् गजसुकुमालः इति, शेषं यथा मेघकुमारः यावत् भोगसमर्थश्चापि अभवत्। तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां सोमिलो नाम ब्राह्मणः परिवसति, आढ्यः (समृद्धः) ऋग्वेदं यावत् सुपरिनिष्ठितः, चाप्यभवत्। तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य सोमश्रीर्नाम्नी ब्राह्मणी अभवत्। सुकोमला। तस्य खलु सोमिलस्य ब्राह्मणस्य दुहिता सोमश्रियः ब्राह्मण्याः आत्मजा सोमा नाम्नी दारिका अभवत्, सुकुमारा यावत् सुरूपा। रूपेण यावत् लावण्येन उत्कृष्टा, उत्कृष्टशरीरा चापि अभवत्।

अन्वयार्थ–तए णं सा देवई देवी = तदनन्तर उस देवकी देवी ने, **नवण्हं मासाणं जासुमणा** = नवमास के बाद जपा कुसुम, **रत्तबंधु-जीवय-लक्खरस** = रक्तबंधु जीवक लाक्षारस, **सरसपारिजातक-तरुणदिवायर** = सरसपारिजात तथा तरुण सूर्य, **समप्पभं, सव्वनयणकंतं सुकुमालं जाव सुरूवं** = के समान कान्ति वाले, सभी के नयनों को अच्छा लगने वाले, **सुकुमाल** = यावत् सुरूप, **गयतालुयसमाणं दारयं पयाया** = गजतालु के समान सुकोमल पुत्र को जन्म दिया, **जम्मं णं जहा मेहकुमारे** = उसका जन्म मेघकुमार की तरह समझें। **जाव जम्हाणं अम्हं इमे दारए** = माता-पिता ने सोचा कि यह हमारा, **गयतालुसमाणे तं होउ णं** = जन्मित बालक गजतालु के समान सुकोमल है। **अम्हं एयस्स दारयस्स** = इस कारण हमारे इस पुत्र का, **नामधेज्जे गयसुकुमाले** = नाम गजसुकुमाल होवे। **तए णं तस्स दारगस्स** = इसके बाद उस बालक के, **अम्मापियरो नामं करेइ** = माता-पिता ने उसका नामकरण, **गयसुकुमाले त्ति,** = गजसुकुमाल किया, **सेसं जहा मेहे जाव** = शेष मेघकुमार के समान समझना, **जाए यावि होत्था अलं भोगसमत्थे** = तदनुसार गजसुकुमाल भी भोग भोगने में समर्थ हो गया। **तत्थणं बारवईए नयरीए** = उस द्वारावती नगरी में, **सोमिले नामं माहणे परिवसइ** = सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था, **अड्ढे** = जो कि धनाढ्य था तथा, **रिउव्वेय जाव सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था** = ऋग्वेद आदि शास्त्रों में पूर्ण निष्णात था।

तस्स सोमिलस्स माहणस्स = उस सोमिल ब्राह्मण के, **सोमसिरी नामं माहणी होत्था** = सोमश्री नाम वाली ब्राह्मणी थी।, **सुकुमाला** = वह बहुत कोमलांगी थी। **तस्स णं सोमिलस्स** = उस सोमिल नामक, **माहणस्स धूया सोमसिरीए** = ब्राह्मण की पुत्री तथा सोमश्री, **अत्तया सोमा नामं दारिया होत्था** = ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नाम की लड़की (कन्या) थी, **सुकुमाला जाव सुरूवा** = वह सुकुमारी एवं सुरूपा थी। **रूवेणं जाव लावण्णेणं उक्किट्ठा** = रूप और लावण्य-कांति से, उत्कृष्ट थी और, **उक्किट्ठसरीरा यावि होत्था** = उत्कृष्ट शरीर वाली थी।

भावार्थ–तत्पश्चात् उस देवकी देवी ने नवमास का गर्भकाल पूर्ण होने पर जवा-कुसुम, बन्धुक-पुष्प, जीवक लाक्षारस, श्रेष्ठ पारिजात एवं उदीयमान सूर्य के समान कान्ति वाले, सर्वजन-नयनाभिराम, सुकुमाल यावत् गजतालु के समान रूपवान् पुत्र को जन्म दिया। जन्म का वर्णन मेघकुमार के समान समझना चाहिए।

यावत् नामकरण के समय माता-पिता ने सोचा-''क्योंकि हमारा यह बालक गजतालु के समान सुकोमल एवं सुन्दर है, इसलिये हमारे इस बालक का नाम गजसुकुमाल हो।'' इस प्रकार विचार कर उस बालक के माता-पिता ने उसका 'गजसुकुमाल'-यह नाम रखा। शेष वर्णन मेघकुमार के समान समझना। क्रमश: गजसुकुमाल भोग समर्थ हो गया।

उस द्वारिका नगरी में सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समृद्ध और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद-इन चारों वेदों का सांगोपांग पूर्ण ज्ञाता भी था। उस सोमिल ब्राह्मण के सोमश्री नाम की ब्राह्मणी (पत्नी) थी। सोमश्री सुकुमार एवं रूपलावण्य सम्पन्न थी।

उस सोमिल ब्राह्मण की पुत्री और सोमश्री ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा नाम की कन्या थी जो सुकुमाल यावत् बड़ी रूपवती थी। उसका रूप, लावण्य एवं देहयष्टि का गठन भी उत्कृष्ट था।

सूत्र 16

मूल- **तए णं सा सोमा दारिया अण्णया कयाइं ण्हाया जाव विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रायमग्गंसि कणग-तिंदूसएणं कीलमाणी, कीलमाणी चिट्ठइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे, परिसा णिग्गया। तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे, ण्हाए जाव विभूसिए गयसुकुमालेणं कुमारेणं सद्धिं हत्थिखंधवरगए सकोरंट-**

मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुवमाणीहिं उद्धुवमाणीहिं बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स पायवंदए निगच्छमाणे सोमं दारियं पासइ, पासित्ता सोमाए दारियाए रूवेण य जोव्वणेण य जाव विम्हिए।

संस्कृत छाया– ततः खलु सा सोमा दारिका अन्यदा कदाचित् स्नाता यावत् विभूषिता बहुभिः कुब्जाभिः यावत् परिक्षिप्ता, स्वकात् गृहात् परिनिष्क्रामति, परिनिष्क्रम्य यत्रैव राजमार्गः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य राजमार्गे कनक-कन्दुकेन क्रीडमाना, क्रीडमाना तिष्ठति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये अर्हन् अरिष्टनेमिः समवसृतः, परिषद् निर्गता। ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् स्नातः यावत् विभूषितः गजसुकुमालेन कुमारेन सार्द्धं हस्तिस्कन्धवरगतः सकोरण्टमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेतवरचामरैः उद्धूयमानैः उद्धूयमानैः द्वारावत्याः नगर्याः मध्यंमध्येन अर्हतः अरिष्टनेमेः पादवंदनार्थं निर्गच्छन् सोमां दारिकां पश्यति, दृष्ट्वा सोमायाः दारिकायाः रूपेण च यौवनेन च जातः विस्मितः।

अन्वयार्थ–तए णं सा सोमा दारिया = तदनन्तर वह सोमा कन्या, **अण्णया कयाइं ण्हाया** = किसी दिन स्नान की हुई, **जाव विभूसिया बहूहिं** = यावत् अलंकारादि से विभूषित, **खुज्जाहिं जाव परिक्खित्ता** = अनेक कुब्जादि दासियों से घिरी हुई, **सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ** = अपने घर से बाहर निकली, **पडिणिक्खमित्ता** = निकलकर, **जेणेव रायमग्गे तेणेव** = जहाँ पर राजमार्ग था वहाँ पर, **उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = आती है, वहाँ आकर, **रायमग्गंसि कणग-तिंदूसएणं** = राजमार्ग में सोने की गेंद से, **कीलमाणी, कीलमाणी चिट्ठइ** = खेलती हुई, खेलती हुई ठहरी। (या खेलती रही), **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे** = भगवान अरिष्टनेमि द्वारिका में पधारे। **परिसा णिग्गया** = परिषद् धर्म सुनने के लिए आई और चली गई।

तए णं से कण्हे वासुदेवे = तब उस कृष्ण वासुदेव ने, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे** = भगवान के आने की यह, कथा वार्ता श्रवण की। **ण्हाए जाव विभूसिए** = स्नान कर वस्त्रालंकारादिक से विभूषित होकर, **गयसुकुमालेणं कुमारेणं** = गजसुकुमाल कुमार के, **सद्धिं हत्थिखंधवरगए** = साथ हाथी के हौदे पर आरूढ़ होकर, **सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं** = कोरंट की मालायुक्त छत्र को, **धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं** = धारण किये श्वेतवर चामरों से, **उद्धुवमाणीहिं उद्धुवमाणीहिं** = बीजे जाते हुए, बीजे जाते हुए, **बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं** = द्वारावती नगरी के मध्य-मध्य से होकर, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = भगवान श्री नेमिनाथ के, **पायवंदए निगच्छमाणे** = चरणवंदन को जाते हुए, **सोमं दारियं पासइ** =

सोमा नामक कन्या को देखा, **पासित्ता सोमाए दारियाए =** देखकर सोमा लड़की के, **रूवेण य जोव्वणेण य =** रूप से और यौवन से, **जाव विम्हिए =** विस्मित हुए (प्रभावित हुए)।

भावार्थ–तब वह सोमा कन्या अन्यदा किसी दिन स्नान कर यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित हो, बहुत सी कुब्जा आदि दासियों के परिवार से घिरी हुई अपने घर से बाहर आई। घर से बाहर निकल कर जहाँ राजमार्ग है, वहाँ आई और राजमार्ग में सुवर्ण की गेंद से खेल खेलती–खेलती खेल में निमग्न हो गई।

उस काल उस समय अरिहन्त अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी पधारे। परिषद् धर्म–कथा सुनने को आई। उस समय वह कृष्ण वासुदेव भी भगवान के शुभागमन के समाचार से अवगत हो, स्नान कर यावत् वस्त्रालंकारों से विभूषित होकर गजसुकुमाल कुमार के साथ हाथी के हौदे पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की माला और छत्र धारण किये हुए, श्वेत एवं श्रेष्ठ चामरों से दोनों ओर से निरन्तर हवा किए जाते हुए, द्वारिका नगरी के मध्य भागों से होकर अर्हत् अरिष्टनेमि के चरण–वन्दन के लिये जाते हुए, राजमार्ग में खेलती हुई उस सोमा कन्या को देखते हैं। सोमा कन्या के रूप, लावण्य और कान्ति–युक्त यौवन को देखकर कृष्ण वासुदेव अत्यन्त आश्चर्यचकित हुए।

सूत्र 17

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोमिलं माहणं जाइत्ता सोमं दारियं गिण्हह, गिण्हित्ता कण्णंतेउरंसि पक्खिवह।**

तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स भारिया भविस्सइ। तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पक्खिवंति।

तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति। कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जाव पज्जुवासइ। तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स गय–सुकुमालस्स कुमारस्स तीसे य० धम्म कहा। कण्हे पडिगए।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः कौटुम्बिक–पुरुषान् शब्दापयति, शब्दापयित्वा एवं अवदत्–गच्छत खलु यूयं देवानुप्रियाः ! सोमिलं ब्राह्मणं याचित्वा सोमां दारिकां गृह्णीत, गृहीत्वा कन्यान्तःपुरे प्रक्षिपत। ततः खलु एषा गजसुकुमालस्य

कुमारस्य भार्या भविष्यति । ततः ते कौटुम्बिक-पुरुषाः यावत् प्रक्षिपन्ति । ततः खलु ते कौटुम्बिक पुरुषाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति । कृष्णः वासुदेवः द्वारावत्याः नगर्याः मध्यंमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव सहस्राम्रवनं उद्यानं यावत् पर्युपासते । ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णाय वासुदेवाय गज-सुकुमालाय कुमाराय तस्यै च धर्मकथां (उपादिशत्) कृष्णः प्रतिगतः ।

अन्वयार्थ-तए णं से कण्हे वासुदेवे = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव, **कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ =** राजसेवकों को बुलाते हैं, **सद्दावित्ता एवं वयासी- =** बुलाकर इस प्रकार कहते हैं, **गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! =** हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और, **सोमिलं माहणं जाइत्ता सोमं दारियं =** सोमिल से सोमा कन्या की याचना कर, **गिण्हह, गिण्हित्ता =** उसे प्राप्त करो, प्राप्त कर उसे, **कण्णंतेउरंसि पक्खिवह =** कन्याओं के अन्तःपुर में पहुँचा दो ।

तए णं एसा गयसुकुमालस्स कुमारस्स = इसके बाद यह सोमा गजसुकुमाल कुमार की, **भारिया भविस्सइ =** भार्या बनेगी । **तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा =** तदनन्तर उन राजसेवकों ने, **जाव पक्खिवंति =** सोमा को अंतःपुर में पहुँचा दिया ।

तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा = तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने, **जाव पच्चप्पिणंति =** श्री कृष्ण को वापस सूचना दी । **कण्हे वासुदेवे बारवईए =** कृष्णवासुदेव द्वारावती, **नयरीए मज्झंमज्झेणं =** नगरी के मध्य-मध्य से, **णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता =** निकलते हैं, निकलकर, **जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे =** जहाँ पर सहस्राम्रवन बगीचा है वहाँ, **जाव पज्जुवासइ =** पर जाकर प्रभु की सेवा करने लगे ।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी = तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि ने, **कण्हस्स वासुदेवस्स =** कृष्ण वासुदेव को, **गयसुकुमालस्स कुमारस्स =** व गजसुकुमाल कुमार को, **तीसे य० धम्म कहा =** तथा उस सभा को धर्म का उपदेश दिया । **कण्हे पडिगए =** श्री कृष्ण वापस लौट गये ।

भावार्थ-तब वह कृष्ण-वासुदेव आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाते हैं, बुलाकर इस प्रकार कहते हैं-"हे देवानुप्रियों ! तुम सोमिल ब्राह्मण के पास जाओ और उससे इस सोमा कन्या की याचना करो, उसे प्राप्त करो और फिर उसे लेकर कन्याओं के राजकीय अन्तःपुर में पहुँचा दो । समय पाकर यह सोमा कन्या, मेरे छोटे भाई गजसुकुमाल की भार्या होगी ।"

तदनन्तर कृष्ण की आज्ञा को शिरोधार्य कर वे राजसेवक सोमिल ब्राह्मण के पास गये और उससे उसकी कन्या की याचना की । इससे सोमिल ब्राह्मण अत्यन्त प्रसन्न हुआ और अपनी कन्या को ले जाने की स्वीकृति दे दी । उन कौटुम्बिक पुरुषों ने सोमा को उसके पिता सोमिल से प्राप्त कर यावत् अन्तःपुर में पहुँचा दिया और उन्होंने श्री कृष्ण को निवेदन किया कि उनकी आज्ञा का यावत् पूर्णतः पालन हो गया है ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य भाग से होते हुए निकले और निकलर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, वहाँ पहुँच कर यावत् प्रभु को वन्दन-नमस्कार करके उनकी सेवा करने लगे। उस समय भगवान अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव और गजसुकुमाल कुमार प्रमुख उस सभा को धर्मोपदेश दिया। प्रभु की अमोघ वाणी सुनने के पश्चात् कृष्ण अपने आवास को लौट गये।

सूत्र 18

मूल– **तए णं से गयसुकुमाले कुमारे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं धम्मं सोच्चा, जं नवरं अम्मापियरं आपुच्छामि, जहा मेहे, जं नवरं महिलियावज्जं जाव वड्ढियकुले।**

तए णं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव गयसुकुमाले कुमारे तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं आलिंगइ, आलिंगित्ता उच्छंगे निवेसेइ, निवेसित्ता एवं वयासी–

तुमं ममं सहोयरे कणीयसे भाया, तं मा णं देवाणुप्पिया! इयाणिं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडे जाव पव्वयाहि।

अहण्णं बारवईए नयरीए महया महया रायाभिसेएणं अभिसिं-चिस्सामि। तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः गजसुकुमालः कुमारः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, यो विशेषः अम्बापितरौ आपृच्छामि, यथा मेघकुमारः यो, विशेषः महिलिकावर्जः यावत् वर्धितकुलः।

ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् यत्रैव गजसुकुमालः कुमारः तत्रैव उपागच्छति,

उपागत्य गजसुकुमालं कुमारम् आलिंगति, आलिंग्य उत्संगे निवेशयति, निवेश्य एवमवदत्–

त्वं मम सहोदरः कनीयान् भ्राता, तत् मा खलु देवानुप्रिय! इदानीं अर्हतः अरिष्टनेमेः अंतिके मुंडो यावत् प्रव्रज।

अहं खलु द्वारावत्या: नगर्या: महता महता राज्याभिषेकेण अभिसेक्ष्यामि। तत: खलु स: गजसुकुमाल: कुमार: कृष्णेन वासुदेवेन एवमुक्त: सन् तूष्णीक: संतिष्ठते।

अन्वयार्थ–तए णं से गयसुकुमाले कुमारे = तदनन्तर वह गजसुकुमाल कुमार, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = भगवान श्री अरिष्टनेमि, **अंतियं धम्मं सोच्चा** = के पास धर्म कथा सुनकर, **जं नवरं** = विरक्त होकर बोले भगवन्!, **अम्मापियरं आपुच्छामि** = माता-पिता को पूछकर मैं आपके पास व्रत ग्रहण करूँगा, **जहा मेहे** = मेघकुमार की तरह, **जं नवरं महिलियावज्जं जाव** = विशेष रूप से महिलाओं को छोड़कर यावत्, **वड्ढियकुले** = माता-पिता ने उन्हें वंशवृद्धि के बाद दीक्षा ग्रहण करने को कहा।

तए णं से कण्हे वासुदेवे = तब श्री कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमाल की, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे** = वैराग्यरूप यह कथा सुनी तो, **जेणेव गयसुकुमाले कुमारे** = जहाँ गजसुकुमाल कुमार था, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ आये, **उवागच्छित्ता गयसुकुमालं कुमारं** = पास आकर गजसुकुमाल कुमार का, **आलिंगइ** = स्नेह से आलिंगन किया, **आलिंगित्ता** = आलिंगन कर उसे अपनी, **उच्छंगे निवेसेइ** = गोद में बैठा लेते हैं, **निवेसित्ता एवं वयासी–** = गोदी में बैठाकर इस प्रकार कहा–, **तुमं ममं सहोयरे कणीयसे भाया** = तू मेरा सहोदर छोटा, भाई है, **तं मा णं देवाणुप्पिया !** = इस कारण हे देवानुप्रिय!, **इयाणिं अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = इस समय भगवान नेमिनाथ के, **अंतियं मुंडे जाव पव्वयाहि** = पास मुण्डित होकर यावत् दीक्षा, ग्रहण मतकर।

अहण्णं बारवईए नयरीए = मैं तुमको द्वारावती नगरी, **महया महया रायाभिसेएणं** = में बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक से, **अभिसिंचिस्सामि** = अभिषिक्त करूँगा।'' **तए णं से गयसुकुमाले कुमारे** = तदनन्तर वह गजसुकुमाल कुमार, **कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे** = कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार कहने पर, **तुसिणीए संचिट्ठइ** = मौन रहा।

भावार्थ–प्रभु का धर्मोपदेश सुनकर श्री कृष्ण तो लौट गये, किन्तु वह गजसुकुमाल कुमार भगवान नेमिनाथ के पास धर्म-कथा सुनकर संसार से विरक्त हो प्रभु नेमिनाथ से इस प्रकार बोले–''हे भगवन्! माता-पिता को पूछकर मैं आपके पास श्रमणधर्म ग्रहण करूँगा।''

इस प्रकार मेघकुमार के समान भगवान को निवेदन करके गजसुकुमाल अपने घर आये और माता-पिता ने दीक्षा लेने के उनके विचार सुनकर गजसुकुमाल से कहा कि हे पुत्र! तुम हमें बहुत प्रिय हो। हम तुम्हारा वियोग सहन नहीं कर सकेंगे। अभी तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ है इसलिए तुम पहले विवाह करो। विवाह करके कुल की वृद्धि करके सन्तान को अपना दायित्व सौंप कर फिर दीक्षा ग्रहण करना।

तदनन्तर कृष्ण-वासुदेव गजसुकुमाल के विरक्त होने की बात सुनकर गजसुकुमाल के पास आये और आकर उन्होंने गजसुकुमाल कुमार का स्नेह से आलिंगन किया, आलिंगन कर गोद में बिठाया, गोद में

बिठाकर इस प्रकार बोले–"हे देवानुप्रिय ! तुम मेरे सहोदर छोटे भाई हो, इसलिये मेरा तुमसे कहना है कि इस समय भगवान अरिष्टनेमि के पास मुंडित होकर यावत् दीक्षा ग्रहण मत करो।

मैं तुमको द्वारिका नगरी में बहुत बड़े समारोह के साथ राज्याभिषेक से अभिषिक्त करूँगा।" तब गजसुकुमाल कुमार कृष्ण वासुदेव द्वारा ऐसे कहे जाने पर मौन रहे।

सूत्र 19

मूल– **तए णं से गयसुकुमाले कुमारे कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो य दोच्चंपि तच्चं पि एवं वयासी–**

एवं खलु देवाणुप्पिया ! माणुस्सया कामा असुइ, असासया, वंतासवा जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य जाहे नो संचाएइ बहुयाहिं अणुलोमाहिं जाव आघवित्तए। ताहे अकामा चेव एवं वयासी–तं इच्छामो णं ते जाया ! एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए। णिक्खमणं, जहा महब्बलस्स जाव तमाणाए तहा जाव संजमित्तए। तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जाए इरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः गजसुकुमालः कुमारः कृष्णं वासुदेवं अम्बापितरौ च द्वितीयमपि तृतीयमपि एवमवादीत्–

एवं खलु देवानुप्रियाः ! मानुष्यकाः कामाः अशुचयः, अशाश्वताः वान्तास्रवाः यावत् विप्रहातव्याः भविष्यन्ति।

तत् इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके यावत् प्रव्रजितुम्।

ततः खलु तं गजसुकुमालं कुमारं कृष्णः वासुदेवः अम्बापितरौ च यदा न शक्नुवन्ति बहुकाभिः अनुलोमाभिः यावत् आख्यापयितुम्। तदा अकामा एव एवमवदन्–

तत् इच्छाम: ते हे जात ! एकदिवसमपि राज्यश्रियम् द्रष्टुम् । तत: स: गजसुकुमाल: अनगार: जात: ईर्यासमित: यावत् गुप्तब्रह्मचारी । निष्क्रमणम्, यथा महाबलस्य यावत् तदाज्ञायां यावत् संयतिव्य: ।

अन्वयार्थ–तए णं से गयसुकुमाले कुमारे = कुछ समय के बाद वह गजसुकुमाल कुमार, **कण्हं वासुदेवं अम्मापियरो** = कृष्ण वासुदेव और माता-पिता को, **य दोच्चंपि तच्चं पि** = दूसरी-तीसरी बार भी, **एवं वयासी–** = इस प्रकार बोले-, **एवं खलु देवाणुप्पिया !** = ''इस प्रकार हे देवानुप्रिय !, **माणुस्सया कामा असुइ** = मनुष्य के कामभोग अपवित्र हैं, **असासया, वंतासवा** = अस्थायी हैं, मलमूत्र वमन के स्रोत हैं, **जाव विप्पजहियव्वा भविस्संति** = ये एक दिन अवश्य छोड़ने होंगे ।''

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! = इसलिए हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे** = कि आपकी आज्ञा पाकर, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए** = भगवान अरिष्टनेमि के पास, **जाव पव्वइत्तए** = प्रव्रज्या (दीक्षा) ग्रहण कर लूँ ।

तए णं तं गयसुकुमालं कुमारं = तब उस गजसुकुमाल कुमार को, **कण्हे वासुदेवे अम्मापियरो य** = कृष्ण वासुदेव और माता-पिता, **जाहे नो संचाएइ बहुयाहिं अणुलोमाहिं** = जब बहुत-सी अनुकूल एवं स्नेहभरी, **जाव आघवित्तए** = युक्तियों से समझाने में समर्थ नहीं हुए ।

ताहे अकामा चेव एवं वयासी– = तब न चाहते हुए भी इस प्रकार बोले-, **तं इच्छामो णं ते जाया !** = ''यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र !, **एगदिवसमवि रज्जसिरिं पासित्तए** = हम चाहते हैं तुम्हारी एक दिन की राज्य लक्ष्मी को देखना'' (गजसुकुमाल ने उनकी आज्ञा स्वीकार कर दीक्षा ग्रहण की), **णिक्खमणं जहा महब्बलस्स जाव** = दीक्षा सम्बन्धी निष्क्रमण महाबल, **तमाणाए तहा जाव संजमित्तए** = समान यावत् आज्ञानुसार संयम पालन में उद्यत हुए । **तए णं से गयसुकुमाले अणगारे** = तब वह गजसुकुमाल कुमार, **जाए इरियासमिए** = अनगार हो गये और ईयासमिति वाले, **जाव गुत्तबंभयारी** = यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन गये ।

भावार्थ–कुछ समय मौन रहने के बाद गजसुकुमाल अपने बड़े भाई कृष्ण वासुदेव एवं माता-पिता को दूसरी बार और तीसरी बार भी इस प्रकार बोले-''हे देवानुप्रियों ! वस्तुत: मनुष्य के कामभोग एवं देह अपवित्र, अशाश्वत क्षणविध्वंसी और मल-मूत्र-कफ-वमन-पित्त-शुक्र एवं शोणित के भण्डार हैं । यह मनुष्य शरीर और ये उसके कामभोग अस्थिर हैं, अनित्य हैं एवं सड़न-गलन एवं विध्वंसी होने के कारण आगे-पीछे कभी न कभी अवश्य नष्ट होने वाले हैं । एक दिन देर-सबेर ये छूटने वाले हैं ।''

''इसलिए हे देवानुप्रियों ! मैं चाहता हूँ कि आपकी आज्ञा मिलने पर भगवान अरिष्टनेमि के पास प्रव्रज्या (श्रमण-दीक्षा) ग्रहण कर लूँ ।''

तदनन्तर उस गजसुकुमाल कुमार को कृष्ण-वासुदेव और माता-पिता जब बहुत-सी अनुकूल और स्नेह भरी युक्तियों से भी समझाने में समर्थ नहीं हुए तब निराश होकर श्रीकृष्ण एवं माता-पिता इस प्रकार बोले-''यदि ऐसा ही है तो हे पुत्र ! हम एक दिन की तुम्हारी राज्यश्री (राजवैभव की शोभा) देखना चाहते हैं। इसलिये तुम कम से कम एक दिन के लिये तो राजलक्ष्मी को स्वीकार करो।''

माता-पिता एवं बड़े भाई के इस प्रकार अनुरोध करने पर गजसुकुमाल चुप रहे। इसके बाद बड़े समारोह के साथ उनका राज्याभिषेक किया गया। गजसुकुमाल के राजगद्दी पर बैठने पर माता-पिता ने उनसे पूछा-''हे पुत्र ! अब तुम क्या चाहते हो ! बोलो।'' गजसुकुमाल ने तब उत्तर दिया-''मैं दीक्षित होना चाहता हूँ।'' तब गजसुकुमाल की इच्छानुसार दीक्षा की सभी सामग्री मंगाई गई। 'दीक्षा सम्बन्धी निष्क्रमण' 'एवं आज्ञानुसार संयम पालन में उद्यत हुए।' यहाँ तक का वर्णन महाबल के समान समझना।

सूत्र 20

मूल- **तए णं से गयसुकुमाले अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए तस्सेव दिवसस्स पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता एवं वयासी-'इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे महाकालंसि सुसाणंसि एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।'**

'अहासुहं देवाणुप्पिया!' तए णं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा अब्भणुण्णाए समाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियाओ सहसंबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव महाकाले सुसाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता उच्चारपासवण-भूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता ईसिं पब्भारगएणं काएणं जाव दो वि पाए साहट्टु एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

संस्कृत छाया- ततः सः गजसुकुमालः अनगारः यस्मिन् एव दिवसे प्रव्रजितः तस्यैव दिवसस्य पूर्वापराह्णकालसमये यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, अर्हन्तमरिष्टनेमिं त्रिःकृत्य आदक्षिण-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा एवमवदत्-इच्छामि

खलु भदन्त ! युष्माभिरभ्यनुज्ञातः सन् महाकालनामके श्मशाने एकरात्रिकीं महाप्रतिमाम् उपसंपद्य खलु विहर्तुम्।

यथासुखं देवानुप्रिया ! ततः खलु सः गजसुकुमालः अनगारः अर्हता अरिष्टनेमिना अभ्यनुज्ञातः सन् अर्हन्तम् अरिष्टनेमिनं वंदति नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा अर्हतः अरिष्टनेमिनः अन्तिकात् सहस्राम्रवनात् उद्यानात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव महाकालं श्मशानं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य स्थंडिलं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य उच्चारप्रस्रवण-भूमिं प्रतिलेखयति, प्रतिलेख्य ईषत् प्राग्भारगतेन कायेन यावत् द्वौ अपि पादौ संहृत्य एकरात्रिकीं महाप्रतिमाम् उपसंपद्य विहरति।

अन्वयार्थ-तए णं से गयसुकुमाले = तदनन्तर वह गजसुकुमाल, **अणगारे जं चेव दिवसं पव्वइए** = मुनि जिस दिन दीक्षा ग्रहण की, **तस्सेव दिवसस्स** = उसी दिन, **पुव्वावरण्हकालसमयंसि** = दिन के पिछले भाग में, **जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी** = जहाँ अरिहंत अरिष्टनेमि थे, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ आये, **उवागच्छित्ता** = वहाँ आकर, **अरहं अरिट्ठणेमिं** = भगवान नेमिनाथ को, **तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं** = तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करते हैं, तथा, **करेइ, करित्ता एवं वयासी-** = प्रदक्षिणा करके इस प्रकार बोले-, **'इच्छामि णं भंते !** = "हे भगवन् ! मैं चाहता हूँ, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे** = आपसे आज्ञा दिया हुआ, **महाकालंसि सुसाणंसि** = महाकाल नामक श्मशान में, **एगराइयं महापडिमं** =एक रात्रि की महाप्रतिमा, **उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए** = धारणकर विचरण करूँ।"

'अहासुहं देवाणुप्पिया!' = प्रभु बोले-"हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो," **तए णं से गयसुकुमाले** = तब वह गजसुकुमाल, **अणगारे अरहया अरिट्ठणेमिणा** = मुनि भगवान नेमिनाथ से, **अब्भणुण्णाए समाणे** = आज्ञा प्राप्त कर, **अरहं अरिट्ठणणेमिं वंदइ नमंसइ** = भगवान नेमिनाथ को वन्दना नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता नमंसित्ता** = वन्दना नमस्कार करके, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = भगवान नेमिनाथ के, **अंतियाओ सहसंबवणाओ** = पास से सहस्राम्रवन नामक, **उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ** = उद्यान से बाहर निकले। **पडिणिक्खमित्ता जेणेव** = उद्यान से निकलकर जहाँ, **महाकाले सुसाणे** = महाकाल श्मशान था, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ पर आते हैं। **उवागच्छित्ता** = महाकाल श्मशान में आकर, **थंडिलं पडिलेहेइ** = उन्होंने भूमि की प्रतिलेखना की, **पडिलेहित्ता उच्चारपासवण-भूमिं** = प्रतिलेखन करके उच्चार पासवण भूमि (मलमूत्रत्यागस्थल), **पडिलेहेइ पडिलेहित्ता** = का प्रतिलेखन करते हैं, प्रतिलेखन करके, **ईसिं पब्भारगएणं काएणं** = थोड़ा देह को पूर्व की तरफ झुका, **जाव दो वि पाए साहट्टु** = कर (एक पुद्‌गल पर दृष्टि जमाये) दोनों पैरों को (चार अंगुल के अन्तर में) सिकोड कर,

एगराइयं महापडिमं = एक रात्रि की महाप्रतिमा, **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** अंगीकार करके ध्यान में खड़े रहे।

भावार्थ–अब वह गजसुकुमाल अणगार हो गये। ईर्यासमिति वाले यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन गये। श्रमण धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् वह गजसुकुमाल मुनि जिस दिन दीक्षित हुए, उसी दिन, दिन के पिछले भाग में जहाँ अरिहंत अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने भगवान नेमिनाथ की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वे इस प्रकार बोले–"हे भगवन् ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त होने पर मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि महापडिमा (महाप्रतिमा) धारण कर विचरना चाहता हूँ।"

प्रभु ने कहा–"हे देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो वही करो।" तदनन्तर वह गजसुकुमाल मुनि अरिहंत अरिष्टनेमि की आज्ञा मिलने पर, भगवान नेमिनाथ को वन्दन-नमस्कार करते हैं। वंदन-नमस्कार कर, अर्हंत् अरिष्टनेमि के सान्निध्य से चलकर सहस्राम्र वन उद्यान से निकले। वहाँ से निकलकर जहाँ महाकाल श्मशान था, वहाँ आते हैं।

महाकाल श्मशान में आकर प्रासुक स्थंडिल भूमि की प्रतिलेखना करते हैं। प्रतिलेखन करने के पश्चात् उच्चार-प्रस्रवण (मल-मूत्र त्याग) के योग्य भूमि का प्रतिलेखन करते हैं। प्रतिलेखन करने के पश्चात् एक स्थान पर खड़े हो अपनी देह यष्टि को किंचित् झुकाये हुए (एक पुद्गल पर दृष्टि जमाकर) दोनों पैरों को (चार अंगुल के अन्तर से) सिकोड़कर एक रात्रि की महाप्रतिमा अंगीकार कर ध्यान में मग्न हो जाते हैं।

सूत्र 21

मूल– **इमं च णं सोमिले माहणे सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ नयरीओ बहिया, पुव्वणिग्गए समिहाओ य दब्भे य कुसे य पत्तामोडयं य गिण्हइ, गिण्हित्ता तओ पडिणियत्तइ। पडिणियत्तित्ता महाकालस्स सुसाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे संझाकालसमयंसि पविरलमणुस्संसि गयसुकुमालं अणगारं पासइ, पासित्ता तं वेरं सरइ सरित्ता आसुरुत्ते एवं वयासी–एस णं भो ! से गयसुकुमाले कुमारे अपत्थिय जाव परिवज्जिए, जे णं मम धूयं, सोमसिरीए भारियाए अत्तयं सोमं दारियं अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणीं विप्पजहित्ता मुण्डे जाव पव्वइए।**

संस्कृत छाया– अयं च खलु सोमिलो ब्राह्मण: समिधाया: अर्थाय द्वारावत्या: नगर्या: बहि: पूर्वं निर्गत: समिध: च दर्भांश्च कुशांश्च पत्रामोटं च गृह्णाति, गृहीत्वा तत: प्रतिनिवर्तते।

प्रतिनिवृत्य महाकालस्य श्मशानस्य अदूरसमन्तात् व्यतिव्रजन् संध्याकालसमये प्रविरलमानुषे गजसुकुमालम् अनगारम् पश्यति, दृष्ट्वा तत् वैरं स्मरति, स्मृत्वा आशुरक्तः एवम् अवदत्-एष खलु भो ! सः गजसुकुमालः कुमारः अप्रार्थितः यावत् परिवर्जितः, यः खलु मम दुहितरं, सोमश्रियाः भार्यायाः आत्मजां सोमां दारिकां अदृष्टदोषप्रकृतिं, कालवर्तिनीं विप्रहाय मुण्डो यावत् प्रव्रजितः।

अन्वायार्थ-इमं च णं सोमिले माहणे = यह सोमिल ब्राह्मण, **सामिधेयस्स अट्ठाए बारवईओ** = हवन की लकड़ी के लिए द्वारावती, **नयरीओ बहिया, पुव्वणिग्गए** = नगरी से बाहर, पहले से निकला हुआ, **समिहाओ य** = हवनीय काष्ठ, **दब्भे य कुसे य पत्तामोडयं य** = दर्भ, कुश और अग्रभाग में मुड़े हुए (सूखे) पत्तों को, **गिण्हइ, गिण्हित्ता तओ** =लेता है, लेकर वहाँ से, **पडिणियत्तइ पडिणियत्तित्ता** = लौटता है। लौटकर, **महाकालस्स सुसाणस्स** = महाकाल श्मशान के, **अदूरसामंतेणं वीइवयमाणे** = निकट से जाते हुए, **संझाकालसमयंसि** = संध्याकाल के समय में जब, **पविरलमणुस्संसि** = कि मनुष्यों का आवागमन नहीं सा था, **गयसुकुमालं अणगारं** = गजसुकुमाल मुनि को, **पासइ, पासित्ता तं** = देखता है, देखते ही सोमिल को, **वेरं सरइ** = पूर्व जन्म का वैर जागृत हो गया, **सरित्ता आसुरुत्ते एवं वयासी-** = वैर जागृत होते ही तत्काल, क्रोधित होता हुआ इस प्रकार बोला, **एस णं भो ! से गयसुकुमाले** = अरे ! यह वह गजसुकुमाल, **कुमारे अपत्थिय जाव** = कुमार अप्रार्थनीय मृत्यु को चाहने, **परिवज्जिए** = वाला यावत् लज्जा-रहित है, **जे णं मम धूयं, सोमसिरीए** = जिसने मेरी पुत्री व सोमश्री, **भारियाए अत्तयं सोमं दारियं** = ब्राह्मणी की आत्मजा सोमा कन्या को, **अदिट्ठदोसपइयं कालवत्तिणीं** = जो कि दोष रहित और अवस्था प्राप्त है, **विप्पजहित्ता मुण्डे जाव पव्वइए** = छोड़कर मुंडित हो साधु बन गया है।

भावार्थ-इधर ऐसा हुआ कि सोमिल ब्राह्मण समिधा (यज्ञ की लकड़ी) के लिए द्वारिका नगरी के बाहर पूर्व की ओर गजसुकुमाल अणगार के श्मशान भूमि में जाने से पूर्व ही निकला।

वह समिधा, दर्भ, कुश डाभ एवं अग्र भाग में मुड़े हुए पत्तों को लेता है, उन्हें लेकर वहाँ से अपने घर की तरफ लौटता है।

लौटते समय महाकाल श्मशान के निकट (न अति दूर न अति सन्निकट) से जाते हुए संध्या काल की वेला में, जबकि मनुष्यों का गमनागमन नहीं के समान हो गया था, उसने गजसुकुमाल मुनि को वहाँ ध्यानस्थ खड़े देखा।

उन्हें देखते ही सोमिल के हृदय में पूर्व भव का वैर जागृत हुआ। पूर्व जन्म के वैर का स्मरण हुआ। पूर्व जन्म के वैर का स्मरण करके वह क्रोध से तमतमा उठता है और इस प्रकार बुदबुदाता है-अरे ! यह तो वही अप्रार्थनीय का प्रार्थी (मृत्यु की इच्छा करने वाला) यावत् निर्लज्ज एवं श्री, कान्ति आदि से हीन

गजसुकुमाल कुमार है, जो मेरी सोमश्री भार्या की कुक्षि से उत्पन्न यौवनावस्था को प्राप्त मेरी निर्दोष पुत्री सोमा कन्या को अकारण ही छोड़कर मुंडित हो यावत् श्रमण बन गया है।

सूत्र 22

मूल– **तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स वेरणिज्जायणं करित्तए, एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करित्ता सरसं मट्टियं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ, बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ फुल्लियकिंसुय–समाणे खयरंगारे कहल्लेणं गिह्णइ, गिण्हित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव अवक्कमइ, अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।**

संस्कृत छाया– तत् श्रेय: खलु मम गजसुकुमालस्य वैर निर्यातनं कर्तुम्, एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य दिशाप्रतिलेखनं करोति, कृत्वा सरसां मृत्तिकां गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव गजसुकुमाल: अनगार: तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य मस्तके मृत्तिकाया: पालिं बध्नाति, बद्ध्वा ज्वलन्त्याश्चितिकाया: फुल्लितकिंशुकसमानान् खदिराङ्गारान् कर्परेण गृह्णाति, गृहीत्वा गजसुकुमालस्य अनगारस्य मस्तके प्रक्षिपति, प्रक्षिप्य भीत: तत: क्षिप्रमेव अपक्रामति, अपक्रम्य यस्या: दिश: प्रादुर्भूत: तस्यामेव दिशि प्रतिगत:।

अन्वयार्थ–तं सेयं खलु मम गयसुकुमालस्स = इसलिये निश्चय ही मुझे गजसुकुमाल से, **वेरणिज्जायणं करित्तए** = वैर का बदला लेना उचित है, **एवं संपेहेइ** = इस प्रकार (यह) विचार करता है, **संपेहित्ता दिसापडिलेहणं करेइ, करित्ता** = विचार कर दिशाओं का निरीक्षणकरता है, चारों तरफ देखकर, **सरसं मट्टियं गिण्हइ गिण्हित्ता जेणेव गयसुकुमाले** = गीली मिट्टी लेता है, मिट्टी लेकर जहाँ गजसुकुमाल, **अणगारे तेणेव उवागच्छइ** = मुनि थे, वहाँ आता है, **उवागच्छित्ता गयसुकुमालस्स अणगारस्स** = वहाँ आकर गजसुकुमाल मुनि के, **मत्थए मट्टियाए पालिं बंधइ** = मस्तक पर मिट्टी की पाल बाँधता है, **बंधित्ता जलंतीओ चिययाओ** = पाल बाँधकर जलती हुई चिता से, **फुल्लियकिंसुय–समाणे** = फूले हुए केसूड़ा के फूलों के समान, **खयरंगारे कहल्लेणं गिह्णइ** = लाल खेर के अंगारों को खप्पर में लेता है, **गिण्हित्ता गयसुकुमालस्स** = लेकर गजसुकुमाल, **अणगारस्स मत्थए पक्खिवइ** =

मुनि के मस्तक पर रख देता है, **पक्खिवित्ता भीए तओ खिप्पामेव =** रखकर भयभीत हुआ, वहाँ से शीघ्र, **अवक्कमइ =** ही हट जाता है, **अवक्कमित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए =** हटकर जिस दिशा से आया था, **तामेव दिसं पडिगए =** उस ही दिशा में चला गया।

भावार्थ–इसलिये मुझे निश्चय ही गजसुकुमाल से इस वैर का बदला लेना चाहिये। इस प्रकार वह सोमिल सोचता है और सोचकर सब दिशाओं की ओर देखता है कि कहीं कोई उसे देख तो नहीं रहा है। इस विचार से चारों ओर देखता हुआ पास के ही तालाब से वह थोड़ी गीली मिट्टी लेता है। गीली मिट्टी लेकर वहाँ आता है। वहाँ आकर गजसुकुमाल मुनि के सिर पर उस मिट्टी से चारों तरफ एक पाल बाँधता है।

पाल बाँधकर पास में ही कहीं जलती हुई चिता में से फूले हुए केसू के फूल के समान लाल-लाल खेर के अंगारों को किसी फूटे खप्पर में या किसी फूटे हुए मिट्टी के बरतन के टुकड़े (ठीकरे, या कोल्हू) में लेकर वह उन दहकते हुए अंगारों को उन गजसुकुमाल मुनि के सिर पर रखने के बाद इस भय से कि कहीं उसे कोई देख न ले, भयभीत होकर वहाँ से शीघ्रतापूर्वक पीछे की ओर हटता हुआ भागता है। वहाँ से भागता हुआ वह सोमिल जिस ओर से आया था उसी ओर चला गया।

सूत्र 23

मूल– **तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा पाउब्भूया, उज्जला जाव दुरहियासा तए णं से गयसुकुमाले अणगारे सोमिलस्स माहणस्स मणसा वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं जाव अहियासेइ। तए णं तस्स गयसुकुमालस्स अणगारस्स तं उज्जलं जाव अहिया-सेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरयविकिरणकरं अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स अणंते, अणुत्तरे जाव केवलवरणाण-दंसणे समुप्पण्णे तओ पच्छा सिद्धे जावप्पहीणे। तत्थ णं अहा संणिहिएहिं देवेहिं सम्मं आराहियंति कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाइए चेलुक्खेवे कए दिव्वे य गीय-गंधव्वणिणाए कए यावि होत्था।**

संस्कृत छाया– ततः खलु तस्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य शरीरे वेदना प्रादुर्भूता, उज्ज्वला यावत् दुरधिसहा, ततः खलु सः गजसुकुमालोऽनगारः सोमिलस्य ब्राह्मणस्य मनसा अपि अप्रदुष्यन् तां उज्ज्वलां यावत् (दुःसहां वेदनां) अधिसहते। ततः खलु तस्य गजसुकुमालस्य अनगारस्य तां उज्ज्वलां यावत् अधिसहमानस्य

शुभेन परिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन तदावरणीयानां कर्मणां क्षयेन कर्मरजविकिरणकरम् अपूर्वकरणमनुप्रविष्टस्य अनन्तमनुत्तरं यावत् केवलवरज्ञानदर्शनं समुत्पन्नम् ततः पश्चात् सिद्धः यावत् प्रहीणः। तत्र खलु यथा संनिहितैः देवैः सम्यक् आराधितः इति कृत्वा दिव्यं सुरभिगन्धोदकं वृष्टं दशार्धवर्णानि कुसुमानि निपातितानि, चैलोत्क्षेपः कृतः दिव्यं च गीतं-गान्धर्वनिनादः कृतः चापि अभूत्।

अन्वयार्थ-तए णं तस्स गयसुकुमालस्स = अंगार रखने के बाद उस गजसुकुमाल, **अणगारस्स सरीरयंसि वेयणा** = मुनि के शरीर में तीव्र वेदना, **पाउब्भूया** = उत्पन्न हुई, जो, **उज्जला जाव दुरहियासा** = अत्यन्त दुःखरूप यावत् असह्य थी, **तए णं से** = तब वह, **गयसुकुमाले अणगारे** = गजसुकुमाल मुनिवर, **सोमिलस्स माहणस्स मणसा** = सोमिल ब्राह्मण पर मन से, **वि अप्पदुस्समाणे तं उज्जलं** = भी द्वेष न लाते हुए उस तीव्रतर, **जाव अहियासेई** = दुःखरूपवेदना को सहन करने लगे। **तए णं तस्स गयसुकुमालस्स** = उस समय उस गजसुकुमाल, **अणगारस्स तं उज्जलं जाव** = मुनि द्वारा उस तीव्र यावत् एकान्त वेदना, **अहियासेमाणस्स सुभेणं** = को सहन करते हुए प्रशस्त शुभ, **परिणामेणं पसत्थज्झवसाणेणं** = परिणाम पूर्वक अध्यवसाय के कारण, **तयावरणिज्जाणं कम्माणं** = आवरणीय कर्म का, **खएणं कम्मरयविकिरणकरं** = क्षय होने से कर्मरज को बिखेरने वाले, **अपुव्वकरणं अणुप्पविट्ठस्स** = अपूर्व करण में प्रविष्ट होने से, **अणंते, अणुत्तरे जाव** = अनन्त सर्वश्रेष्ठ पूर्ण, **केवलवरणाण-दंसणे** = केवल ज्ञान और केवल दर्शन, **समुप्पण्णे तओ पच्छा** = उत्पन्न हुआ। इसके बाद, **सिद्धे जावप्पहीणे** = वे सिद्ध बुद्ध यावत् सब दुःखों से मुक्त हो गये। **तत्थ णं अहा संणिहिएहिं** = तदनन्तर जो वहाँ समीप थे, **देवेहिं सम्मं आराहियंति** = उन देवों ने भली प्रकार आराधना की, **कट्टु दिव्वे सुरभिगंधोदए वुट्ठे** = तथा दिव्य सुगन्धित जल की वर्षा की, **दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाइए** = पाँच वर्ण के पुष्प गिराये, **चेलुक्खेवे कए** = वस्त्रों की वर्षा की और, **दिव्वे य गीय-गंधव्वणिणाए कए यावि होत्था** = दिव्य गीत और गन्धर्व-वाद्ययन्त्र की ध्वनि भी हुई।

भावार्थ-सिर पर उन जाज्वल्यमान अंगारों के रखे जाने से गजसुकुमाल मुनि के शरीर में महा भयंकर वेदना उत्पन्न हुई जो अत्यन्त दाहक दुःखपूर्ण यावत् दुस्सह थी। इतना होने पर भी वे गज-सुकुमाल मुनि सोमिल ब्राह्मण पर मन से भी लेश मात्र भी द्वेष नहीं करते हुए उस एकान्त दुःख रूप वेदना को यावत् समभावपूर्वक सहन करने लगे।

उस समय उस एकान्त दुःखपूर्ण दुस्सह दाहक वेदना को समभाव से सहन करते हुए शुभ परिणामों तथा प्रशस्त शुभ अध्यवसायों (भावनाओं) के फलस्वरूप आत्मगुणों पर भिन्न-भिन्न रूपों वाले तद् तदावरणीय कर्मों के क्षय से समस्त कर्म-रज को झाड़कर साफ कर देने वाले कर्म विनाशक अपूर्व-करण में

वे प्रविष्ट हुए जिससे उन गजसुकुमाल अणगार को अनंत-अन्तरहित, अनुत्तर यावत् सर्वश्रेष्ठ निर्व्याघात निरावरण एवं सम्पूर्ण केवल ज्ञान एवं केवलदर्शन की उपलब्धि हुई और तत्पश्चात् आयुष्य पूर्ण हो जाने पर वे उसी समय सिद्ध बुद्ध यावत् सब दु:खों से मुक्त हो गये।

इस तरह सकल कर्मों के क्षय हो जाने से वे गजसुकुमाल अणगार कृतकृत्य बनकर 'सिद्ध' पद को प्राप्त हुए, लोकालोक के सभी पदार्थों के छूट जाने से परिनिवृत्त यानी शीतलीभूत हुए एवं शारीरिक और मानसिक सभी दु:खों से रहित होने से 'सर्व दु:ख प्रहीण' हुए अर्थात् वे गजसुकुमाल अणगार मोक्ष को प्राप्त हुए।

उस समय वहाँ समीपवर्ती देवों ने-''अहो! इन गजसुकुमाल मुनि ने श्रमण चारित्रधर्म की अत्यन्त उत्कृष्ट आराधना की है'' यह जानकर अपनी वैक्रिय शक्ति के द्वारा दिव्य सुगन्धित अचित्त जल की तथा पाँच वर्णों के दिव्य अचित्त फूलों एवं वस्त्रों की वर्षा की और दिव्य मधुर गीतों तथा गन्धर्व वाद्ययन्त्रों की ध्वनि से आकाश को गुँजा दिया।

सूत्र 24

मूल- **तए णं से कण्हे वासुदेवे कल्लं पाउप्पभायाए जाव-जलंते ण्हाए जाव विभूसिए, हत्थिक्खंधवरगए, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुवमाणीहिं महया भडचउगरपह-करवंद परिक्खित्ते बारवइं नयरीं मज्झंमज्झेणं जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं पासइ, जुण्णं जराजज्जरि-यदेहं जाव किलंतं महई महालयाओ इट्टगरासीओ एगमेगं इट्टगं गहाय बहिया रत्थापहाओ अंतो गिहं अणुप्पविसमाणं पासइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए, हत्थिक्खंध-वरगए चेव एगं इट्टगं गिण्हइ, गिण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ। तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं एगाए इट्टगाए गहियाए समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं से महालए इट्टगस्स रासी बहिया रत्थापहाओ अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए।**

संस्कृत छाया- तत: खलु स: कृष्ण वासुदेव: कल्ये प्रादुर्भूतप्रभाते यावत् ज्वलति स्नात: यावत्

विभूषित: हस्तिस्कन्धवरगत:, सकोरंटकमाल्यदाम्ना छत्रेण ध्रियमाणेन श्वेतवर-चामरै: उद्धुवद्भि: (उद्धूयमानै:) महाभटचाटुकारप्रकरवृन्द-परिक्षिप्त: द्वारावत्या: नगर्या: मध्यमध्येन यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमी तत्रैव प्राधारयद् गमनाय। तत: खलु स: कृष्ण: वासुदेव: द्वारावत्या: नगर्या: मध्यमध्येन निर्गच्छन् एकं पुरुषं पश्यति, जीर्णम् जराजर्जरितं देहं यावत् क्लिन्नं (क्लान्तं) महातिमहालयात् इष्टकाराशे: एकामेकाम् इष्टकां गृहीत्वा बहि: रथ्यापथात् अन्तर्गृहम् अनुप्रवेशयन्तम् पश्यति। तत: खलु: स: कृष्ण:वासुदेव: तस्य पुरुषस्य अनुकंपनार्थं हस्तिस्कन्धवरगतश्चैव एकाम् इष्टकां गृह्णाति, गृहीत्वा बहि:रथ्यापथात् अन्तर्गृहम् अनुप्रवेशयति। तत: खलु कृष्णेन वासुदेवेन एकस्याम् इष्टकायां गृहीतायां सत्याम् अनेकै: पुरुषशतै: असौ महान् इष्टकाया: राशि: बहि: रथ्यापथात् अन्तर्गृहे अनुप्रवेशित:।

अन्वयार्थ-तए णं से कण्हे वासुदेवे = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव, **कल्लं पाउप्पभायाए जाव-** = दूसरे दिन प्रात:काल सूर्योदय होने पर, **जलंते ण्हाए जाव विभूसिए** = स्नान से निवृत्त हो यावत् वस्त्राभूषणों से भूषित हुआ, **हत्थिक्खंधवरगए** = श्रेष्ठ हाथी पर सवार हुआ, **सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं** = कोरंट के फूलों की मालायुक्त, **धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं** = छत्र धारण किये हुए श्वेत चामरों से, **उद्धुवमाणीहिं** = बीजे जाते हुए तथा, **महया भडचउगरपहकरवंद** = बड़े-बड़े योद्धाओं व सेवक, **परिक्खित्ते** = समूह से घिरे हुए, **बारवइं नयरीं मज्झंमज्झेणं** = द्वारावती नगरी के बीच-बीच से, **जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी** = जहाँ पर भगवान अरिष्टनेमी थे, **तेणेव पहारेत्थ गमणाए** = वहाँ ही जाने का निश्चय किया। **तए णं से कण्हे वासुदेवे** = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव, **बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं** = द्वारावती नगरी के मध्य भाग, **णिग्गच्छमाणे एक्कं पुरिसं** = से निकलते हुए एक पुरुष, **पासइ, जुण्णं** = को देखते हैं, वह अतिवृद्ध, **जराजज्जरिय देहं जाव** = जरा से जर्जरित देहवाला यावत्, **किलंतं महई महालयाओ** = थका हुआ था और जो बहुत, **इट्टगरासीओ एगमेगं** = बड़े ईंटों के ढेर में से एक एक, **इट्टगं गहाय बहिया** = ईंट को लेकर बाहर गली के, **रत्थापहाओ अंतोगिहं** = रास्ते से घर के भीतर, **अणुप्पविसमाणं पासइ** = ले जा रहा था, ऐसे को देखा। **तए णं से कण्हे वासुदेवे** = तब उन कृष्ण वासुदेव ने, **तस्स पुरिसस्स अणुकंपणट्ठाए** = उस पुरुष की अनुकम्पा के लिये, **हत्थिक्खंधवरगए चेव** = हाथी पर बैठे हुए ही, **एगं इट्टगं गिण्हइ** = एक ईंट को उठा लिया, **गिण्हित्ता बहिया रत्थापहाओ** = उठाकर बाहर गली के रास्ते से, **अंतोगिहं अणुप्पवेसेइ** = घर के भीतर पहुँचा दिया।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं = तब कृष्ण वासुदेव के द्वारा, **एगाए इट्टगाए गहियाए** = एक ईंट उठा लेने पर, **समाणीए अणेगेहिं पुरिससएहिं** = अनेक सैंकड़ों पुरुषों द्वारा, **से महालए इट्टगस्स** = वह बहुत

बड़ा ईंटों का, **रासी बहिया रत्थापहाओ =** ढेर बाहर गली में से, **अंतोघरंसि अणुप्पवेसिए =** घर के भीतर पहुँचा दिया गया।

भावार्थ–उस रात्रि के व्यतीत होने के पश्चात् दूसरे दिन सूर्योदय की वेला में कृष्ण वासुदेव स्नान कर वस्त्रालंकारों से विभूषित हो हाथी पर आरूढ़ होकर, कोरंट पुष्पों की माला एवं छत्र धारण किये हुए श्वेत एवं उज्ज्वल चामर अपने दायें बायें डुलवाते हुए अनेक बड़े-बड़े योद्धाओं के समूह से घिरे हुए जहाँ भगवान अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ के लिए रवाना हुए।

तब उस कृष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी के मध्य भाग से जाते समय एक पुरुष को देखा, जो अति वृद्ध, जरा से जर्जरित यावत् अति क्लान्त अर्थात् कुम्हलाया हुआ एवं थका हुआ था। वह बहुत दुःखी था। उसके घर के बाहर राजमार्ग पर ईंटों का एक विशाल ढेर लाया हुआ पड़ा था, जिसे वह वृद्ध एक-एक ईंट करके अपने घर में स्थानान्तरित कर रहा था।

उस दुःखी वृद्ध पुरुष को इस तरह एक दो ईंट लाते देखकर कृष्ण वासुदेव ने उस पुरुष के प्रति करुणार्द्र होकर उस पर अनुकम्पा करते हुए हाथी पर बैठे-बैठे ही उस ढेर में से एक ईंट उठाई और उसे ले जाकर उसके घर के अन्दर रख दिया।

तब कृष्ण वासुदेव को इस तरह ईंट उठाते देखकर उनके साथ के अनेक सौ पुरुषों ने भी एक-एक करके ईंटों के उस सम्पूर्ण ढेर को तुरन्त बाहर से उठाकर उसके घर में पहुँचा दिया। इस प्रकार श्री कृष्ण के एक ईंट उठाने मात्र से उस वृद्ध जर्जर दुःखी पुरुष का बार-बार चक्कर काटने का कष्ट दूर हो गया।

सूत्र 25

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता जाव वंदित्ता नमंसित्ता गजसुकुमालं अणगारं अपासमाणे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी कहिं णं भंते ! से मम सहोयरे भाया गयसुकुमाले अणगारे? जण्णं अहं वंदामि नमंसामि तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी– साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं अप्पणो अट्ठे।**

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–कहण्णं भंते ! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः द्वारावत्याः नगर्याः मध्यमध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैव उपागतः, उपागत्य यावत् वंदित्वा नमस्यित्वा गजसुकुमालम् अनगारम् अपश्यन् अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवम् अवदत् क्व खलु भदन्त ! सः मम सहोदरः भ्राता गजसुकुमालः अनगारः यं खलु अहं वन्दे नमस्यामि । ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवम् एवं अवदत्-साधितः खलु कृष्ण ! गजसुकुमालेन अनगारेन आत्मनः अर्थः ।

ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं एवम् अवादीत्-कथं खलु भदन्त ! गजसुकुमालेन अनगारेण साधितः आत्मनः अर्थः ?

अन्वयार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव, **बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं** = द्वारिका नगरी के बीच में से, **णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता** = निकल गये, निकल कर, **जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी** = जहाँ भगवान अरिष्टनेमी थे, **तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता** = वहाँ आये, वहाँ आकर, **जाव वंदित्ता नमंसित्ता** = यावत् वंदना नमस्कार करके, **गजसुकुमालं अणगारं** = गजसुकुमाल मुनि को, **अपासमाणे अरहं अरिट्ठणेमिं** = नहीं देखते हुए भगवान अरिष्टनेमी को, **वंदइ, नमंसइ,** = वन्दना नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी** = वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोले, **कहिं णं भंते ! से मम सहोयरे** = हे भगवन् ! वह मेरा सहोदर, **भाया गयसुकुमाले अणगारे ?** = भाई गजसुकुमाल मुनि कहाँ है ? **जण्णं अहं वंदामि नमंसामि** = जिसको मैं वन्दना नमस्कार करूँ । **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = तब भगवान अरिष्टनेमी ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–** = कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा-, **साहिए णं कण्हा ! गयसुकुमालेणं** = हे कृष्ण ! गजसुकुमाल मुनि, **अणगारेणं अप्पणो अट्ठे** = ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे = तब उस कृष्ण वासुदेव ने भगवान, **अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–** = अरिष्टनेमी को इस प्रकार कहा-, **कहण्णं भंते ! गयसुकुमालेणं** = हे भगवन् ! गजसुकुमाल मुनि, **अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे** = ने अपना कार्य कैसे सिद्ध कर लिया है ?

भावार्थ–तत्पश्चात् वह कृष्ण वासुदेव द्वारिका नगरी के मध्य भाग से निकलते हुए जहाँ भगवान अरिष्टनेमि विराजते थे वहाँ आये । वहाँ आकर यावत् भगवान को वन्दन-नमस्कार किया। तत्पश्चात् अपने सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनि को वन्दन-नमस्कार करने के लिये उनको इधर-उधर देखा । जब उन्होंने मुनि को वहाँ नहीं देखा तो भगवान अरिष्टनेमि को पुनः वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमन कर के भगवान से इस प्रकार पूछा-''प्रभो ! वे मेरे सहोदर लघुभ्राता नवदीक्षित गजसुकुमाल मुनि कहाँ हैं ? मैं उनको वन्दना नमस्कार करना चाहता हूँ ।''

तब अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोले–''हे कृष्ण ! गजसुकुमाल मुनि ने जिस प्रयोजन के लिये संयम स्वीकार किया था, वह प्रयोजन, वह आत्मार्थ उन्होंने सिद्ध कर लिया है।''

यह सुनकर चकित होते हुए कृष्ण वासुदेव ने अर्हन्त प्रभु से प्रश्न किया–''भगवन्! गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन, अपना आत्म- कार्य सिद्ध कर लिया, यह कैसे ?''

सूत्र 26

मूल– **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा! गजसुकुमालेणं अणगारेणं मम कल्लं पुव्वावरण्हकाल–समयंसि वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–'इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।' तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं एगे पुरिसे पासइ, पासित्ता आसुरत्ते जाव सिद्धे। तं एवं खलु कण्हा! गयसुकुमालेणं अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे। तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–के स णं भंते ! से पुरिसे अप्पत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिए, जे णं ममं सहोदरं कणीयसं भायरं गयसुकुमालं अणगारं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए ?**

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स पओसमावज्जाहि, एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे।

संस्कृत छाया– ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवम् एवम् अवादीत्–एवं खलु कृष्ण ! गजसुकुमालेन अनगारेन माम् कल्यं पूर्वापराह्नकालसमये वंदते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवम् अवादीत् इच्छामि खलु यावत् उपसंपद्य–विहरति। ततः खलु तं ! गजसुकुमालं अनगारं एकः पुरुषः पश्यति, दृष्ट्वा आशुरक्तः यावत् सिद्धः। तदेवं खलु कृष्ण ! गजसुकुमालेन अनगारेण साधितः आत्मनः अर्थः। ततः खलु सः कृष्णः अर्हन्तमरिष्टनेमिं एवम् अवदत्–(कीदृशः) कः स नु भदन्त ! सः पुरुषः अप्रार्थित प्रार्थकः यावत् परिवर्जितः, यः खलु मम सहोदरं कनीयांसं भ्रातरं गजसुकुमालम् अनगारं अकाले चैव जीवितात् व्यपरोपितः ?

ततः अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवं एवमवादीत् मा खलु कृष्ण ! त्वं तस्य

पुरुषस्य उपरि द्वेषं कुरु एवं खलु कृष्ण ! तेन पुरुषेण गजसुकुमालाय अनगाराय साहाय्यं दत्तम्।

अन्वयार्थ–तए णं अरहा अरिट्ठणेमी = तब भगवान नेमिनाथ, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी =** कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोले–, **एवं खलु कण्हा ! गजसुकुमालेणं =** ऐसा है कृष्ण ! गजसुकुमाल, **अणगारेणं मम कल्लं =** मुनि ने कल दिन के, **पुव्वावरण्हकाल–समयंसि =** पिछले भाग में मुझको, **वंदइ नमंसइ =** वंदन नमस्कार किया, **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– =** वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा, '**इच्छामि णं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** आपकी आज्ञा हो तो एक रात्रि की महा प्रतिमा धारण कर विचरना चाहता हूँ। **तए णं तं गयसुकुमालं अणगारं =** इसके बाद उस गजसुकुमाल मुनि को, **एगे पुरिसे पासइ =** एक पुरुष ने देखा, **पासित्ता आसुरत्ते जाव सिद्धे =** देख कर क्रुद्ध हुआ, यावत् गजसुकुमाल मुनि आयु पूर्ण कर सिद्ध हो गये। **तं एवं खलु कण्हा ! गयसुकुमालेणं =** इस प्रकार हे कृष्ण ! गजसुकुमाल, **अणगारेणं साहिए अप्पणो अट्ठे =** मुनि ने अपना कार्य सिद्ध कर लिया। **तए णं से कण्हे =** तब कृष्ण ने, **वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी– =** भगवान अरिष्टनेमी को इस प्रकार कहा, **के स णं भंते ! से पुरिसे =** हे पूज्य ! वह अप्रार्थनीय–मृत्यु, **अप्पत्थिय पत्थए जाव परिवज्जिए =** को चाहने वाला यावत् लज्जारहित, **जे णं ममं सहोदरं कणीयसं =** कौन पुरुष है ? जिसने मेरे सहोदर छोटे, **भायरं गयसुकुमालं अणगारं =** भाई गजसुकुमाल मुनि को, **अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए ? =** असमय ही जीवन से वियुक्त कर दिया ?

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी = तब अरिहंत अरिष्टनेमिनाथ, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी– =** कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोले–, **मा णं कण्हा ! तुमं तस्स पुरिसस्स =** हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष के, **पओसमावज्जाहि =** ऊपर द्वेष मत करो, **एवं खलु कण्हा ! तेणं पुरिसेणं =** हे कृष्ण ! इस प्रकार उस, **गयसुकुमालस्स अणगारस्स =** पुरुष ने निश्चय ही गजसुकुमाल मुनि को, **साहिज्जे दिण्णे =** सहायता प्रदान की है।

भावार्थ–अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को उत्तर दिया–''हे कृष्ण ! वस्तुत: कल दिन के अपराह्न काल के पूर्व भाग में गजसुकुमाल मुनि ने मुझे वन्दन–नमस्कार किया। वन्दन–नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया–''हे प्रभो ! आपकी आज्ञा हो तो मैं महाकाल श्मशान में एक रात्रि की महा भिक्षु प्रतिमा धारण करके विचरना चाहता हूँ।''

यावत् मेरी अनुज्ञा प्राप्त होने पर वह गजसुकुमाल मुनि महाकाल श्मशान में जा कर भिक्षु की महाप्रतिमा धारण करके ध्यानस्थ खड़े हो गये।

इसके बाद उन गजसुकुमाल मुनि को एक पुरुष ने देखा और देखकर उन पर बड़ा क्रुद्ध हुआ।

पूर्व का वैर–भाव उसमें जागृत हुआ। वह क्रोध एवं वैर से प्रेरित होकर पास के तालाब से गीली मिट्टी लाया और उन गजसुकुमाल अणगार के सिर पर चारों ओर उस मिट्टी से पाल बाँधी। फिर पास में ही जलती हुई किसी की चिता से धधकते हुए लाल–लाल अंगारों को किसी खप्पर में या किसी फूटे हुए मिट्टी के बर्तन के टुकड़े में भरकर उन अणगार के सिर पर बाँधी हुई उस मिट्टी की पाल में डाल दिया।

इससे मुनि को असह्य वेदना हुई। परन्तु फिर भी उन्होंने मन से भी उस घातक पुरुष के प्रति किंचित् मात्र भी द्वेष भाव नहीं किया। वे समभावपूर्वक उस भयंकर वेदना को सहते रहे और इस तरह अत्यन्त शुभ परिणामों, शुभ भावों एवं शुभ अध्यवसायों से सम्पूर्ण केवल ज्ञान और केवल दर्शन प्राप्त करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये। इस प्रकार हे कृष्ण ! उन गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया। अपना आत्म– कार्य सिद्ध कर लिया।''

यह सुनकर वह कृष्ण वासुदेव भगवान नेमिनाथ को इस प्रकार पूछने लगे–''हे पूज्य ! वह अप्रार्थनीय का प्रार्थी यानी मृत्यु को चाहने वाला यावत् निर्लज्ज पुरुष कौन है जिसने मेरे सहोदर लघुभ्राता गजसुकुमाल मुनि का असमय में ही प्राण–हरण कर लिया ?''

तब अर्हत् अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले–''हे कृष्ण ! तुम उस पुरुष पर द्वेष–रोष मत करो, क्योंकि इस प्रकार उस पुरुष ने सुनिश्चितरूपेण गजसुकुमाल मुनि को अपना आत्म–कार्य, अपना प्रयोजन सिद्ध करने में सहायता प्रदान की है।''

सूत्र 27

मूल– **कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स साहिज्जे दिण्णे ? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवम् वयासी–से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए हव्वमागच्छमाणे बारवईए नयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव अणुप्पवेसिए। जहा णं कण्हा तुमं तस्स पुरिसस्स साहिज्जे दिण्णे। एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्स–संचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे। तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–''जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए अणुप्पविसमाणं पासित्ता ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करिस्सइ तए णं तुमं जाणिज्जासि एस णं से पुरिसे।''**

संस्कृत छाया– कथं भदन्त! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य साहाय्यं दत्तम् ? ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवम् एवम् अवदत्–अथ नूनं कृष्ण ! त्वं मम पादवंदनाय शीघ्रमागच्छन् द्वारावत्यां नगर्याम् एकं पुरुषं पश्यसि, यथा खलु कृष्ण त्वया तस्मै पुरुषाय साहाय्यं दत्तम्। एवमेव कृष्ण ! तेन पुरुषेण गजसुकुमालस्य अनगारस्य अनेक भवशतसहस्रसंचितं कर्म उदीरयता बहुकर्मनिर्जरार्थं साहाय्यं दत्तम्। यावत् अनुप्रवेशितः ततः सः कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं एवम् अवदत् सः भदन्त ! पुरुषः मया कथं ज्ञातव्यः ? ततः अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवं एवमवदत्–''यः खलु कृष्ण ! त्वां द्वारावत्यां नगर्याम् अनुप्रविशन्तम् दृष्ट्वा स्थितः एव स्थितिभेदेन कालं करिष्यति ततो नु त्वं ज्ञास्यसि एष सः पुरुषः।''

अन्वयार्थ–कहण्णं भंते ! तेणं पुरिसेणं = कैसे हे पूज्य ! उस पुरुष ने, **गयसुकुमालस्स साहिज्जे** = गजसुकुमाल को सहायता, **दिण्णे ? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = दी ? तब भगवान अरिष्टनेमी, **कण्हं वासुदेवं एवम् वयासी–** = ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **से नूणं कण्हा ! तुमं ममं पायवंदए** = हे कृष्ण ! मेरे चरण-वन्दन को, **हव्वमागच्छमाणे** = शीघ्र आते हुए तुमने, **बारवईए नयरीए एगं पुरिसं पाससि जाव**= द्वारिका नगरी में एक वृद्ध पुरुष को देखा यावत्, **अणुप्पवेसिए** = ईंट की ढेरी उसके घर में रख दी। **जहा णं कण्हा तुमं तस्स पुरिसस्स** = हे कृष्ण ! जैसे तुमने उस पुरुष, **साहिज्जे दिण्णे** = के लिये सहायता दी, **एवमेव कण्हा ! तेणं पुरिसेणं** = इसी प्रकार हे कृष्ण ! उस पुरुष ने, **गयसुकुमालस्स अणगारस्स** = गजसुकुमाल मुनि को, **अणेगभवसयसहस्स-संचियं** = अनेक सैंकड़ों-हजारों जन्मों के संचित, **कम्मं उदीरेमाणेणं** = कर्मों की उदीरणा करते हुए, **बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे** = बहुत कर्म की निर्जरा के लिये सहयोग प्रदान किया है। **तए णं से कण्हे वासुदेवे** = फिर कृष्ण वासुदेव ने भगवान, **अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–** = अरिष्टनेमी को इस प्रकार कहा–, **से णं भंते ! पुरिसे मए कहं जाणियव्वे ?** = हे भगवन् ! मैं उस पुरुष को कैसे जान सकूँगा ? **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = तब भगवान अरिष्टनेमी ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–** = कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **''जे णं कण्हा ! तुमं बारवईए** = हे कृष्ण ! जो तुम को द्वारिका, **नयरीए अणुप्पविसमाणं** = नगरी में प्रवेश करते हुए, **पासित्ता ठियए चेव** = देखकर खड़ा-खड़ा ही, **ठिइभेएणं कालं करिस्सइ** = स्थितिपूर्ण हो जाने से मृत्यु प्राप्त करेगा, **ए णं तुमं जाणिज्जासि** = तब तुम जानोगे कि, **एस णं से पुरिसे** = यह ही वह पुरुष है।

भावार्थ–यह सुनकर कृष्ण वासुदेव ने पुनः प्रश्न किया–''हे पूज्य ! उस पुरुष ने गजसुकुमाल मुनि को सहायता दी, यह कैसे ?''

इस पर अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार स्पष्ट किया–''हे कृष्ण ! निश्चय ही उसने सहायता की। मेरे चरण–वंदन हेतु शीघ्रतापूर्वक आते समय तुमने द्वारिका नगरी में एक वृद्ध पुरुष को देखा और उसके घर के बाहर राजमार्ग पर पड़ी हुई ईंटों की विशाल राशि में से तुमने एक ईंट उस वृद्ध के घर में रख दी। तुम्हें एक ईंट रखते देखकर तुम्हारे साथ के सब पुरुषों ने भी उन ईंटों को उठा उठा कर उस वृद्ध के घर में पहुँचा दिया और ईंटों की वह विशाल राशि इस तरह तत्काल राजमार्ग से उठकर उस वृद्ध के घर में चली गई। इस तरह तुम्हारे इस सत्कर्म से उस वृद्ध पुरुष का उस ढेर की एक–एक ईंट करके लाने का कष्ट दूर हो गया।''

''हे कृष्ण ! वस्तुत: जिस तरह तुमने उस पुरुष का दु:ख दूर करने में उसकी सहायता की उसी तरह हे कृ ष्ण ! उस पुरुष ने भी अनेकानेक लाखों करोड़ों भवों के संचित कर्म की राशि की उदीरणा करने में संलग्न गजसुकुमाल मुनि को उन कर्मों की सम्पूर्ण निर्जरा करने में सहायता प्रदान की है। तदनन्तर कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि से इस प्रकार पूछा–''हे भगवन् ! मैं उस पुरुष को किस प्रकार जान अथवा पहिचान सकूँगा ?''

तब भगवान अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोले–''हे कृष्ण ! जो पुरुष तुम्हें द्वारिका नगरी में प्रवेश करते हुए को देखकर खड़ा–खड़ा ही आयु स्थिति पूर्ण हो जाने से मृत्यु को प्राप्त हो जाय–उसी को तुम समझ लेना कि निश्चय रूपेण यही वह पुरुष है।''

सूत्र 28

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता, जेणेव आभिसेयं हत्थिरयणं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी, जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स कल्लं जाव जलंते अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे। एवं खलु कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं, पायवंदए णिग्गए तं नायमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ कण्हस्स वासुदेवस्स। तं न णज्जइ णं कण्हे वासुदेवे ममं केण वि कुमारेणं मारिस्सइ त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स वारवइं नयरीं अणुप्पविस–माणस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसं हव्वमागए।**

संस्कृत छाया– ततः कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वन्दते, नमस्यति, वंदित्वा, नमस्यित्वा, यत्रैव आभिषेक्यं हस्तिरत्नं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य हस्तिनं दूरोहति दूरुह्य यत्रैव द्वारावती नगरी यत्रैव स्वकं गृहम् तत्रैव प्राधारयद् गमनाय। ततः तस्य सोमिलस्य ब्राह्मणस्य कल्ये यावत् ज्वलति अयमेतद्रूपः अध्यवसायः यावत् समुत्पन्नः। एवं खलु कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं पादवंदनाय निर्गतः तत् ज्ञातमेतद् अर्हता, विज्ञातमेतत् अर्हता, श्रुतमेतद् अर्हता शिष्टमेतद् अर्हता भविष्यति कृष्णाय वासुदेवाय। तद् न ज्ञायते खलु कृष्णः वासुदेवः मां केनापि कुमारेण मारयिष्यति इति कृत्वा भीतः स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्रामति, प्रतिनिष्क्रम्य कृष्णस्य वासुदेवस्य द्वारावत्यां नगर्याम् अनुप्रविशन्तं पुरतः सपक्षं सप्रतिदिशम् शीघ्रमागतः।

अन्वयार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं = तदनन्तर कृष्ण वासुदेव भगवान, **अरिट्ठणेमिं वंदइ, नमंसइ,** = अरिष्टनेमिनाथ को वन्दना-नमस्कार करता है,, **वंदित्ता, नमंसित्ता,** = वन्दना-नमस्कार करके, **जेणेव** = जहाँ पर, **आभिसेयं हत्थिरयणं** = अभिषेक योग्य हस्तिरत्न था, **तेणेव उवागच्छइ,** = वहाँ पर ही आता है, **उवागच्छित्ता हत्थिं दुरुहइ** = आकर हाथी पर आरूढ होता है, **दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी,** = आरूढ होकर जहाँ द्वारिका नगरी है, **जेणेव सए गिहे तेणेव** = तथा जहाँ खुद का घर है वहाँ, **पहारेत्थ गमणाए** = जाने का निश्चय किया अर्थात् चल दिये। **तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स** = उधर उस सोमिल ब्राह्मण, **कल्लं जाव जलंते** = को (दूसरे दिन) सुबह होते ही, **अयमेयारूवे अज्झत्थिए** = इस प्रकार का मानसिक संकल्प, **जाव समुप्पण्णे** = उत्पन्न हुआ। **एवं खलु कण्हे वासुदेवे** = निश्चय ही कृष्ण वासुदेव, **अरहं अरिट्ठणेमिं,** = अर्हन्त अरिष्टनेमि की, **पायवंदए णिग्गए** = पादवन्दना के लिए गये होंगे, **तं नायमेयं अरहया** = तब सर्वज्ञ होने से यह सब भगवान ने अवश्य जान लिया होगा, **विण्णायमेयं अरहया** = विशेष रूप से सब जान लिया होगा। **सुयमेयं अरहया सिट्ठमेयं अरहया भविस्सइ** = भगवान ने यह सब सुन लिया है, **कण्हस्स वासुदेवस्स** = और अवश्य ही कृष्णवासुदेव को कह दिया होगा। **तं न णज्जइ णं कण्हे वासुदेवे** = तो न मालूम कृष्ण वासुदेव, **ममं केण वि कुमारेणं मारिस्सइ** = मुझे किस कुमौत से मारेंगे!, **त्ति कट्टु भीए सयाओ गिहाओ** = इस विचार से डरा हुआ अपने घर से, **पडिणिक्खमइ** = निकलता है, **पडिणिक्खमित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स** = निकलकर कृष्ण वासुदेव, **बारवइं नयरीं** = के द्वारिका नगरी में, **अणुप्पविसमाणस्स पुरओ** = प्रवेश करते हुए के सामने, **सपक्खिं सपडिदिसं** = बराबर दिशा और पक्ष में, **हव्वमागए** = शीघ्र आ गया।

भावार्थ–तदनन्तर कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि को वन्दना नमस्कार कर जहाँ अभिषेकयोग्य हस्तिरत्न था वहाँ पहुँच कर उस हाथी पर आरूढ़ हुए और द्वारिका नगरी में स्थित अपने राजप्रासाद की ओर चल पड़े। उधर उस सोमिल ब्राह्मण के मन में दूसरे दिन सूर्योदय होते ही इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ–निश्चय ही कृष्ण वासुदेव अरिहंत अरिष्टनेमि के चरणों में वंदन करने के लिये गये होंगे। भगवान तो सर्वज्ञ हैं उनसे कोई बात छिपी नहीं है। उन प्रभु से गजसुकुमाल की मृत्यु सम्बन्धी मेरे कुकृत्य का अरिष्टनेमि से उन्होंने सब वृत्तान्त जान लिया होगा, (आद्योपान्त) पूर्णत: विदित कर लिया होगा, यह सब भगवान से स्पष्ट समझ सुन लिया होगा। अर्हन्त अरिष्टनेमि ने अवश्यमेव कृष्ण वासुदेव को यह सब कुछ बता दिया होगा।

''तो ऐसी स्थिति में कृष्ण वासुदेव रुष्ट होकर मुझे न मालूम किस प्रकार की कुमौत से मारेंगे।'' ऐसा विचार कर वह डरा और नगर से कहीं दूर भागने का निश्चय किया। उसने सोचा कि श्री कृष्ण तो राजमार्ग से लौटेंगे। इसलिए मैं किसी गली के रास्ते निकल भागूँ और उनके लौटने से पूर्व ही निकल जाऊँ। ऐसा सोच कर वह अपने घर से निकला और गली के रास्ते से भागा।

इधर कृष्ण वासुदेव भी अपने लघु सहोदर भाई गजसुकुमाल मुनि की अकाल–मृत्यु के शोक से विह्वल होने के कारण राजमार्ग छोड़कर उसी गली के रास्ते से लौट रहे थे। जिससे संयोगवश कृष्ण वासुदेव के द्वारिका नगरी में प्रवेश करते समय उनके सामने ही वह आ निकला।

सूत्र 29

मूल– **तए णं से सोमिले माहणे कण्हं वासुदेवं सहसा पासित्ता भीए, ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ, करित्ता धरणितलंसि सव्वंगेहिं धसत्ति सण्णिवडिए। तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं माहणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी–एस णं भो देवाणुप्पिया ! से सोमिले माहणे अपत्थिय पत्थिए जाव परिवज्जिए। जेण ममं सहोयरे कणीयसे भायरे गयसुकुमाले अणगारे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए, त्ति कट्टु सोमिलं माहणं पाणेहिं कड्ढावेइ, कड्ढावित्ता, तं भूमिं पाणिएणं अब्भुक्खावेइ, अब्भुक्खावित्ता, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए सयं गिहं अणुप्पविट्ठे। एवं खलु जम्बू ! समणेणं भगवया जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।**

संस्कृत छाया– ततः सः सोमिलः ब्राह्मणः कृष्णं वासुदेवं सहसा दृष्ट्वा भीतः, स्थितः एव स्थितिभेदेन कालं करोति, कृत्वा धरणीतले सर्वांगैः 'धस' इति संनिपतितः। ततः सः कृष्णः वासुदेवः सोमिलं ब्राह्मणं पश्यति, दृष्ट्वा एवमवादीत्–एषः भो देवानुप्रियः ! सः सोमिलः ब्राह्मणः अप्रार्थित प्रार्थकः यावत् परिवर्जितः। येन मम सहोदरः कनीयान् भ्राता गजसुकुमालः अनगारः अकाले चैव जीवितात् व्यपरोपितः, इति उक्त्वा सोमिलं ब्राह्मणं पाणैः कर्षयति, कर्षयित्वा, तां भूमिं पानीयेन अभ्युक्षयति, अभ्युक्ष्य, यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागतः स्वकं गृहं अनुप्रविष्टः। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य अष्टमस्य अध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

अन्वयार्थ–तए णं से सोमिले माहणे कण्हं = तब वह सोमिल ब्राह्मण कृष्ण, **वासुदेवं सहसा पासित्ता** = वासुदेव को अचानक देखकर, **भीए ठियए चेव ठिइभेएणं कालं करेइ** = भयभीत हुआ खड़ा-खड़ा ही स्थितिभेद से मृत्यु को प्राप्त हो गया, **करित्ता धरणितलंसि** = तथा मरकर पृथ्वीतल पर, **सव्वंगेहिं धसत्ति सण्णिवडिए** = सब अंगों से 'धम' से गिर गया। **तए णं से कण्हे वासुदेवे सोमिलं** = तब कृष्ण वासुदेव ने सोमिल, **माहणं पासइ,** = ब्राह्मण को देखा, **पासित्ता एवं वयासी–** = देखकर इस प्रकार कहा–, **एस णं भो देवाणुप्पिया ! से सोमिले** = हे देवानुप्रियों ! यह वह सोमिल, **माहणे अपत्थिय पत्थिए** = ब्राह्मण अप्रार्थनीय (मृत्यु) को चाहने, **जाव परिवज्जिए** = वाला (लज्जा व शोभा से रहित है।), **जेण ममं सहोयरे कणीयसे भायरे** = जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई, **गयसुकुमाले अणगारे अकाले** = गजसुकुमाल मुनि को असमय, **चेव जीवियाओ ववरोविए,** = में ही जीवन से विमुक्त कर दिया। **त्ति कट्टु सोमिलं माहणं** = यह कह कर सोमिल ब्राह्मण को, **पाणेहिं कड्ढावेइ,** = चांडालों से घिसटवाकर हटवाया, **कड्ढावित्ता, तं भूमिं पाणिएणं** = हटवाकर, उस भूमि को जल से, **अब्भुक्खावेइ,** = धुलवाते हैं, **अब्भुक्खावित्ता, जेणेव सए** = धुलवा कर जहाँ अपना, **गिहे तेणेव उवागए** = घर है वहाँ आये और, **सयं गिहं अणुप्पविट्ठे** = अपने घर में (महल में) चले गये। **एवं खलु जम्बू ! समणेणं** = इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान, **भगवया जाव संपत्तेणं** = जो मोक्ष पधारे हैं, उन प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं** = आठवें अंग अंतकृद्दशा सूत्र, **तच्चस्स वग्गस्स अट्ठमस्स** = के तीसरे वर्ग के आठवें, **अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = अध्ययन का यह अर्थ कहा है।

भावार्थ–तब उस समय वह सोमिल ब्राह्मण कृष्ण वासुदेव को सहसा सम्मुख देखकर भयभीत हुआ और जहाँ-का-तहाँ स्तम्भित खड़ा रह गया और वहीं खड़े-खड़े ही स्थिति भेद से अपना आयुष्य पूर्ण हो जाने से सर्वांग शिथिल हो वह सोमिल 'धस' शब्द करते हुए मर कर वहीं भूमि-तल पर गिर पड़ा।

उस समय कृष्ण वासुदेव सोमिल ब्राह्मण को मर कर गिरता हुआ देखते हैं और देखकर इस प्रकार बोलते हैं–''अरे ओ देवानुप्रियों ! यही यह अप्रार्थनीय को चाहने वाला, मृत्यु की इच्छा करने वाला तथा लज्जा एवं शोभा से रहित सोमिल ब्राह्मण है, जिसने मेरे सहोदर छोटे भाई गजसुकुमाल मुनि को असमय में ही काल का ग्रास बना डाला।'' ऐसा कहकर कृष्ण वासुदेव ने सोमिल ब्राह्मण के उस शव को चांडालों के द्वारा घसीटवा कर नगर के बाहर फिंकवा दिया और उसके शव को फिंकवा कर उस शव से स्पर्श की गई सारी भूमि को पानी से धुलवाया। उस भूमि को पानी से धुलवाकर कृष्ण वासुदेव अपने राजप्रासाद में पहुँचे और अपने घर में प्रवेश किया। इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने, जो कि सिद्ध, बुद्ध मुक्त हुए, आठवें अङ्ग के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन का यह भाव श्रीमुख से कहा।

।। इइ अट्ठममज्झयणं–अष्टम अध्ययन समाप्त ।।

नवममज्झयणं–नवम अध्ययन

मूल– **नवमस्स उक्खेवओ। एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए जहा पढमे जाव विहरइ। तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था, वण्णओ। तस्स णं बलदेवस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ। तए णं सा धारिणी सीहं सुमिणे, जहा गोयमे नवरं सुमुहे नामं कुमारे, पण्णासं कण्णाओ, पण्णासं दाओ, चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ, वीसं वासाइं परियाओ, सेसं तं चेव जाव सेत्तुंजे सिद्धे निक्खेवओ।**

संस्कृत छाया– नवमस्य उत्क्षेपकः। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां यथा प्रथमे यावत् विहरति। तत्र द्वारावत्यां बलदेवो नाम राजा अभवत्, वर्ण्यः। तस्य बलदेवस्य राज्ञः धारिणी नामा देवी (राज्ञी) आसीत् वर्ण्या। ततः सा धारिणी सिंहं स्वप्ने, यथा गौतमः (नवीनम्) विशेषस्तु सुमुखो नाम कुमारः पञ्चाशत् कन्यकाः (परिणीतवान्) (परिणये) पञ्चाशत् दायः, चतुर्दश पूर्वाणि अधीते, विंशति वर्षाणि (दीक्षा) पर्यायः, शेषं तदेव यावत् शत्रुञ्जये सिद्धः निक्षेपकः।

अन्वायार्थ–नवमस्स उक्खेवओ = नवम अध्ययन का प्रारम्भ, **एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं**

= इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल व, **तेणं समएणं बारवईए नयरीए** = उस समय द्वारिका नगरी में, **जहा पढमे जाव विहरइ** = जैसा प्रथम अध्ययन में कहा गया है, उसी प्रकार भगवान नेमिनाथ, विचरण करते हुए वहाँ पधारे, **तत्थ णं बारवईए बलदेवे नामं राया होत्था, वण्णओ** = वहाँ द्वारिका नगरी में बलदेव, नामक राजा था, जो कि वर्णनीय था।

तस्स णं बलदेवस्स रण्णो = उस बलदेव राजा के, **धारिणी नामं देवी होत्था, वण्णओ। =** धारिणी नाम की रानी थी, वह बहुत वर्णनीय थी, **तए णं सा धारिणी सीहं सुमिणे** = फिर उस धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा, **जहा गोयमे** = तदनन्तर पुत्र जन्म आदि का वर्णन गौतम कुमार की तरह जानना चाहिये, **नवरं सुमुहे नामं कुमारे** = विशेष, कुमार का नाम सुमुख रखा गया, **पण्णासं कण्णाओ पण्णासं दाओ** = पचास कन्याओं का पाणिग्रहण किया, पचास (करोड़) दहेज प्राप्त हुआ, **चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जइ** = चौदह पूर्व का अध्ययन किया, **वीसं वासाइं परियाओ** = बीस वर्ष दीक्षा पर्याय चली, **सेसं तं चेव जाव सेत्तुंजे** = शेष उसी प्रकार यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर, **सिद्धे निक्खेवओ** = सिद्ध हुए। निक्षेपक।

भावार्थ–यहाँ उत्क्षेपक शब्द के प्रयोग से यह आशय समझना चाहिए कि श्री जम्बू स्वामी अपने गुरु सुधर्मास्वामी से पूर्वानुसार फिर आगे पूछते हैं–"हे भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तकृद्दशांग सूत्र के तीसरे वर्ग के आठवें अध्ययन के जो भाव कहे वे मैंने आपसे सुने। हे भगवन्! अब आगे नवमें अध्ययन के उन्होंने क्या भाव कहे हैं ? यह भी मुझे बताने की कृपा करें।" श्री सुधर्मा स्वामी–हे जम्बू! उस काल उस समय में द्वारिका नामक एक नगरी थी जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। एक दिन भगवान अरिष्टनेमि तीर्थङ्कर परम्परा से विचरते हुए उस नगरी में पधारे।

द्वारिका नगरी में बलदेव नाम के एक राजा थे। उनकी रानी का नाम 'धारिणी' था, वह अत्यन्त सुकोमल, सुन्दर एवं गुण सम्पन्न थी। एक समय सुकोमल शय्या पर सोई हुई उस धारिणी ने रात को स्वप्न में सिंह देखा। स्वप्न देखकर वह जग गई। उसी समय अपने पति के पास जाकर स्वप्न का वृत्तान्त उन्हें सुनाया। गर्भ–समय पूर्ण होने पर स्वप्न के अनुसार उनके यहाँ एक पुण्यशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। इसके जन्म, बाल्यकाल आदि का वर्णन गौतम कुमार के समान समझना। विशेष में उस बालक का नाम 'सुमुख' रक्खा गया। युवा होने पर पचास कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। विवाह में पचास–पचास करोड़ सोनैया आदि का दहेज उसे मिला। भगवान अरिष्टनेमि के किसी समय वहाँ पधारने पर उनका धर्मोपदेश सुनकर सुमुख कुमार उनके पास दीक्षित हो गया। दीक्षित होकर चौदह पूर्व का ज्ञान पढ़ा। बीस वर्ष तक श्रमण दीक्षा पाली। अन्त में गौतम कुमार की तरह संलेखणा यावत् संथारा करके शत्रुंजय पर्वत पर सिद्ध हुए। हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने अन्तकृद्दशा के तीसरे वर्ग के नवमें अध्ययन का उपर्युक्त भाव कहा।

।। इइ नवममज्झयणं–नवम अध्ययन समाप्त ।।

10-13 अज्झयणाणि-10-13 अध्ययन

मूल- **एवं दुम्मुहे वि, कूवदारए वि। दोण्हं वि बलदेवे पिया, धारिणी माया।10 11। दारुए वि एवं चेव, नवरं वसुदेवे पिया, धारिणी माया।12। एवं अणादिट्ठी वि, वसुदेवे पिया धारिणी माया।13। एवं खलु जम्बू! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।**

संस्कृत छाया- एवं दुर्मुखोऽपि कूपदारकोऽपि। द्वयोरपि बलदेवः पिता, धारिणी माता।10-11। दारुकः अपि एवमेव विशेषः वसुदेवः पिता, धारिणी माता।12। एवं अनादृष्टिः अपि वसुदेवः पिता धारिणी माता।13। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् (मुक्तिं) सम्प्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य त्रयोदशस्य अध्ययनस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः।

अन्वायार्थ-एवं दुम्मुहे वि, कूवदारए वि = इसी प्रकार दुर्मुख और कूपदारक, **दोण्हं वि बलदेवे पिया** = कुमार का वर्णन जानना चाहिये। दोनों के भी बलदेव पिता और, **धारिणी माया।10-11।** = धारिणी माता थी।10-11।, **दारुए वि एवं चेव** = दारुक भी इसी प्रकार है, **नवरं वसुदेवे पिया** = विशेष यह है कि वसुदेव पिता, **धारिणी माया।12।** = और धारिणी माता है।12।, **एवं अणादिट्ठी वि** = इसी प्रकार अनादृष्टि कुमार के भी, **वसुदेवे पिया धारिणी माया।13।** = वसुदेव पिता धारिणी माता है।13।, **एवं खलु जम्बू !** = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने,**अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं** = आठवें अंग अंतगडदशा, **तच्चस्स वग्गस्स तेरसमस्स** = सूत्र के तीसरे वर्ग के तेरहवें, **अज्झयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = अध्ययन का यह भाव कहा है।

भावार्थ-जिस प्रकार प्रभु ने नवमें अध्ययन का भाव फरमाया है, उसी प्रकार दसवें 'दुर्मुख' और ग्यारहवें 'कूपदारक' का भी वर्णन समझना। फर्क इतना सा है कि दोनों के 'बलदेव' महाराज पिता और 'धारिणी' माता थी, बाकी इनका सारा वर्णन 'सुमुख' के वर्णन के समान ही है।

इसी तरह बारहवें 'दारुक' और तेरहवें 'अनादृष्टि कुमार' का वर्णन भी समझना। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि इनके 'वसुदेव' पिता और 'धारिणी' माता थी।

श्री सुधर्मा-''इस तरह हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतकृद्दशा सूत्र के तीसरे वर्ग के एक से लेकर तेरह अध्ययनों का यह भाव फरमाया है।

।। इइ 10-13 अज्झयणाणि-10-13 अध्ययन समाप्त।।

।। इइ तइओ वग्गो-तीसरा वर्ग समाप्त।।

चउत्थो वग्गो–चतुर्थ वर्ग

सूत्र 1

मूल– **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

संस्कृत छाया– यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अंतकृद्दशानां तृतीयस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः। चतुर्थस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

अन्वायार्थ–जइ णं भंते ! = यदि हे भगवन् !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं** = आठवें अंग अंतकृद्दशासूत्र, **तच्चस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।** = के तीसरे वर्ग का यह अर्थ फरमाया है। **चउत्थस्स णं भंते ! वग्गस्स** = हे पूज्य !, **अंतगडदसाणं** = अंतकृद्दशा सूत्र के चतुर्थ वर्ग का, **समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?** = श्रमण भगवान यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ (भाव) कहा है ?

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–"हे भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अंतकृद्दशा के तीसरे वर्ग का जो वर्णन किया वह आपके श्रीमुख से सुना। अब अन्तकृद्दशा के चौथे वर्ग के हे पूज्य ! श्रमण भगवान ने क्या भाव दर्शाये हैं यह भी मुझे बताने की कृपा करें।"

मूल– **एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा–**

संस्कृत छाया– एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन चतुर्थस्य वर्गस्य अंतकृद्दशानां दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि तानि यथा–

अन्वायार्थ–एवं खलु जम्बू ! = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **चउत्थस्स वग्गस्स अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशासूत्र के चतुर्थ वर्ग के, **दस अज्झयणा पण्णत्ता तं जहा** = दस अध्ययन कहे हैं। जो इस प्रकार हैं।

भावार्थ–श्री सुधर्मा–"हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने अन्तकृद्दशा के चौथे वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं जो इस प्रकार हैं–

मूल– **जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेणे य वारिसेणे य।**
पज्जुण्ण संब अणिरुद्धे, सच्चणेमी य दढणेमी ।।1।।

संस्कृत छाया– जालिर्मयालिरुवयालि:, पुरुषसेनश्च वारिसेनश्च।
प्रद्युम्न: साम्बोऽनिरुद्ध: सत्यनेमिश्च दृढनेमि: ।।1।।

अन्वायार्थ–जालि मयालि उवयालि = 1. जालि, 2. मयालि, 3. उवयालि, **पुरिससेणे य वारिसेणे य।** = 4. पुरुषसेन और 5. वारिसेन। **पज्जुण्ण संब अणिरुद्धे** = 6. प्रद्युम्न, 7. साम्ब, 8. अनिरुद्ध, **सच्चणेमी य दढणेमी** = 9. सत्यनेमि और 10. दृढनेमि ।।1।।

भावार्थ–1. जालि कुमार, 2. मयालि कुमार, 3. उवयालि कुमार, 4. पुरुषसेन कुमार, 5. वारिसेन कुमार, 6. प्रद्युम्न कुमार, 7. शाम्ब कुमार, 8. अनिरुद्ध कुमार, 9. सत्यनेमि कुमार, 10. दृढ़नेमि कुमार ।।1।।

सूत्र 2

मूल– **जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था, जहा पढमे। कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ ।।2।।**

संस्कृत छाया– यदि भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन चतुर्थस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन क: अर्थ: प्रज्ञप्त: ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नाम नगरी अभवत्, यथा प्रथमे। कृष्ण: वासुदेव: आधिपत्यं यावत् विहरति ।।2।।

अन्वायार्थ–जइणं भंते ! = हे भगवन् ! यदि, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **चउत्थस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता।** = चतुर्थ वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं। **पढमस्स णं भंते !** = तो हे भगवन् ! प्रथम, **अज्झयणस्स समणेणं** = अध्ययन का श्रमण यावत्, **जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?** = मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? **एवं खलु जम्बू !** = इस प्रकार हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **बारवई नामं नयरी होत्था** = द्वारिका नाम

की नगरी थी, **जहा पढमे =** जैसे प्रथम अध्याय में वर्णन किया गया है उसी प्रकार। **कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ =** कृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य करते थे ।।2 ।।

भावार्थ–श्री जम्बू–''हे भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग में दस अध्ययन कहे हैं। तो उनमें से हे पूज्य ! प्रथम अध्ययन श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू ! उस काल व उस समय में द्वारिका नाम की एक नगरी थी, जिसका वर्णन प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में किया जा चुका है। श्री कृष्ण वासुदेव वहाँ राज्य कर रहे थे।'' ''उस द्वारिका नगरी में महाराज 'वसुदेव' और रानी 'धारिणी' निवास करते थे।

रानी धारिणी अत्यन्त सुकुमार, सुन्दर और सुशीला थी। एक समय कोमल सेज पर सोती हुई उस धारिणी रानी ने सिंह का स्वप्न देखा। उस स्वप्न का वृत्तान्त अपने पतिदेव को सुनाया।

सूत्र 3

मूल– **तत्थ णं बारवईए नयरीए वसुदेवे राया, धारिणी देवी। वण्णओ। जहा गोयमो, नवरं जालिकुमारे पण्णासओ दाओ। बारसंगी सोलस्स वासा परियाओ सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे। एवं मयालि, उवयालि, पुरिससेणे, वारिसेणे य ।।3।।**

संस्कृत छाया– तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां वसुदेव: राजा धारिणी देवी। वर्ण्य:। यथा गौतम:, विशेषस्तु जालिकुमार: पंचाशत् दाय:। द्वादशांगी, षोडश वर्षाणि पर्याय: शेषं यथा गौतमस्य यावत् शत्रुंजये सिद्ध:। एवं मयालि: उवयालि: पुरुषसेन: वारिसेनश्च ।।3।।

अन्वायार्थ–तत्थ णं बारवईए नयरीए = वहाँ द्वारिका नगरी में, **वसुदेवे राया, धारिणी देवी =** वसुदेव राजा धारिणी रानी। **वण्णओ। =** जो कि वर्णन योग्य थे, **जहा गोयमो =** गौतम कुमार के समान, **नवरं जालिकुमारे =** विशेष यह कि जालिकुमार ने, **पण्णासओ दाओ =** युवावस्था प्राप्त कर पचास कन्याओं से विवाह किया तथा पचास करोड़ का दहेज मिला। **बारसंगी सोलस्स वासा परियाओ =** जालि मुनि ने भी बारह अंगों का ज्ञान सीखा, सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन किया, **सेसं जहा गोयमस्स जाव सेत्तुंजे सिद्धे =** शेष सब जैसे गौतम कुमार की तरह यावत् शत्रुञ्जय पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए, **एवं मयालि, उवयालि =** इसी प्रकार मयालि कुमार, **पुरिससेणे, वारिसेणे य =** उवयालि कुमार, पुरुषसेन और वारिसेन का वर्णन जानना चाहिये ।।3।।

भावार्थ–इसके बाद पूर्व में वर्णित गौतम कुमार की तरह उनके एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम 'जालि कुमार' रखा गया। जब वह युवावस्था को प्राप्त हुआ, तब उसका विवाह पचास कन्याओं के साथ किया गया और उन्हें पचास-पचास करोड़ सौनेया आदि का दहेज मिला।

एक समय भगवान अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। उनकी अमोघ वाणी द्वारा धर्मोपदेश सुनकर जालि कुमार को संसार से विरक्ति हो गई। माता-पिता की आज्ञा लेकर उन्होंने अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास अर्हत दीक्षा अंगीकार की। उन्होंने बारह अंगों का अध्ययन किया और 16 वर्ष पर्यन्त श्रमण दीक्षा पर्याय पाली।

फिर गौतम कुमार की तरह इन्होंने भी संलेखना आदि करके शत्रुञ्जय पर्वत पर एक मास का संथारा किया और सब कर्मों से मुक्त होकर सिद्ध हुए।

इसी प्रकार मयालि कुमार 2, उवयालि कुमार 3, पुरुषसेन कुमार 4, और वारिसेन कुमार 5, के जीवन का वर्णन भी समझना चाहिये। ये सभी 'वसुदेवजी' के पुत्र एवं 'धारिणी' रानी के अंगजात थे।।3।।

मूल- **एवं पज्जुण्णे वि नवरं कण्हे पिया, रुप्पिणी माया। एवं संबे वि नवरं जंबवई माया। एवं अणिरुद्धे वि नवरं पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया। एवं सच्चणेमी, नवरं समुद्दविजए पिया सिवा माया। एवं दढणेमी वि। सव्वे एगगमा चउत्थस्स वग्गस्स निक्खेवओ।**

संस्कृत छाया- एवं प्रद्युम्नोऽपि, विशेषः कृष्णः पिता रुक्मिणी माता। एवं साम्बः अपि विशेषः जाम्बवती माता। एवं अनिरुद्धोऽपि विशेषः प्रद्युम्नः पिता वैदर्भी माता। एवं सत्यनेमिः विशेषः समुद्रविजयः पिता शिवा माता एवं दृढनेमिरपि। सर्वाणि (अध्ययनानि) एकगमानि चतुर्थस्य वर्गस्य निक्षेपकः।

अन्वायार्थ-एवं पज्जुण्णे वि = इसी प्रकार छठे प्रद्युम्न कुमार का वर्णन भी जानना चाहिए। **नवरं कण्हे पिया रुप्पिणी माया =** विशेष-कृष्ण पिता और रुक्मिणी देवी माता है। **एवं संबे वि नवरं जंबवई माया =** इसी प्रकार साम्ब कुमार भी, विशेष-जाम्बवती माता है। **एवं अणिरुद्धे वि नवरं =** ये दोनों श्री कृष्ण के पुत्र थे। इसी प्रकार अनिरुद्धकुमार का भी, **पज्जुण्णे पिया, वेदब्भी माया =** है विशेष यह है कि प्रद्युम्न पिता और वैदर्भी उसकी माता है। **एवं सच्चणेमी, नवरं =** इसी प्रकार वर्णन सत्यनेमि कुमार का है, **समुद्दविजए पिया सिवा माया =** विशेष है-समुद्र विजय पिता और शिवा देवी माता। **एवं दढणेमी वि =** इसी प्रकार दृढ़नेमि का हाल भी, समझना। **सव्वे एगगमा =** ये सभी अध्ययन एक सरीखे हैं। **चउत्थस्स वग्गस्स निक्खेवओ =** इस प्रकार हे जम्बू! चौथे, वर्ग का प्रभु ने यह भाव कहा है।

भावार्थ-इसी तरह छठे प्रद्युम्न कुमार का जीवन चरित्र भी जानना चाहिये। केवल अन्तर इतना जानना कि इनके 'श्री कृष्ण' पिता और 'रुक्मिणी' माता थी।

ऐसे ही सातवें शाम्ब कुमार का जीवन वर्णन समझना। केवल अन्तर इतना कि इनके पिता 'श्री कृष्ण' एवं माता 'जाम्बवती' थी।

इसी प्रकार आठवें अध्ययन में 'अनिरुद्ध कुमार' का जीवन वर्णन समझना चाहिये। इनके पिता 'प्रद्युम्न कुमार' और माता 'वैदर्भी' थी।

ऐसे ही नवमें अध्ययन में 'सत्यनेमि कुमार' और दशवें अध्ययन में 'दृढ़नेमि कुमार' का वर्णन समझना चाहिये। इनमें विशेष यह कि 'समुद्र विजय' जी इनके पिता थे और 'शिवा' इनकी माता थी।

ये सब अध्ययन समान वर्णन वाले हैं यह चौथे वर्ग का निक्षेपक है।

श्री सुधर्मा–''इस प्रकार हे जम्बू! दस अध्ययनों वाले इस चौथे वर्ग का श्रमण यावत् मोक्ष प्राप्त प्रभु ने यह अर्थ कहा है।''

टिप्पणी–निक्खेवओ (निक्षेपक)–उपसंहारक वाक्य। यह शब्द इस भाव का द्योतक है कि प्रभु महावीर ने इस अध्ययन अथवा वर्ग का यह अर्थ कहा है।

।। इइ चउत्थ वग्गो–चतुर्थ वर्ग समाप्त।।

पंचमो वग्गो-पंचम वर्ग

पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते, पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा-

पउमावई य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य।
जंबवई सच्चभामा रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता य।।

जइणं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं पंचमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

संस्कृत छाया- यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन चतुर्थस्य वर्गस्य अयमर्थः प्रज्ञप्तः, पंचमस्य भदन्त ! वर्गस्य अन्तकृद्दशानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन पंचमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तानि यथा-

पद्मावती च गौरी, गांधारी लक्ष्मणा सुषीमा च।
जाम्बवती सत्यभामा रुक्मिणी मूलश्रीः मूलदत्ता च।।

यदि खलु भदंत ? श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन पंचमस्य वर्गस्य दश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कोऽर्थः प्रज्ञप्तः ?

अन्वायार्थ-जइ णं भंते ! समणेणं = यदि भगवन् ! श्रमण भगवान, **जाव संपत्तेणं** = यावत्

मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **चउत्थस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = चौथे वर्ग का यह भाव कहा है, तो, **पंचमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं** = हे भगवन् ! अन्तकृद्दशासूत्र के पंचमवर्ग का श्रमण, **जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?** = यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **समणेणं** = क्या अर्थ कहा है ?

एवं खलु जम्बू ! = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने, **पंचमस्स वग्गस्स दस** = पंचम वर्ग के दस, **अज्झयणा पण्णत्ता** = अध्ययन कहे हैं, **तं जहा–** = वे इस प्रकार हैं–, **पउमावई य गोरी** = पद्मावती, गौरी, **गंधारी लक्खणा सुसीमा य** = गांधारी, लक्ष्मणा और सुसीमा, **जंबवई सच्चभामा** = जाम्बवती, सत्यभामा, **रुप्पिणी मूलसिरी मूलदत्ता य** = रुक्मिणी मूलश्री और मूलदत्ता। **जइणं भंते ! समणेणं** = यदि हे भगवन् ! श्रमण, **जाव संपत्तेणं** = यावत् मुक्ति को प्राप्त प्रभु ने, **पंचमस्स वग्गस्स दस** = पंचम वर्ग के दस, **अज्झयणा पण्णत्ता** = अध्ययन कहे हैं। **पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स** = तो हे भगवन् ! प्रथम अध्ययन का, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् संप्राप्त प्रभु ने, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = क्या अर्थ कहा है ?

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–"हे भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने चौथे वर्ग का यह भाव फरमाया है तो अन्तकृद्दशा के पंचम वर्ग का श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ?"

सूत्र 2

मूल– **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नामं नयरी होत्था, जहा पढमे, जाव कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं जाव विहरइ। तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नामं देवी होत्था, वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे जाव विहरइ।**

कण्हे णिग्गए जाव पज्जुवासइ। तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठहिअआ जहा देवई जाव पज्जुवासइ।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए देवीए जाव धम्मकहा, परिसा पडिगया। तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–इमीसे णं भन्ते ! बारवईए नयरीए दुवालस–जोयण आयामाए नवजोयण–वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोग भूयाए किंमूलए विणासे भविस्सइ? कण्हाए ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा ! इमीसे

बारवईए नयरीए दुवालसजोयण आयामाए नवजोयण वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

संस्कृत छाया– एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नामा नगरी आसीत्, यथा प्रथमे, यावत् कृष्णः वासुदेवः आधिपत्यं यावत् विहरति। तस्य खलु कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावती नाम देवी आसीत्, वर्ण्या। तस्मिन् काले तस्मिन् समये। अर्हन् अरिष्टनेमिः समवसृतः यावत् विहरति।

कृष्णः निर्गतः यावत् पर्युपासते। ततः खलु सा पद्मावती देवी अस्याः कथायाः लब्धार्था सती हृष्टतुष्टहृदया यथा देवकी यावत् पर्युपासते।

ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णस्य वासुदेवस्य पद्मावत्याः देव्याः यावत् धर्मकथा (कथिता) परिषद् प्रतिगता। ततः खलु कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वंदते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्–अस्याः खलु भदन्त ! द्वारावत्याः नगर्याः द्वादश–योजनायामायाः नवयोजन–विस्तीर्णायाः यावत् प्रत्यक्षं देवलोक–भूतायाः किंमूलो विनाशो भविष्यति ? हे कृष्ण ! अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवमेवमवदत्–एवं खलु कृष्ण ! अस्याः द्वारावत्याः नगर्याः द्वादशयोजनायामायाः नवयोजनविस्तृतायाः यावत् प्रत्यक्षं देवलोकभूतायाः सुराग्निद्वैपायनमूलकः विनाशः भविष्यति।

अन्वायार्थ–एवं खलु जंबू ! = इस प्रकार हे जम्बू !, **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस काल उस समय में, **बारवई नामं नयरी होत्था =** द्वारिका नाम की नगरी थी, **जहा पढमे =** जैसे पहले अध्याय में कहा है, **जाव कण्हे वासुदेवे =** यावत् वहाँ कृष्ण वासुदेव, **आहेवच्चं जाव विहरइ =** राज्य कर रहे थे। **तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स =** उस कृष्ण वासुदेव की, **पउमावई नामं देवी होत्था =** पद्मावती नाम की रानी थी, **वण्णओ। =** जो वर्णन करने योग्य थी। **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस काल उस समय में, **अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे =** अर्हन् अरिष्टनेमि द्वारिका नगरी में पधारते यावत् (संयम तप से आत्मा को भावित करते हुए), **जाव विहरइ =** विचरने लगे।

कण्हे णिग्गए जाव पज्जुवासइ = श्री कृष्ण वंदन को निकले यावत् वे श्री नेमिनाथ भगवान की सेवा करने लगे। **तए णं सा पउमावई देवी =** उस समय पद्मावती देवी ने, **इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी =** भगवान के पधारने की बात सुनी और, **हट्ठतुट्ठहिअआ जहा देवई जाव पज्जुवासइ =** मन में बहुत

प्रसन्न हुई तथा, **जहा देवई जाव पज्जुवासइ** = जैसे देवकी महारानी वंदन करने गई वैसे ही पद्मावती भी यावत् श्री नेमिनाथ भगवान की सेवा करने लगी, **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = तब अरिहंत अरिष्टनेमी ने, **कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए देवीए जाव धम्मकहा परिसा पडिगया** = कृष्ण वासुदेव और पद्मावती देवी, आदि के सम्मुख धर्म कथा कही, सभासद् कथा सुनकर चले गये। **तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ** = तदनन्तर कृष्ण वासुदेव भगवान श्री नेमिनाथ को वन्दना नमस्कार करते हैं, **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी** = वंदना नमस्कार करके इस प्रकार बोले–, **इमीसे णं भन्ते !** = हे पूज्य ! इस, **बारवईए नयरीए दुवालस–जोयण आयामाए नवजोयण–वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोग भूयाए** = बारह योजन लम्बी, नौ योजन फैली हुई प्रत्यक्ष देवलोक के समान द्वारिका नगरी का, **किंमूलए विणासे भविस्सइ ?** = किस कारण से विनाश होगा ?, **कण्हाए ! अरहा अरिट्ठणेमी** = कृष्णादि को सम्बोधित कर भगवान अरिष्टनेमि ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी** = कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **एवं खलु कण्हा ! इमीसे** = हे कृष्ण ! निश्चय ही इस, **बारवईए नयरीए दुवालसजोयण आयामाए नवजोयण वित्थिण्णाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए** = बारह योजन लम्बी तथा नौ योजन फैली हुई प्रत्यक्ष देवलोक के समान द्वारिका नगरी का, **सुरग्गिदीवायणमूलाए** = सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कारण, **विणासे भविस्सइ** = विनाश होगा।

भावार्थ–अरिहंत अरिष्टनेमि यावत् तीर्थङ्कर परम्परा से विचरते हुए द्वारिका नगरी में पधारे। श्री कृष्ण वंदन–नमस्कार करने हेतु अपने राज प्रासाद से निकल कर प्रभु के पास पहुँचे यावत् प्रभु अरिष्टनेमि की पर्युपासना करने लगे।

उस समय पद्मावती देवी ने भगवान के आने की खबर सुनी तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह भी देवकी महारानी के समान धर्मरथ पर आरूढ़ होकर भगवान को वंदन करने गई। यावत् नेमिनाथ की पर्युपासना करने लगी। अरिहंत अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती देवी और जनपरिषद् को धर्मोपदेश दिया, धर्मकथा कही, धर्मोपदेश एवं धर्मकथा सुनकर जन–परिषद् अपने–अपने घर लौट गई।

तब कृष्ण वासुदेव ने भगवान नेमिनाथ को वंदन–नमस्कार करके उनसे इस प्रकार पृच्छा की–''हे भगवन् बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी यावत् साक्षात् देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश किस कारण से होगा ?''

कृष्ण आदि को सम्बोधित करते हुए अरिहंत अरिष्टनेमि प्रभु ने इस प्रकार उत्तर दिया–''हे कृष्ण ! निश्चय ही बारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान इस द्वारिका नगरी का विनाश मदिरा (सुरा), अग्नि और द्वैपायन ऋषि के कोप के कारण से होगा।''

सूत्र 3

मूल– **तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे अज्झत्थिए समुप्पण्णे–धण्णा णं ते जालि–मयालि–उवयालि पुरिससेण–वारिसेण–पज्जुण्ण–संब–अणिरुद्ध–दढणेमि सच्चणेमिप्पभियओ कुमारा जे णं चिच्चा हिरण्णं जाव परिभाइत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुंडा जाव पव्वइया। अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए। नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए। कण्हाए! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–से नूणं कण्हा! तव अयम् अज्झत्थिए समुप्पण्णे–''धण्णा णं ते जालि जाव पव्वइत्तए। से नूणं कण्हा! अयमट्ठे समट्ठे ?'' 'हंता अत्थि' ।।3 ।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु कृष्णस्य वासुदेवस्य अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके एतदर्थं श्रुत्वा अयमेवंरूपः अध्यवसायः समुत्पन्नः– धन्याः खलु ते जालिः, मयालिः उपयालिः, पुरुषसेनः, वारिसेन, प्रद्युम्नः, साम्बः, अनिरुद्धः, दृढनेमिः सत्यनेमिः प्रभृतयः कुमाराः ये खलु त्यक्त्वा हिरण्यं यावत् परिभाज्य अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके मुंडाः यावत् प्रव्रजिताः। अहं खलु अधन्यः अकृतपुण्यः राज्ये च यावत् अन्तःपुरे च मानुष्येषु च कामभोगेषु मूर्च्छितः (अस्मि) न संचरामि अर्हतः अरिष्टनेमेरन्तिके यावत् प्रव्रजितुम्। कृष्ण ! (इति संबोध्य) अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवम् एवमवदत् तत् नूनं कृष्ण ! तव अयम् अध्यवसायः समुत्पन्नः–धन्याः खलु ते जालि यावत् प्रव्रजितुम्। तत् नूनं कृष्ण ! अयमर्थः समर्थः ? हंत अस्ति ।।3 ।।

अन्वायार्थ–तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स = तब कृष्ण वासुदेव को, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए** = भगवान अरिष्टनेमि के पास से (द्वारिका के नाश रूप), **एयमट्ठं सोच्चा अयमेयारूवे** = इस अर्थ को सुनकर इस प्रकार का मानसिक, **अज्झत्थिए समुप्पण्णे–** = अध्यवसाय उत्पन्न हुआ–, **धण्णा णं ते जालि–मयालि–उवयालि** = धन्य हैं वे जालि, मयालि, उवयालि, **पुरिससेण–वारिसेण–पज्जुण्ण–** = पुरुषसेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, **संब–अणिरुद्ध–दढणेमि** = साम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि, **सच्चणेमिप्पभियओ कुमारा** = सत्यनेमी आदि कुमार, **जे णं चिच्चा हिरण्णं** = जिन्होंने स्वर्णादि सम्पत्ति को त्यागकर, **जाव परिभाइत्ता** = यावत् देयभाग देकर, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं** = भगवान अरिष्टनेमि के पास, **मुंडा**

जाव पव्वइया। = मुंडित हुए यावत् दीक्षा ग्रहण की। **अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे =** मैं निश्चय ही अधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ, **रज्जे य जाव अंतेउरे य =** इसलिए कि राज्य, अन्त:पुर, **माणुस्सएसु य कामभोगेसु =** और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों में, **मुच्छिए =** मैं मूर्छित हूँ। **नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए जाव पव्वइत्तए =** पूज्य भगवान अरिष्टनेमि के पास, प्रव्रज्या लेने के लिये नहीं आ रहा हूँ। **कण्हाए ! अरहा अरिट्ठणेमी =** हे कृष्ण ! (यह सम्बोधन कर) भगवान अरिष्टनेमि ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी– =** कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **से नूणं कण्हा ! तव अयम् =** अवश्य ही हे कृष्ण ! तुझे, **अज्झत्थिए समुप्पण्णे– =** यह मानसिक विचार उत्पन्न हुआ है, **''धण्णा णं ते जालि जाव पव्वइत्तए। =** कि जालि आदि कुमार धन्य हैं, जिन्होंने मुनिव्रत ग्रहण किया है। मैं अधन्य हूँ मुनिव्रत नहीं ले पा रहा हूँ, **से नूणं कण्हा ! अयमट्ठे समट्ठे?'' =** हे कृष्ण! क्या यह बात सही है? **'हंता अत्थि' =** श्री कृष्ण ने कहा–हाँ भगवन् ठीक है ।।3।।

भावार्थ–अर्हन्त अरिष्टनेमि के श्री मुख से द्वारिका नगरी के विनाश का कारण जानकर श्रीकृष्ण वासुदेव के मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि वे जालि, मयालि, उवयालि, पुरिससेन, वारिसेन, प्रद्युम्न, शाम्ब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि और सत्यनेमि प्रभृति कुमार धन्य हैं जो हिरण्यादि संपदा और परिजन छोड़कर यावत् देयभाग देकर, नेमिनाथ प्रभु के पास मुंडित हुए यावत् प्रव्रजित हो गये। मैं अधन्य हूँ, अकृत-पुण्य हूँ इसलिये कि राज्य, अन्त:पुर और मनुष्य सम्बन्धी काम, भोगों में मूर्च्छित हूँ, इन्हें त्यागकर भगवान नेमिनाथ के पास प्रव्रज्या लेने में समर्थ नहीं हूँ।

भगवान नेमिनाथ प्रभु ने अपने ज्ञान बल से कृष्ण वासुदेव के मन में आये इन विचारों को जानकर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–''निश्चय ही हे कृष्ण ! तुम्हारे मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ–''वे जालि, मयालि आदि कुमार धन्य हैं जिन्होंने धन-वैभव एवं स्वजनों को त्यागकर मुनिव्रत ग्रहण किया और मैं अधन्य हूँ अकृतपुण्य हूँ जो राज्य, अन्त:पुर और मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों में ही गृद्ध हूँ। मैं प्रभु के पास प्रव्रज्या नहीं ले सकता।

कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा–हे कृष्ण ! क्या यह बात सही है ?'' श्री कृष्ण–''हाँ भगवन् ! आपने जो कहा वह सभी यथार्थ है। आप सर्वज्ञ हैं। आप से कोई बात छिपी हुई नहीं है।''

सूत्र 4

मूल– **''तं नो खलु कण्हा ! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइस्संति।'' से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ न एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति ? कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा**

पुव्वभवे नियाणकडा, से एएणट्ठेणं कण्हा एवं वुच्चइ–न एवं भूयं जाव पव्वइस्संति।।4।।

संस्कृत छाया– तत् न खलु कृष्ण ! एवं भूतं वा भव्यं भविष्यति वा यत् न वासुदेवाः त्यक्त्वा हिरण्यं यावत् प्रव्रजिष्यन्ति। अथ केनार्थेन भदन्त ! एवमुच्यते न एवं भूतं वा यावत् प्रव्रजिष्यन्ति ? कृष्ण ! अर्हन् अरिष्टनेमी कृष्णं वासुदेवम् एवमवदत्–एवं खलु कृष्ण ! सर्वेऽपि च खलु वासुदेवाः पूर्वभवे कृतनिदानाः, अथ एतदर्थेन कृष्ण ! एवमुच्यते–न एवं भूतं यावत् प्रव्रजिष्यन्ति।।4।।

अन्वायार्थ–''तं नो खलु कण्हा ! एवं भूयं वा = हे कृष्ण ! ऐसा न हुआ है, **भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं =** होता है और न होगा कि, **वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं जाव =** वासुदेव हिरण्यादि छोड़कर, **पव्वइस्संति।'' =** यावत् दीक्षा ग्रहण करें। **से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ =** (श्री कृष्ण ने पूछा)–भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि, **न एवं भूयं वा जाव पव्वइस्संति ? =** ऐसा कभी नहीं हुआ और कभी होगा भी नहीं कि यावत् वासुदेव प्रव्रज्या ग्रहण करेंगे ? **कण्हाइ ! अरहा अरिट्ठणेमी =** श्री कृष्ण को सम्बोधित कर भगवान ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी– =** कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा =** हे कृष्ण ! निश्चय ही सब वासुदेव, **पुव्वभवे नियाणकडा =** पूर्व जन्म में निदान किये हुए होते हैं, **से एएणट्ठेणं कण्हा एवं वुच्चइ–=** इसलिये कृष्ण ! ऐसा कहा जाता है–, **न एवं भूयं जाव पव्वइस्संति =** कभी ऐसा हुआ नहीं कि यावत् वासुदेव प्रव्रज्या–दीक्षा ग्रहण करेंगे।।4।।

भावार्थ–प्रभु ने फिर कहा–''हे कृष्ण ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव अपने भव में धन–धान्य–स्वर्ण आदि सम्पत्ति छोड़कर मुनिव्रत ले ले। वासुदेव दीक्षा लेते ही नहीं, ली नहीं एवं भविष्य में कभी लेंगे भी नहीं।''

श्री कृष्ण–''भगवन् ! ऐसा क्यों कहा जाता है कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं। इसका क्या कारण है ?''

अर्हन्त नेमिनाथ ने कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार उत्तर दिया–''हे कृष्ण ! निश्चय ही सभी वासुदेव पूर्व भव में निदान कृत (नियाणा करने वाले) होते हैं, इसलिए मैं ऐसा कहता हूँ ! कि ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि वासुदेव कभी अपनी सम्पत्ति को छोड़कर प्रव्रज्या अंगीकार करें।''

सूत्र 5

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–अहं णं भंते ! इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं**

उववज्जिस्सामि ? तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गिदीवायण–कोवनिद्दड्ढाए अम्मापिइणियगविप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवर–पायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थ–पच्छाइयसरीरे जरकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड–विप्पमुक्केणं इसुणा वामे पाए विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए जाव उववज्जिहिसि।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः अर्हन्तम् अरिष्टनेमिम् एवमवादीत्–अहं खलु भदन्त ! इतः कालमासे कालं कृत्वा कुत्र गमिष्यामि ? कुत्र च उत्पत्स्ये ? ततः खलु अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवम् एवम् अवादीत्–एवं खलु कृष्ण ! त्वं द्वारावत्यां नगर्यां सुराग्निद्वैपायन–कोप–निर्दग्धायाम् अम्बापितृकनिजकविप्रहीनः रामेण बलदेवेन सार्द्धं दक्षिणवेलाया अभिमुखे युधिष्ठिरप्रमुखानां पंचानां पाण्डवानां पाण्डुराजपुत्राणां पार्श्वं पांडुमथुरां संप्रस्थितः कोशाम्बवनकानने न्यग्रोधवरपादपस्य अधः पृथ्वीशिलापट्टके पीतवस्त्रप्रच्छादितशरीरः जरकुमारेण तीक्ष्णेन कोदंड–विप्रमुक्तेन इषुणा वामे पादे विद्धः सन् कालमासे कालं कृत्वा तृतीयस्यां बालुकाप्रभायां पृथिव्यां यावत् उत्पत्स्यसे।

अन्वायार्थ–तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं = तब कृष्ण वासुदेव ने भगवान, **अरिट्ठणेमिं एवं वयासी–** = अरिष्टनेमि को इस प्रकार निवेदन किया–, **अहं णं भंते ! इओ कालमासे** = हे भगवन् ! मैं यहाँ से काल के समय, **कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ?** = काल करके कहाँ जाऊँगा ?, **कहिं उववज्जिस्सामि ?** = तथा कहाँ उत्पन्न होऊँगा ?, **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी** = तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–** = कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार कहा–, **एवं खलु कण्हा ! तुमं** = इस प्रकार हे कृष्ण ! तुम, **बारवईए नयरीए सुरग्गिदीवायण–कोव–** = सुरा, अग्नि और द्वैपायन के क्रोध से द्वारिका, **णिद्दड्ढाए अम्मापिइणियगविप्पहूणे** = नगरी के जलने पर माता–पिता और स्वजनों से वियुक्त होकर, **रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं** = राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र तट, **अभिमुहे**

जोहिट्ठिल्लपामोक्खाणं = की ओर युधिष्ठिर आदि, **पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं** = पांडुराज के पुत्र पाँचों पाण्डवों के, **पासं पंडुमहुरं संपत्थिए** = पास पांडुमथुरा को जाते हुए, **कोसंबवणकाणणे नग्गोहवर-पायवस्स** = कोशांबवन-उद्यान में वटवृक्ष, **अहे पुढविसिलापट्टए** = के नीचे पृथ्वी शिला के पट्ट पर, **पीयवत्थपच्छाइयसरीरे** = पीताम्बर ओढ़े हुए (सोओगे), **जरकुमारेणं** = तब जराकुमार के द्वारा, **त्तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं इसुणा** = धनुष से छोड़े हुए तीक्ष्ण बाण से, **वामे पाए विद्धे समाणे** = बायें पैर में बींधे हुए होकर, **कालमासे कालं किच्चा तच्चाए** = काल के समय काल करके तीसरी, **वालुयप्पभाए पुढवीए जाव उववज्जिहिसि** = बालुका प्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होओगे।

भावार्थ-तब कृष्ण वासुदेव अर्हन्त अरिष्टनेमि को इस प्रकार बोले-''हे भगवन् ! यहाँ से काल के समय काल करके मैं कहाँ जाऊँगा, कहाँ उत्पन्न होऊँगा ?''

इस पर अर्हन्त नेमिनाथ ने कृष्ण वासुदेव को इस तरह कहा-''हे कृष्ण ! तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण इस द्वारिका नगरी के जल कर नष्ट हो जाने पर और अपने माता-पिता एवं स्वजनों का वियोग हो जाने पर रामबलदेव के साथ दक्षिणी समुद्र के तट की ओर पाण्डुराजा के पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचों पाण्डवों के साथ पाण्डु मथुरा की ओर जाओगे। रास्ते में विश्राम लेने के लिए कौशाम्ब वन-उद्यान में अत्यन्त विशाल एक वटवृक्ष के नीचे, पृथ्वी शिलापट्ट पर पीताम्बर ओढ़कर तुम सो जाओगे। उस समय मृग के भ्रम में जराकुमार द्वारा चलाया हुआ तीक्ष्ण तीर तुम्हारे बाएँ पैर में लगेगा। इस तीक्ष्ण तीर से बिद्ध होकर तुम काल के समय काल करके वालुकाप्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में जन्म लोगे।

सूत्र 6

मूल- **तए णं कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहय जाव झियाइ। ''कण्हाइ !'' अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-''मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय जाव झियाहि। एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबूद्दीवे भारहेवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि। तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलपरियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि।''**

संस्कृत छाया- ततः कृष्णो वासुदेवः अर्हतः अरिष्टनेमेः अंतिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य अपहतो यावत् ध्यायति। कृष्ण ! अर्हन् अरिष्टनेमिः कृष्णं वासुदेवं एवमवदत्-मा खलु

त्वं देवानुप्रिय ! अवहत यावत् ध्यायस्व । एवं खलु त्वं देवानुप्रिय ! तृतीयस्याः पृथिव्याः उज्ज्वलिताया अनन्तरं उद्वृत्य इहैव जम्बूद्वीपे भारते वर्षे आगमिष्यन्त्याम् उत्सर्पिण्यां पुण्ड्रेषु जनपदेषु शतद्वारे (नगरे) द्वादशमो अममो नाम अर्हन् भविष्यसि । तत्र त्वं बहूनि वर्षाणि केवलपर्यायं पालयित्वा सेत्स्यसि ।

अन्वायार्थ–तए णं कण्हे वासुदेवे = तब श्री कृष्ण वासुदेव, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए** = भगवान अरिष्टनेमि के पास से, **एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म** = इस बात को सुनकर एवं धारण कर, **ओहय जाव झियाइ ।** = उदास मन होकर आर्त्तध्यान करने लगे । ''**कण्हाइ !**'' **अरहा अरिट्ठणेमी** = कृष्ण को सम्बोधित कर भगवान अरिष्टनेमि ने, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–** = कृष्ण वासुदेव को ऐसे कहा, ''**मा णं तुमं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय ! तुम, **ओहय जाव झियाहि ।** = उदास होकर आर्त्तध्यान मत करो । **एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया !** = निश्चय ही हे देवानुप्रिय !, **तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ** = तीसरी पृथ्वी की उत्कट वेदना के, **अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबूद्दीवे भारहेवासे** = अनन्तर (वहाँ से) निकलकर यहाँ ही जम्बूद्वीप में भारतवर्ष में, **आगमिस्साए उस्सप्पिणीए** = आने वाली उत्सर्पिणी काल में, **पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे भविस्ससि** = पौण्ड्र जनपद में शतद्वार नगर में, **बारसमे अममे णामं अरहा** = बारहवें अमम नामक अर्हन्त बनोगे । **तत्थ तुमं बहूइं वासाइं** = वहाँ पर बहुत वर्षों तक, **केवलपरियायं पाउणित्ता सिज्झिहिसि**'' = केवलीपर्याय का पालन कर सिद्ध बुद्ध मुक्त बनोगे ।

भावार्थ–प्रभु के श्रीमुख से अपने आगामी भव की यह बात सुनकर कृष्ण वासुदेव खिन्न मन होकर आर्त्तध्यान करने लगे । तब अर्हन्त अरिष्टनेमि पुनः इस प्रकार बोले–''हे देवानुप्रिय ! तुम खिन्नमन होकर आर्त्तध्यान मत करो । निश्चय से हे देवानुप्रिय ! कालान्तर में तुम तीसरी पृथ्वी से निकल कर इसी जंबूद्वीप के भरत क्षेत्र में आने वाले उत्सर्पिणी काल में पुंड्र जनपद के शतद्वार नाम के नगर में 'अमम' नाम के बारहवें तीर्थङ्कर बनोगे । वहाँ बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर तुम सिद्ध–बुद्ध–मुक्त होओगे ।

सूत्र 7

मूल– **तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ० अप्फोडइ, अप्फोडित्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवइं छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए, अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए**

सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्था-भिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-''गच्छ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए सिंघाडग जाव उग्घोसेमाणा एवं वयह-''एवं खलु देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए दुवालस जोयणआयामाए जाव पच्चक्खं देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूले विणासे भविस्सइ तं जो णं देवाणुप्पिया इच्छइ बारवईए, नयरीए राया वा, जुवराया वा ईसरे, तलवरे, माडंबिए, कोडुंबिए, इब्भे, सेट्ठी वा, देवी वा कुमारो वा, कुमारी वा, अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ, पच्छाउरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ, महया इड्ढीसक्कारसमुदएण य से णिक्खमणं करेइ, दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसित्ता मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।

संस्कृत छाया- ततः सः कृष्णः वासुदेवः अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके एतदर्थं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्ट० आस्फोटयति, आस्फोट्य वल्गाति, वल्गित्वा त्रिपदीं छिनत्ति, छित्वा सिंहनादं करोति, कृत्वा अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा तदेव आभिषेक्यं हस्तिरत्नं दूरोहति, दूरुह्य यत्रैव द्वारावती नगरी यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागतः आभिषेक्यहस्तिरत्नात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव बाह्या उपस्थानशाला यत्रैव स्वकं सिंहासनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य सिंहासनवरे पौरस्त्याभिमुखः निषीदति, निषद्य कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वा एवमवदत्-गच्छत खलु यूयं हे देवानुप्रियाः ! द्वारावत्यां नगर्यां शृंगाटक यावत् महापथेषु उद्घोषयन्तः एवं वदत-एवं खलु देवानुप्रियाः ! द्वारावत्याः नगर्याः द्वादश-योजनायामायाः यावत् प्रत्यक्षं देवलोकभूतायाः सुराग्निर्द्वैपायनमूलः विनाशः भविष्यति तत् यः खलु देवानुप्रियाः इच्छति द्वारावत्या नगर्याः राजा वा युवराजो वा ईश्वरः (अधिपतिः), तलवरः सैनिकः माडंबिकः कौटुम्बिकः इभ्यः (आढ्यः) श्रेष्ठी वा देवी वा कुमारः वा, कुमारी वा, अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके मुण्डा

यावत् प्रव्रजितुं तं खलु कृष्णः वासुदेवः विसर्जयति, पश्चादातुरस्यापि च सः यथाप्रवृत्तं वृत्तिं अनुजानाति, महता ऋद्धि सत्कार-समुदयेन च सः (तस्य) निष्क्रमणं करोति (करिष्यति) द्विवारमपि त्रिवारमपि घोषणकं घोषयथ, घोषित्वा (उद्घोष्य) मम एताम् आज्ञप्तिं प्रत्यर्पयत। ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति।

अन्वायार्थ-तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ = तदनन्तर वह कृष्ण वासुदेव भगवान, **अरिट्ठणेमिस्स अंतिए** = अरिष्टनेमि के पास से, **एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ०** = यह बात सुनकर समझकर प्रसन्न होते हुए, **अप्फोडइ, अप्फोडित्ता वग्गइ** = भुजाओं पर ताल ठोकने लगे, ताल ठोक कर जयनाद करते हैं, **वग्गित्ता तिवइं छिंदइ** = जयनाद करके समवसरण में त्रिपदी का छेदन करते हैं, **छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करित्ता** = पीछे हटकर सिंहनाद करते हैं, सिंहनाद करके, **अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता तमेव** = भगवान अरिष्टनेमि को वन्दना, नमस्कार करते हैं वन्दना नमस्कार करके उसी, **अभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ** = अभिषेक योग्य हाथी पर चढ़े, **दुरुहित्ता जेणेव बारवई णयरी** = आरूढ होकर जहाँ द्वारिका नगरी है, **जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए** = तथा जहाँ अपना प्रासाद है वहाँ आते हैं।, **अभिसेय हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ** = आभिषेक्य हस्तिरत्न से उतरते हैं, **पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया** = उतरकर जहाँ बाहरी, **उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे** = उपस्थान शाला तथा जहाँ स्वयं का सिंहासन है, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = वहाँ पर आते हैं, वहाँ आकर, **सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे** = श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की तरफ मुख करके बैठकर, **निसीयइ निसीइत्ता कोडुंबियपुरिसे** = विराजमान होते हैं, आज्ञाकारी पुरुषों को, **''गच्छ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-** = (बुलाते हैं, बुलाकर कहते हैं)-हे देवानुप्रियों ! तुम लोग जाओ, **बारवईए नयरीए सिंघाडग जाव** = व द्वारिका में शृंगाटक यावत् राजमार्ग पर, **उग्घोसेमाणा एवं वयह-** = घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो-, **''एवं खलु देवाणुप्पिया !** = हे द्वारिकावासी देवानुप्रियों !, **बारवईए नयरीए दुवालस जोयणआयामाए जाव** = बारह योजन में फैली हुई, **पच्चक्खं देवलोग-भूयाए** = प्रत्यक्ष देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का, **सुरग्गिदीवायणमूले विणासे** = सुरा, अग्नि व द्वैपायन के कारण नाश, **भविस्सइ तं जो णं देवाणुप्पिया** = होगा, इस कारण हे देवानुप्रियों ! जो, **इच्छइ बारवईए, नयरीए** = भी कोई इस द्वारिका पुरी में, नगरी, **राया वा, जुवराया वा** = का राजा हो या युवराज हो, **ईसरे, तलवरे,** = अधिपति हो, श्रेष्ठ तल वाला सैनिक हो, **माडंबिए, कोडुंबिए,** = माडंबिक हो, कौटुम्बिक (घरेलू नौकर), **इब्भे, सेट्ठी वा, देवी वा** = हो, धनी हो, सेठ हो, रानी हो, **कुमारो वा, कुमारी वा, अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = कुमार हो,

कुमारी हो, भगवान अरिष्टनेमिनाथ, **अंतिए मुंडे जाव पव्वइत्तए =** के पास मुंडित यावत् दीक्षा लेना चाहता हो, **तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जइ =** उसको कृष्ण वासुदेव विदा करते हैं।

पच्छाउरस्स वि य से अहापवित्तं = और दीक्षार्थी के पीछे कुटुम्बीजनों, **वित्तिं अणुजाणइ, =** की भी कृष्ण यथा योग्य व्यवस्था करेंगे।, **महया इड्ढीसक्कारसमुदएण =** वे पूर्ण ऋद्धिसत्कार के साथ उसका, **य से णिक्खमणं करेइ, =** निष्क्रमण (दीक्षा संस्कार) करायेंगे, **दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं =** दूसरी बार, तीसरी बार भी ऐसी, **घोसेह, घोसित्ता =** घोषणा करो, घोषणा करके, **मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। =** मेरी आज्ञा को वापस अर्पण करो।, **तए णं ते कोडुंबियपुरिसा =** तब उन आज्ञाकारी पुरुषों ने, **जाव पच्चप्पिणंति। =** घोषणा कर आज्ञा वापस लौटाई।

भावार्थ–अर्हन्त प्रभु के मुखारविन्द से अपने भविष्य का यह वृत्तान्त सुनकर कृष्ण वासुदेव बड़े प्रसन्न हुए और अपनी भुजा पर ताल ठोकने लगे। जयनाद करके त्रिपदी का छेदन किया। थोड़ा पीछे हटकर सिंहनाद किया और फिर भगवान नेमिनाथ को वंदन नमस्कार करके अपने अभिषेक-योग्य हस्ति रत्न पर आरूढ़ हुए और द्वारिका नगरी के मध्य से होते हुए अपने राजप्रासाद में आये। अभिषेक योग्य हाथी से नीचे उतरे और फिर जहाँ बाहर की उपस्थान शाला थी और जहाँ अपना सिंहासन था वहाँ आये। वे सिंहासन पर पूर्वाभिमुख विराजमान हुए फिर अपने आज्ञाकारी पुरुषों राज-सेवकों को बुलाकर इस प्रकार बोले-''हे देवानुप्रियों! तुम द्वारिका नगरी के शृंगाटक यावत् चतुष्पथ आदि सभी राजमार्गों पर जाकर मेरी इस आज्ञा को प्रचारित करो कि-

''हे द्वारिकावासी नगरजनों! इस बारह योजन लम्बी यावत् प्रत्यक्ष स्वर्गपुरी के समान द्वारिका नगरी का सुरा, अग्नि एवं द्वैपायन के कोप के कारण नाश होगा, इसलिये हे देवानुप्रियों! द्वारिका नगरी में जिसकी भी इच्छा हो, चाहे वह राजा हो, युवराज हो, ईश्वर (स्वामी या मन्त्री) हो, तलवर (राजा का प्रिय अथवा राजा के समान) हो, माडम्बिक (छोटे गाँव का स्वामी) हो, इभ्य सेठ हो, रानी हो, कुमार हो, कुमारी हो, राजरानी हो, राजपुत्री हो, इनमें से जो भी प्रभु नेमिनाथ के पास मुंडित होकर यावत् दीक्षा लेना चाहता हो, उसको कृष्ण वासुदेव ऐसा करने की सहर्ष आज्ञा देते हैं।

दीक्षार्थी के पीछे उसके आश्रित सभी कुटुम्बीजनों की भी श्री कृष्ण यथायोग्य व्यवस्था करेंगे और बड़े ऋद्धि सत्कार के साथ उसका दीक्षा-महोत्सव भी वे ही सम्पन्न करेंगे।'' ''इस प्रकार दो तीन बार घोषणा को दोहरा कर पुन: मुझे सूचित करो।'' कृष्ण का यह आदेश पाकर उन आज्ञाकारी राज पुरुषों ने वैसी ही घोषणा दो-तीन बार करके लौट कर इसकी सूचना श्री कृष्ण को दी।

सूत्र 8

मूल– **तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे वयह, जं नवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सा पद्मावती देवी अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्टतुष्ट यावत् हृदया अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा एवमवदत्–श्रद्दधे भदन्त! निर्ग्रंन्थं प्रवचनं तद् यथैतद् यूयं वदथ, यो विशेषः सोऽयम् देवानुप्रियाः ! कृष्णं वासुदेवं आपृच्छामि, ततः खलु अहं देवानुप्रियाणां अन्तिके मुंडा यावत् प्रव्रजामि। यथा सुखं देवानुप्रिया! मा प्रतिबंधं कुरु।

अन्वायार्थ–तए णं सा पउमावई देवी = तदनन्तर वह पद्मावती महारानी, **अरहओ अरिट्ठणेमिस्स** = भगवान अरिष्टनेमि के, **अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म** = पास धर्मकथा सुनकर, समझकर, **हट्ठतुट्ठ जाव हियया** = अत्यन्त प्रसन्न हृदय होती हुई, **अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ,** = भगवान नेमिनाथ को वन्दना नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता,** = वन्दना नमस्कार करके, **एवं वयासी–** = इस प्रकार बोली–, **सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे** = हे भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मैं श्रद्धा रखती हूँ, जैसा आप कहते हैं (वैसा ही है)। **वयह** = विशेष–, **जं नवरं देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं** = हे देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव को, **आपुच्छामि, तए णं अहं** = पूछूँगी, तदनन्तर मैं, **देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडा जाव** = देवानुप्रिय के पास मुंडित यावत्, **पव्वयामि।** = दीक्षा ग्रहण करूँगी। (प्रभु ने कहा–), **अहासुहं देवाणुप्पिया!** = देवानुप्रिय ! जैसा सुख हो करो, **मा पडिबंधं करेह।** = धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

भावार्थ–इसके बाद वह पद्मावती महारानी भगवान नेमिनाथ से धर्मोपदेश सुनकर एवं उसे हृदय में धारण करके बड़ी प्रसन्न हुई, उसका हृदय प्रफुल्लित हो उठा। यावत् वह अर्हन्त नेमिनाथ को भावपूर्ण हृदय से वंदना नमस्कार कर इस प्रकार बोली–

''हे पूज्य ! निर्ग्रन्थ प्रवचन पर मैं श्रद्धा करती हूँ। जैसा आप कहते हैं वह तत्त्व वैसा ही है। आपका धर्मोपदेश यथार्थ है। हे भगवन्! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर फिर देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ।''

प्रभु ने कहा ''जैसा तुम्हारी आत्मा को सुख हो वैसा करो। हे देवानुप्रिये ! धर्म–कार्य में विलम्ब मत करो।''

सूत्र 9

मूल– **तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सह गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी–इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा जाव पव्वयामि। (कण्हे–) अहासुहं देवाणुप्पिए ! तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए देवीए महत्थं णिक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेइ, उवट्ठवित्ता एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सा पद्मावती देवी धार्मिकं यानप्रवरं दूरोहति, दूरूह्य यत्रैव द्वारावती नगरी यत्रैव स्वकं गृहं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य धार्मिकात् यानप्रवरात् प्रत्यवरोहति, प्रत्यवरुह्य यत्रैव कृष्णः वासुदेवः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य करयुगलं (करतल) यावत् कृत्वा कृष्णं वासुदेवम् एवमवादीत्–इच्छामि खलु देवानुप्रियाः ! युष्माभिरभ्यनुज्ञाता सती अर्हतः अरिष्टनेमेः अन्तिके मुंडा यावत् प्रव्रजामि। (कृष्णः–) यथासुखं देवानुप्रिये ! ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः कौटुंबिक–पुरुषान् शब्दयति, शब्दयित्वैवमवदत् ''क्षिप्रमेव भो देवानुप्रियाः ! पद्मावत्याः देव्याः महार्थं निष्क्रमणाभिषेकम् उपस्थापयत, उपस्थाप्य, एतामाज्ञप्तिकां प्रत्यर्पयत, ततः ते कौटुम्बिकाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति।

अन्वायार्थ–तए णं सा पउमावई देवी = प्रभु के ऐसा कहने के बाद पद्मावतीदेवी, **धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ** = धार्मिक यान प्रवर पर आरूढ होती है, **दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी** = आरूढ होकर जहाँ द्वारिका नगरी है, **जेणेव सह गिहे तेणेव उवागच्छइ,** = जहाँ स्वयं का घर है वहाँ आती है, **उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ** = आकर धार्मिक श्रेष्ठ रथ से, **पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता**

जेणेव = उतरती है, उतरकर जहाँ, **कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ,** = कृष्ण वासुदेव थे वहाँ आती है, **उवागच्छित्ता करयल जाव कट्टु** = वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़कर, **कण्हं वासुदेवं एवं वयासी-** = कृष्ण वासुदेव को इस प्रकार बोली-, **इच्छामि णं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा, **अब्भणुण्णाया समाणी अरहओ** = हो तो मैं अर्हन्त, **अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुंडा जाव** = नेमिनाथ के पास मुंडित होकर, **पव्वयामि। (कण्हे-)** = दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ। (कृष्ण ने कहा-), **अहासुहं देवाणुप्पिए !** = हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसा करो।, **तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुंबिए पुरिसे** = तब कृष्ण वासुदेव ने आज्ञाकारियों को, **सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-** = बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा-, **खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया !** = ''हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही, **पउमावईए देवीए महत्थं** = पद्मावती महारानी के लिए बहुमूल्य, **णिक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेइ,** = दीक्षा महोत्सव की तैयारी करो, **उवट्ठवित्ता एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह।** = तैयारी कर, इस आज्ञापूर्ति की सूचना मुझे वापस करो।'' **तए णं ते कोडुंबिया जाव पच्चप्पिणंति।** = तब आज्ञाकारियों ने वैसा ही किया।

भावार्थ-नेमिनाथ प्रभु के ऐसा कहने के बाद पद्मावतीदेवी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ होकर द्वारिका नगरी में अपने घर आकर धार्मिक रथ से नीचे उतरी और जहाँ पर कृष्ण वासुदेव थे वहाँ आकर उनको दोनों हाथ जोड़कर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोली-

''हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा हो तो मैं अर्हन्त नेमिनाथ के पास मुंडित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ।''

''कृष्ण ने कहा-''हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।''

तब कृष्ण वासुदेव ने अपने आज्ञाकारी पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार आदेश दिया-''हे देवानुप्रियों! शीघ्र ही महारानी पद्मावती के लिए दीक्षा महोत्सव की विशाल तैयारी करो और तैयारी हो जाने की मुझे वापस सूचना दो।''

तब आज्ञाकारी पुरुषों ने वैसा ही किया और दीक्षा महोत्सव की तैयारी की सूचना उनको दी।

सूत्र 10

मूल- **तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देवीं पट्टयं दुरुहइ दुरुहित्ता अट्ठसएणं सोवण्णकलसेणं जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेइ करित्ता, पुरिससहस्सवाहिणीं सिवियं दुरुहावेइ दुरुहावित्ता बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ,**

णिग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ ठवेत्ता, पउमावई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ। तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पुरओ कट्टु जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–एस णं भंते! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा, कंता पिया, मणुण्णा, मणामा, अभिरामा, जीवियऊसासा, हिययाणंदजणिया, उंबरपुप्फंविव दुल्लहा, सवणयाए किमंग! पुण पासणयाए। तए णं अहं देवाणुप्पिया! सिस्सिणी भिक्खं दलयामि, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणीभिक्खं। अहासुहं! तए णं सा पउमावई देवी उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमइ अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–आलित्ते णं भंते ! जाव धम्ममाइक्खिउं।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः पद्मावतीं देवीं पट्टकं (फलकं) दूरोहति दूरोह्य अष्टोत्तरशतसौवर्णकलशैः यावत् निष्क्रमणाभिषेकं अभिषिंचति, अभिषिंच्य सर्वालंकारविभूषिताम् कारयति, कृत्वा पुरुष सहस्रवाहिनीं शिविकाम् दूरोहयति, दूरोह्य द्वारावत्याः नगर्याः मध्यं मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव रैवतकः पर्वतः यत्रैव सहस्राम्रवनम् उद्यानम् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य शिविकां स्थायपति स्थापयित्वा, पद्मावती देवी शिविकायाः प्रत्यवरोहति। ततः खलु सः कृष्णः वासुदेवः पद्मावतीं देवीं पुरतः कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिस्तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं आदक्षिणं प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्–एषा खलु भदन्त! ममाग्रमहिषी पद्मावती नाम देवी इष्टा, कांता, प्रिया, मनोज्ञा, मनोरमा, अभिरामा, जीवितोच्छ्वासा, हृदयानन्दजनिका, उदम्बरपुष्पमिव दुर्लभा श्रवणतायै किमंग ! पुनर्दर्शनतायै।

ततः खलु अहं देवानुप्रिय! शिष्या-भिक्षां ददामि, प्रतीच्छन्तु खलु देवानुप्रिय! शिष्याभिक्षाम्। यथासुखम्! ततः खलु सा पद्मावती देवी उत्तरपौरस्त्यां दिग्भागम् अवक्राम्यति अवक्रम्य स्वयमेव आभरणालंकारम् अवमुंचति, अवमुच्य स्वयमेव पंचमौष्टिकं (लुञ्चनं) लोचं करोति कृत्वा यत्रैव अर्हन् अरिष्टनेमिः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्हन्तम् अरिष्टनेमिं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवदत्-आलिप्तो भदन्त! यावत् धर्मं आख्यातुम्।

अन्वायार्थ-तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं = तदनन्तर कृष्णवासुदेव ने पद्मावती, **देवीं पट्टयं दुरुहई** = देवी को पट्टे (पाटा) पर बैठाया, **दुरुहित्ता अट्ठसएणं सोवण्णकलसेणं** = बैठाकर एक सौ आठ सुवर्णकलशों से, **जाव णिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ,** = यावत् दीक्षा सम्बन्धी अभिषेक किया। **अभिसिंचित्ता, सव्वालंकारविभूसियं करेइ** = अभिषेक करके सर्वविध (सब तरह के) अलंकारों से उन्हें विभूषित कराया। **करित्ता, पुरिससहस्सवाहिणीं सिवियं दुरुहावेइ** = इस प्रकार सजाकर हजार पुरुषों से उठाई, जाने वाली पालकी पर चढ़ाते हैं, **दुरुहावित्ता बारवईए नयरीए मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ,** = चढ़ाकर द्वारावती नगरी के मध्य मध्य भाग से निकले, **णिग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए** = निकलकर जहाँ रैवतक पर्वत है तथा, **जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे** = जहाँ सहस्राम्रवन नामक बगीचा है, **तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ** = वहाँ पर आये। आकर शिविका को रख देते हैं, **ठवेत्ता, पउमावई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ** = रखने के बाद पद्मावती देवी उस शिविका से उतरती है। **तए णं से कण्हे वासुदेवे** = तदनन्तर कृष्ण वासुदेव, **पउमावइं देविं पुरओ कट्टु** = पद्मावती देवी को आगे करके, **जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव** = जहाँ भगवान अरिष्टनेमिनाथ थे वहाँ, **उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = आये, आकर, **अरहं अरिट्ठणेमिं** = भगवान नेमिनाथ को तीन बार, **आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता** = आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके, **वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता** = वन्दना नमस्कार करते हैं, वन्दना नमस्कार करके, **एवं वयासी-एस णं भंते! मम अग्गमहिसी** = इस प्रकार बोले-हे पूज्य! यह मेरी प्रधान रानी, **पउमावई नामं देवी इट्ठा, कंता** = पद्मावती नाम की देवी जो कि मुझे इष्ट कान्त, **पिया, मणुण्णा, मणामा, अभिरामा** = प्रिय, मनोज्ञ, मन के अनुकूल चलने वाली होने से सुन्दर है। **जीवियऊसासा** = यह जीवन के लिए श्वासोच्छ्वास के समान है, **उंबरपुप्फंविव हिययाणंदजणिया दुल्लहा, सवणयाए किमंग! पुण पासणयाए** = हृदय को आनन्द देने वाली है, उदुम्बर पुष्प के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो देखने की तो बात ही क्या ? **तए णं अहं देवाणुप्पिया!** = हे देवानुप्रिय! मैं उस प्रिय पत्नी की, **सिस्सिणी भिक्खं दलयामि** = शिष्यिणी रूप भिक्षा (आपको) देता हूँ, **पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया! सिस्सिणीभिक्खं** = हे देवानुप्रिय! आप शिष्यिणी रूप भिक्षा को ग्रहण करें। **अहासुहं!** = ''जैसा सुख हो वैसा करो।'' **तए णं सा पउमावई देवी** = तदनन्तर वह पद्मावती देवी, **उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमइ**

= ईशान कोण में जाती है तथा, **अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं** = वहाँ जाकर खुद ही आभूषण एवं अलंकारों को, **ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव** = उतारती है, उतार कर खुद ही, **पंचमुट्ठियं लोयं करेइ,** = पाँच मुट्ठी का लोच करती है, **करित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी** = करके जहाँ भगवान अरिष्टनेमि थे, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = वहाँ आई, आकर, **अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ** = भगवान नेमिनाथ को वंदना नमस्कार करती है, **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–** = वन्दना नमस्कार करके बोली–, **आलित्ते णं भंते ! जाव धम्ममाइक्खिउं** = हे भगवन् ! यह लोक जन्म–मरणादि दु:खों से आलिप्त है अत: यावत् संयम–धर्म की दीक्षा दीजिए।

भावार्थ–इसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती देवी को पट्ट पर बिठाया और एक सौ आठ सुवर्ण–कलशों से उसे स्नान कराया यावत् दीक्षा सम्बन्धी अभिषेक किया।

फिर सभी प्रकार के अलंकारों से उसे विभूषित करके हजार पुरुषों द्वारा उठायी जाने वाली शिविका–(पालकी) में बिठाकर द्वारिका नगरी के मध्य से होते हुए निकले और जहाँ रैवतक पर्वत और सहस्राम्रवन उद्यान था वहाँ आकर पालकी नीचे रखी। तब पद्मावती देवी पालकी से नीचे उतरी।

फिर कृष्ण वासुदेव पद्मावती महारानी को आगे करके भगवान नेमिनाथ के पास आये और भगवान नेमिनाथ को तीन बार आदक्षिणा–प्रदक्षिणा करके वंदन–नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार बोले–

''हे भगवन् यह पद्मावती देवी मेरी पटरानी है। यह मेरे लिए इष्ट है, कान्त है, प्रिय है, मनोज्ञ है, और मन के अनुकूल चलने वाली है अभिराम (सुन्दर) है। हे भगवन् ! यह मेरे जीवन में श्वासोच्छ्वास के समान मुझे प्रिय है, मेरे हृदय को आनन्द देने वाली है।

इस प्रकार का स्त्री–रत्न उदुम्बर (गूलर) के पुष्प के समान सुनने के लिए भी दुर्लभ है; तब देखने की तो बात ही क्या है ? हे देवानुप्रिय ! मैं ऐसी अपनी प्रिय पत्नी की भिक्षा शिष्या रूप में आपको देता हूँ। आप उसे स्वीकार करें।''

कृष्ण वासुदेव की प्रार्थना सुनकर प्रभु बोले–हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जिस प्रकार सुख हो वैसा करो।

तब उस पद्मावती देवी ने ईशान–कोण में जाकर स्वयं अपने हाथों से अपने शरीर पर धारण किए हुए सभी आभूषण एवं अलंकार उतारे और स्वयं ही अपने केशों का पंचमौष्टिक लोच किया। फिर भगवान नेमिनाथ के पास आकर वंदना की। वंदन नमस्कार करके इस प्रकार बोली–''हे भगवन् ! यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि दु:ख रूपी आग में जल रहा है।

अत: इन दु:खों से छुटकारा पाने और जलती हुई आग से बचने के लिए, मैं आपसे संयम–धर्म की दीक्षा अंगीकार करना चाहती हूँ। अत: कृपा करके मुझे प्रव्रजित कीजिये यावत् चारित्र–धर्म सुनाइये।''

सूत्र 11

मूल– **तए णं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ, सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणीं दलयइ। तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयं पव्वावेइ, जाव संजमियव्वं, तए णं सा पउमावई जाव संजमइ। तए णं सा पउमावई अज्जा जाया, ईरियासमिया जाव गुत्तबम्भयारिणी।।11।।**

संस्कृत छाया– ततः अर्हन् अरिष्टनेमिः पद्मावतीं देवीं स्वयमेव प्रव्राजयति, स्वयमेव यक्षिण्यैः आर्यायै शिष्यां ददाति। ततः खलु सा यक्षिणी आर्या पद्मावतीं देवीं स्वयं प्रव्राजयति, यावत् संयन्तव्यं ततः सा पद्मावती यावत् संयच्छते। ततः सा पद्मावती आर्या जाता, ईर्यासमिता यावत् गुप्तब्रह्मचारिणी।।11।।

अन्वायार्थ–तए णं अरहा अरिट्ठणेमी = इसके बाद भगवान नेमिनाथ ने, **पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ =** पद्मावती देवी को स्वयमेव प्रव्रज्या दी, **सयमेव जक्खिणीए अज्जाए =** और स्वयमेव यक्षिणी आर्या को, **सिस्सिणीं दलयइ। =** शिष्या रूप में प्रदान किया। **तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं =** तब उस यक्षिणी आर्या ने पद्मावती, **देविं सयं पव्वावेइ, =** देवी को स्वयं दीक्षा दी और, **जाव संजमियव्वं, =** संयम में यत्न करने की शिक्षा दी, **तए णं सा पउमावई जाव संजमइ। =** तब वह पद्मावती संयम में यत्न करने लगी। **तए णं सा पउमावई अज्जा जाया =** तब वह पद्मावती आर्या बन गई, **ईरियासमिया जाव गुत्तबम्भयारिणी =** और ईर्या समिति आदि पाँचों समितियों से युक्त हो यावत् ब्रह्मचारिणी हो गई।।11।।

भावार्थ–पद्मावती के ऐसा कहने पर भगवान नेमिनाथ ने स्वयमेव पद्मावती को प्रव्रजित एवं मुंडित करके यक्षिणी आर्या को शिष्या रूप में सौंप दिया।

तब यक्षिणी आर्या ने पद्मावती देवी को प्रव्रजित किया, श्रमणी–धर्म की दीक्षा दी और संयम क्रिया में सावधानी पूर्वक यत्न करते रहने की हित शिक्षा देते हुए कहा–''हे पद्मावते! तुम संयम में सदा सावधान रहना।'' पद्मावती भी यक्षिणी गुरुणी की हित शिक्षा मानते हुए सावधानीपूर्वक संयम–पथ पर चलने का यत्न करने लगी एवं ईर्या समिति आदि पाँचों समितियों से युक्त होकर यावत् ब्रह्मचारिणी आर्या बन गई।।11।।

सूत्र 12

मूल– **तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइय–माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसम–दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरइ। तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं**

वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिभत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरई णग्गभावे-जाव तमट्ठं आराहेइ चरिमुस्सासेहिं सिद्धा।।12।।

संस्कृत छाया- ततः सा पद्मावती आर्या यक्षिण्याः आर्यायाः अंतिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीते, बहुभिः चतुर्थषष्ठाष्टमदशमद्वादशभिः मासार्द्धमासक्षपणैः विविधैः तपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति। ततः सा पद्मावती आर्या बहुप्रतिपूर्णानि विंशति वर्षाणि श्रामण्य-पर्यायं पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयति जोषित्वा षष्टि-भक्तानि-अनशनानि छिनत्ति, छित्त्वा यस्यार्थाय क्रियते नग्नभावः यावत् तमर्थम् आराधयति चरमोच्छ्वासैः सिद्धा।।12।।

अन्वायार्थ-तए णं सा पउमावई अज्जा = तदनन्तर उस पद्मावती आर्या ने, **जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं** = यक्षिणी आर्या के पास सामायिक आदि, **एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ,** = ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, **बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं** = बहुत से उपवास-बेले-तेले-चोले-पचोले, **मासद्धमासखमणेहिं** = मास और अर्धमास आदि, **विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं** = विविध तपस्या से आत्मा को, **भावेमाणा विहरइ** = भावित करती हुई विचरने लगी। **तए णं सा पउमावई अज्जा** = इसके बाद वह पद्मावती आर्या, **बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं** = पूरे बीस वर्ष, **सामण्णपरियागं पाउणित्ता** = श्रमणी चारित्र धर्म का पालन कर; **मासियाए संलेहणाए अप्पाणं** = एक मास की संलेखणा से आत्मा को, **झोसेइ, झोसित्ता सट्ठिभत्ताइं अणसणाइं छेदेइ, छेदित्ता** = युक्त कर साठ भक्त अनशन पूर्ण कर, **जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे-** = जिस कार्य के लिए नग्नभाव अपरिग्रह रूप संयम स्वीकार किया, **जाव तमट्ठं आराहेइ** = उसी अर्थ का आराधन कर, **चरिमुस्सासेहिं सिद्धा** = अन्तिम श्वास से सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।।12।।

भावार्थ-तत् पश्चात् उस पद्मावती आर्या ने अपनी यक्षिणी गुरुणी के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, साथ ही साथ वह उपवास-बेले-तेले-चौले-पचोले, पन्द्रह-पन्द्रह दिन और महीने-महीने तक की विविध प्रकार की तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

इस तरह पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक चारित्र धर्म का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना की और साठ भक्त अनशन पूर्ण करके जिस कार्य (मोक्ष प्राप्ति) के लिए संयम स्वीकार किया था, उसकी आराधना करके अन्तिम श्वास के बाद सिद्ध-बुद्ध और सब दुःखों से मुक्त होकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लिया।।12।।

।। इइ पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

2-8 अज्झयणाणि-2-8 अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **उक्खेवओ य अज्झयणस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी, रेवयए पव्वए उज्जाणे नंदणवणे। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ, अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए, गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया, धम्मकहा, परिसा पडिगया, कण्हे वि पडिगए। तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा णिक्खंता जाव सिद्धा। एवं गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जम्बवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, अट्ठवि पउमावई सरिसयाओ अट्ठ अज्झयणा।।1।।**

संस्कृत छाया- उत्क्षेपकश्च अध्ययनस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावती नगरी, रैवतक: पर्वत: उद्यानं नन्दनवनम्। तत्र खलु द्वारावत्या: नगर्या: कृष्ण: वासुदेव: राजा आसीत् तस्य खलु कृष्णस्य वासुदेवस्स गौरी देवी, वर्ण्या, अर्हन् अरिष्टनेमी समवसृत:। कृष्ण: निर्गत:, गौरी यथा पद्मावती तथा निर्गता, धर्मकथा, परिषद् प्रतिगता, कृष्णोऽपि प्रतिगत:। तत: सा गौरी यथा पद्मावती तथा निष्क्रान्ता यावत् सिद्धा। एवं गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी, अष्टावपि पद्मावतीसदृशा: अष्ट-अध्ययनानि (समाप्तानि)।।1।।

अन्वायार्थ-उक्खेवओ य अज्झयणस्स = श्री जम्बू-हे भगवन्! प्रथम अध्ययन के जो भाव कहे वे, मैंने सुने। अब द्वितीय, तृतीय आदि अध्ययनों में प्रभु ने क्या, भाव कहे हैं सो कृपाकर फरमाइये। **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** श्री सुधर्मा- हे जम्बू! उस काल उस समय में, **बारवई नयरी, रेवयए पव्वए उज्जाणे नंदणवणे =** द्वारिकानगरी के पास रैवतक पर्वत और नन्दन वन नामक उद्यान था। **तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे राया होत्था =** वहाँ द्वारिका नगरी के कृष्ण वासुदेव राजा थे। **तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी, वण्णओ, =** उस कृष्ण वासुदेव की गौरी नामकी महारानी थी, वर्णनीय थी, **अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे =** किसी समय भगवान नेमिनाथ द्वारिका के नन्दन वन उद्यान में पधारे,

कण्हे णिग्गए, गोरी जहा पउमावई तहा णिग्गया = श्री कृष्ण वन्दन को गये, पद्मावती की तरह गौरी भी वन्दन करने गई। **धम्मकहा, परिसा पडिगया =** भगवान ने धर्म कथा फरमाई। सभाजन लौट गये, **कण्हे वि पडिगए =** कृष्ण भी वापस आ गये। **तए णं सा गोरी जहा पउमावई =** तब गौरी पद्मावती की तरह, **तहा णिक्खंता जाव सिद्धा =** दीक्षित हुई, यावत् सिद्ध हो गई। **एवं गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, =** इसी तरह गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, **जम्बवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, =** जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी, **अट्ठवि पउमावई सरिसयाओ अट्ठ अज्झयणा =** (ये) आठों अध्ययन पद्मावती के समान समझना।।1।।

भावार्थ–आर्य जम्बू–''हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने प्रथम अध्ययन के जो भाव कहे, वे आपके मुखारविन्द से मैंने सुने। अब दूसरे एवं उससे आगे के अध्ययनों में क्या भाव कहे हैं ? कृपा करके कहिये।''

श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारिका नगरी थी। उसके समीप एक रैवतक नाम का पर्वत था। उस पर्वत पर नन्दन वन नामक एक मनोहारी एवं विशाल उद्यान था। उस द्वारिका नगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। उन कृष्ण वासुदेव की 'गौरी' नाम की महारानी थी जो वर्णन करने योग्य थी।

एक समय उस नन्दन वन उद्यान में भगवान अरिष्टनेमि पधारे। कृष्ण वासुदेव भगवान के दर्शन करने के लिए गये। जन–परिषद् भी गई। 'गौरी' रानी भी 'पद्मावती' रानी के समान प्रभु–दर्शन के लिए गई। भगवान ने धर्म–कथा–धर्मोपदेश दिया। धर्मोपदेश सुनकर जन परिषद् अपने अपने घर गई। कृष्ण वासुदेव भी अपने राज भवन में लौट गये।

तत्पश्चात् 'गौरी' देवी पद्मावती रानी की तरह दीक्षित हुई यावत् सिद्ध हो गई।

इसी तरह बाकी 3. गांधारी, 4. लक्ष्मणा, 5. सुसीमा, 6. जाम्बवती, 7. सत्यभामा, 8. रुक्मिणी के भी छ अध्ययन 'पद्मावती' के समान समझने चाहिये।

इन आठों महारानियों का वर्णन इनके अध्ययनों में समान रूप से जानना चाहिये। ये सभी एक समान प्रव्रजित होकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त हुईं। ये सभी श्री कृष्ण वासुदेव की पटरानियाँ थीं।

।। इइ 2–8 अज्झयणाणि–2–8 अध्ययन समाप्त।।

9-10 अज्झयणाणि-9-10 अध्ययन

सूत्र 2

मूल- **उक्खेवओ य नवमस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए, रेवयए पव्वए, नंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया। तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जंबवईए देवीए अत्तए संबे नामं कुमारे होत्था। अहीण०। तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भारिया होत्था वण्णओ, अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे। कण्हे णिग्गए। मूलसिरी वि णिग्गया। जहा पउमावई। नवरं देवाणुप्पिया! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि जाव सिद्धा। एवं मूलदत्ता वि।।2।।**

संस्कृत छाया- उत्क्षेपकश्च नवमस्य। तस्मिन् काले तस्मिन् समये द्वारावत्यां नगर्यां, रैवतक: पर्वत:, नन्दनवनमुद्यानं, कृष्ण: राजा। तत्र खलु द्वारावत्यां नगर्यां कृष्णस्य वासुदेवस्य पुत्र: जाम्बवत्या: देव्या: आत्मज: शाम्ब: नाम कुमार: आसीत्। अहीन:। तस्य खलु शाम्बस्य कुमारस्य मूलश्री: नामा भार्या आसीत्, वर्ण्या, अर्हन् अरिष्टनेमि: समवसृत:। कृष्ण: निर्गत: मूलश्रीरपि निर्गता। यथा पद्मावती। विशेष: (नवीनम्) देवानुप्रिय! कृष्णं वासुदेवम् आपृच्छामि। यावत् सिद्धा। एवं मूलदत्ता अपि।।2।।

अन्वायार्थ-उक्खेवओ य नवमस्स। = नवम अध्ययन का उत्क्षेपक-हे भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अध्ययन का भाव फरमाया सो सुना, अब नवम अध्ययन में क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर बतलाइये। **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस काल उस समय, **बारवईए नयरीए, रेवयए पव्वए, =** द्वारिका नगरी, रैवतक पर्वत, **नंदणवणे उज्जाणे, कण्हे राया =** नन्दनवन नामक उद्यान, कृष्ण-वासुदेव राजा (हुए), **तत्थ णं बारवईए नयरीए =** वहाँ द्वारिका नगरी में, **कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते =** कृष्ण वासुदेव का पुत्र तथा, **जंबवईए देवीए अत्तए =** जाम्बवती देवी का आत्मज, **संबे नामं कुमारे होत्था अहीण० =** साम्ब नामक कुमार था। जो प्रतिपूर्ण इन्द्रियवाला एवं सुरूप था। **तस्स णं संबस्स कुमारस्स =** उस साम्ब कुमार की, **मूलसिरी नामं भारिया होत्था =** मूलश्री नामकी पत्नी थी, **वण्णओ =** जो कि वर्णन

करने योग्य थी। **अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे =** एकदा भगवान अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। **कण्हे णिग्गए मूलसिरी वि णिग्गया =** कृष्ण वन्दन करने गये, मूलश्री भी गई, **जहा पउमावई =** पद्मावती की तरह। **नवरं देवाणुप्पिया ! =** विशेष-बोली-''हे देवानुप्रिय !, **कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि =** कृष्ण वासुदेव को पूछती हूँ'' (पूछकर), **जाव सिद्धा =** (दीक्षित हुई) यावत् सिद्ध हो गई। **एवं मूलदत्ता वि =** इसी प्रकार मूलदत्ता भी।।2।।

भावार्थ–श्री जम्बू-''हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने आठवें अध्ययन के जो भाव कहे-वे मैंने आपके मुखारविन्द से सुने। आगे श्रमण भगवान महावीर ने नवमें अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ? यह कृपाकर बताइये।''

श्री सुधर्मा स्वामी-''हे जम्बू ! उस काल उस समय में द्वारिका नगरी के पास एक रैवतक नाम का पर्वत था जहाँ एक नन्दन वन उद्यान था। वहाँ कृष्ण-वासुदेव राज्य करते थे। उन कृष्ण वासुदेव के पुत्र और रानी जाम्बवती देवी के आत्मज शाम्ब-नाम के कुमार थे जो सर्वांग सुन्दर थे।

उन शाम्बकुमार के मूलश्री नाम की भार्या थी, जो वर्णन योग्य थी, अत्यन्त सुन्दर एवं कोमलांगी थी।

एक समय अरिष्टनेमि वहाँ पधारे। कृष्ण वासुदेव उनके दर्शनार्थ गये। 'मूल श्री' देवी भी 'पद्मावती' के पूर्व वर्णन के समान प्रभु के दर्शनार्थ गई।

भगवान ने धर्मोपदेश दिया, धर्म कथा कही। जिसे सुनने को जन परिषद् भी आई। धर्म कथा सुनकर जन परिषद् एवं श्री कृष्ण तो अपने अपने घर लौट गये। मूलश्री ने वहीं रुककर भगवान से प्रार्थना की कि-''हे भगवन् ! मैं कृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर आपके पास श्रमण धर्म में दीक्षित होना चाहती हूँ।''

भगवान ने कहा-''हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।''

इसके बाद 'मूलश्री' अपने भवन को लौटी। 'मूलश्री' के पति श्री शाम्ब कुमार चूंकि पहले ही प्रभु के चरणों में दीक्षित हो गये थे अत: 'मूलश्री' अपने श्वसुर श्रीकृष्ण वासुदेव की आज्ञा लेकर 'पद्मावती' के समान दीक्षित हुई। एवं उन्हीं के समान तप संयम की आराधना करके सिद्ध पद को प्राप्त किया।

'मूलश्री' के ही समान 'मूलदत्ता' का भी सारा वृत्तान्त जानना चाहिये। यह शाम्ब कुमार की दूसरी रानी थी।।2।।

।। इइ 9-10 अज्झयणाणि-9-10 अध्ययन समाप्त ।।

।। इइ पंचमो वग्गो-पंचम वर्ग समाप्त ।।

छट्ठो वग्गो-षष्ठ वर्ग

पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- जइ णं भंते ! छट्ठमस्स उक्खेवओ। नवरं सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा-

मंकाई किंकमे चेव, मोग्गरपाणी य कासवे।
खेमए धितिधरे चेव, केलासे हरिचंदणे।1।

वारत्तसुदंसण-पुण्णभद्दे, सुमणभद्दे सुपइट्ठे मेहे।
अइमुत्ते य अलक्खे, अज्झयणाणं तु सोलसयं।2।

जइ णं भंते! सोलस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते? एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुण-सिलए चेइए, सेणिए राया। तत्थ णं मंकाई नामं गाहावई परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे गुणसिलए जाव विहरइ, परिसा णिग्गया। तए णं से मंकाई गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव।

इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवित्ता पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए णिक्खंते। जाव अणगारे जाए ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी तए णं से मंकाई अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। सेसं जहा खंदयस्स। गुणरयणं तवोकम्मं सोलसवासाइं परियाओ, तहेव विपुले सिद्धे।।1।।

संस्कृत छाया- यदि खलु हे भदन्त ! षष्ठस्य उत्क्षेपक:। विशेष: (नवीनम्) षोडश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-

मङ्काई (ति) किंकमश्चैव, मुद्गरपाणिश्च काश्यप:।
क्षेमको धृतिधरश्चैव, कैलाशो हरिचन्दन:।।1।।

वारत्तसुदर्शन-पुण्यभद्रः, सुमनोभद्रः सुप्रतिष्ठः मेघः।
अतिमुक्तश्चालक्ष्यो, अध्ययनानां तु षोडशकम्।।2।।

यदि खलु भदन्त! षोडश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य अध्ययनस्य कः अर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरम्। गुणशिलकं चैत्यम्, श्रेणिकः राजा। तत्र खलु मंकाई नाम गाथापतिः परिवसति, आढ्यः यावत् अपरिभूतः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणः भगवान् महावीरः आदिकरः गुणशिलके यावत् विहरति, परिषद् निर्गता। ततः सः मंकाई गाथापतिः अस्याः कथायाः लब्धार्थः यथा प्रज्ञप्त्यां गंगदत्तः तथैव।

अयमपि ज्येष्ठपुत्रं कुटुम्बे स्थापयित्वा पुरुषसहस्रवाहिन्या शिविकया निष्क्रान्तः। यावत् अनगारो जातः। ईर्यासमितो यावत् गुप्तब्रह्मचारी। ततः सः मंकाई अनगारः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य तथारूपाणां स्थविराणामन्तिके सामायिकादीनि एकादशाङ्गानि अधीते। शेषं यथा स्कंदकस्य। गुणरत्नं तपः कर्म षोडश वर्षाणि पर्यायः, तथैव विपुले सिद्धः।

अन्वायार्थ-जइ णं भंते ! छट्ठमस्स उक्खेवओ = ''यदि खलु हे भदन्त!'' छठे का प्रारम्भ है। हे भगवन्! पाँचवें वर्ग का भाव सुना अब छठे वर्ग में श्रमण भगवान महावीर ने क्या भाव प्रकट किये हैं? कृपा कर बतलाइये-सुधर्मा स्वामी-हे जम्बू!, **नवरं सोलस अज्झयणा =** विशेष, इस वर्ग में भगवान ने सोलह, **पण्णत्ता, तं जहा- =** अध्ययन कहे हैं, वे इस प्रकार हैं-, **मंकाई किंकमे चेव, =** 1. मंकाई 2. किंकम, **मोग्गरपाणी य कासवे =** 3. मुद्गरपाणि 4. काश्यप, **खेमए धितिधरे चेव, =** 5. क्षेमक 6. धृतिधर, **केलासे हरिचंदणे =** 7. कैलाश तथा 8. हरिचन्दन।

वारत्तसुदंसण-पुण्णभद्दे = 9. वारत्त, 10. सुदर्शन, 11. पुण्यभद्र, **सुमणभद्दे सुपइट्ठे मेहे =** 12. सुमनभद्र, 13. सुप्रतिष्ठ, 14. मेघ, **अइमुत्ते य अलक्खे =** 15. अतिमुक्त तथा 16. अलक्ष्य, **अज्झयणाणं तु सोलसयं =** ये सोलह अध्ययन हैं।

जइ णं भंते! सोलस अज्झयणा = यदि हे भगवन्! सोलह अध्ययन, **पण्णत्ता, पढमस्स अज्झयणस्स =** कहे हैं तो पहले अध्ययन का, **के अट्ठे पण्णत्ते ? =** क्या अर्थ बतलाया है? (श्री सुधर्मा)-, **एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं =** हे जम्बू! उस काल, **तेणं समएणं रायगिहे नयरे =** उस समय में राजगृह नगर, **गुण-सिलए चेइए, सेणिए राया =** गुणशील चैत्य एवं श्रेणिक राजा थे। **तत्थ णं मंकाई नामं गाहावई =** वहाँ पर मंकाई नामक गृहस्थ, **परिवसइ, अड्ढे जाव =** रहता था जो कि ऋद्धि सम्पन्न तथा, **अपरिभूए =** किसी से तिरस्कार प्राप्त नहीं था।

तेणं कालेणं तेणं समएणं = उस काल उस समय, **समणे भगवं महावीरे आइगरे** = श्रमण भगवान महावीर धर्म की आदि करने वाले, **गुणसिलए जाव विहरइ** = गुणशील उद्यान में यावत् पधारे, **परिसा णिग्गया** = धर्म कथा सुनकर परिषद् लौट गई।

तए णं से मंकाई गाहावई = तब वह मंकाई गाथापति, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे** = प्रभु के आने का वृत्तान्त सुनकर, **जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते तहेव** = जैसे भगवती सूत्र में गंगदत्त, वैसे ही।।1।।

इमो वि जेट्ठपुत्तं कुडुंबे ठवित्ता = यह भी ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का कार्यभार सौंपकर, **पुरिससहस्सवाहिणीए सीयाए** = हजार पुरुषों से उठाई जाने वाली पालकी में बैठकर दीक्षार्थ, **णिक्खंते जाव अणगारे जाए** = निकल पड़े। यावत् अनगार हो गए। **ईरियासमिए जाव गुत्तबंभयारी** = ईर्यासमितियुक्त यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन गये। **तए णं से मंकाई अणगारे** = तब वह मंकाई अनगार, **समणस्स भगवओ महावीरस्स तहारूवाणं थेराणं अंतिए** = श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ** = सामायिक आदि ग्यारह अंगों का, अध्ययन करता है। **सेसं जहा खंदयस्स** = शेष वर्णन स्कंदक के समान जानना चाहिये। उन्होंने, **गुणरयणं तवोकम्मं** = स्कंदक के समान गुणरत्न तप का आराधन किया। **सोलसवासाइं परियाओ** = सोलह वर्ष की दीक्षा पाली, **तहेव विपुले सिद्धे** = और उसी तरह विपुल पर्वत पर सिद्ध हो गये।।1।।

भावार्थ–श्री जम्बू–''हे भगवन्! पाँचवें वर्ग का भाव सुना, अब छठे वर्ग के श्रमण भगवान महावीर ने क्या भाव कहे हैं सो कृपा कर कहिये।'' श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू! श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने छठे वर्ग के सोलह अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं–1. मंकाई, 2. किंकम, 3. मुद्गरपाणि, 4. काश्यप, 5. क्षेमक, 6. धृतिधर, 7. कैलाश, 8. हरिचन्दन, 9. वारत्त, 10 सुदर्शन, 11. पुण्यभद्र, 12. सुमनभद्र, 13. सुप्रतिष्ठ, 14. मेघ कुमार, 15. अतिमुक्त कुमार, 16. अलक्ष्य कुमार।

श्री जम्बू–''हे भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने छट्ठे वर्ग के 16 अध्ययन कहे हैं तो प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ बताया है? कृपा कर कहिये।

आर्य श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था। वहाँ गुणशीलक नाम का चैत्य–उद्यान था। उस नगर में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। वहाँ मंकाई नाम का एक गाथापति रहता था, जो अत्यन्त समृद्ध यावत् अपरिभूत था यानी दूसरों से पराभूत होने वाला नहीं था।

उस काल उस समय में धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान महावीर गुणशीलक उद्यान में यावत् पधारे।

प्रभु महावीर का आगमन सुनकर जन परिषद् दर्शनार्थ एवं धर्मोपदेश श्रवणार्थ प्रभु की सेवा में आई।

मंकाई गाथापति भी भगवती सूत्र में वर्णित गंगदत्त के वर्णन के समान भगवान के दर्शनार्थ एवं धर्मोपदेश श्रवणार्थ अपने घर से निकला। भगवान ने धर्मोपदेश दिया, जिसे सुनकर मंकाई गाथापति संसार से विरक्त हो गया। उसने घर आकर अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का भार सौंपा और स्वयं हजार पुरुषों से उठाई जाने वाली शिविका (पालकी) में बैठकर श्रमण दीक्षा अंगीकार करने हेतु भगवान की सेवा में आये। यावत् वे अणगार हो गये। ईर्या आदि समितियों से युक्त एवं गुप्तियों से गुप्त ब्रह्मचारी बन गये।

इसके बाद मंकाई मुनि ने श्रमण भगवान महावीर के गुणसंपन्न तथा रूप स्थविरों के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और स्कंदकजी के समान, गुणरत्न संवत्सर तप का आराधन किया। सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और अन्त में विपुल गिरि पर स्कन्दकजी के समान ही संथारादि करके सिद्ध हो गये।

।। इइ पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

बिइयमज्झयणं-द्वितीय अध्ययन

सूत्र 2

मूल- **दोच्चस्स उक्खेवओ, किंकमे वि एवं चेव। जाव विपुले सिद्धे।2।**

संस्कृत छाया- द्वितीयस्य उत्क्षेपकः। किंकमः अपि एवम् चैव। यावत् विपुले सिद्धः।2।

अन्वायार्थ-दोच्चस्स उक्खेवओ = दूसरे अध्ययन का प्रारम्भ, **किंकमे वि एवं चेव =** किंकम भी मंकाई के समान ही दीक्षा लेकर, **जाव विपुले सिद्धे =** विपुलाचल पर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गये।

भावार्थ-दूसरे अध्ययन में 'किंकम' गाथापति का वर्णन है। वे भी 'मंकाई' गाथापति के समान ही प्रभु महावीर के पास प्रव्रजित होकर विपुल गिरि पर सिद्ध-बुद्ध और सर्वदुःखों से मुक्त हो गये।

टिप्पणी-उक्खेवओ (उत्क्षेपक)-प्रारम्भिक वाक्य। उपोद्घात। भूमिका। यह शब्द इस भाव का द्योतक है कि प्रभु महावीर ने पिछले अध्ययन अथवा वर्ग का जो भाव कहा है वह सुना। अब अगले अध्ययन अथवा वर्ग का क्या अर्थ कथन किया है। यह कृपा कर बताइये।

।। इइ बिइयमज्झयणं-द्वितीय अध्ययन समाप्त ।।

तइयमज्झयणं-तृतीय अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **तच्चस्स उक्खेवओ। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुण सिलए चेइए, सेणिए राया। चेल्लणा देवी। तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं मालागारे परिवसइ। अड्ढे जाव अपरिभूए। तस्स णं अज्जुणयस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था सुकुमाल पाणिपाया। तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स रायगिहस्स नयरस्स बहिया एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था। कण्हे जाव निकुरंबभूए दसद्धवण्ण-कुसुम-कुसुमिए, पासाइए। तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स अज्जयपज्जयपिइ-पज्जयागए अणेगकुलपुरिसपरंपरागए मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था। पोराणे दिव्वे, सच्चे जहा पुण्णभद्दे। तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा एगं महं फलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ।**

संस्कृत छाया- तृतीयस्य उत्क्षेपकः। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलकं चैत्यं श्रेणिको राजा, चेल्लना देवी। तत्र खलु राजगृहे नगरे अर्जुनो नाम मालाकारः परिवसति (स्म)। आढ्यः यावत् अपराभूतः। तस्य खलु अर्जुनस्य बंधुमती नामा भार्या आसीत् सुकुमार-पाणिपादा। तस्य खलु अर्जुनस्य मालाकारस्य राजगृहस्य नगराद् बहिः अत्र खलु महान् एकः पुष्पारामः आसीत्। कृष्णः यावत् निकुरंबभूतः दशार्द्धवर्णकुसुमकुसुमितः प्रासादीयः। तस्य खलु पुष्पारामस्य अदूरसामन्ते तत्र खलु अर्जुनकस्य मालाकारस्य आर्यक-प्रार्यक-पितृपर्यायागतम् अनेक-कुल-पुरुषपरंपरागतं मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनं आसीत्। पुराणं दिव्यं सत्यं यथा पूर्णभद्रम्। तत्र खलु मुद्गरपाणेः प्रतिमा एकं महान्तं पलसहस्रनिष्पन्नम् अयोमयं मुद्गरं गृहीत्वा तिष्ठति।

अन्वायार्थ–तच्चस्स उक्खेवओ = तीसरे अध्ययन का उत्क्षेपक–हे भगवन् ! श्रमण भगवान महावीर ने छठे वर्ग के दूसरे अध्ययन का जो भाव फरमाया वह सुना, अब तीसरे अध्ययन का प्रभु ने क्या भाव प्रकट किया है ? **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं =** इस प्रकार हे जम्बू ! उस काल उस, **समएणं रायगिहे नयरे गुण सिलए =** समय में राजगृह नगर में गुणशील, **चेइए =** उद्यान था। **सेणिए राया =** श्रेणिक राजा था उसकी, **चेल्लणा देवी =** चेलना रानी थी। **तत्थ णं रायगिहे नयरे अज्जुणए नामं =** वहाँ राजगृह नगर में अर्जुन नाम वाला, **मालागारे परिवसइ =** मालाकार रहता था। **अड्ढे जाव =** वह धन–सम्पन्न, **अपरिभूए =** तथा अपराजित था। **तस्स णं अज्जुणयस्स बंधुमई नामं भारिया होत्था =** उस अर्जुन मालाकार के बंधुमती नाम की भार्या थी, **सुकुमाल पाणिपाया =** जो कोमल हाथ पैर (शरीर) वाली थी। **तस्स णं अज्जुणयस्स मालागारस्स =** उस अर्जुन मालाकार का, **रायगिहस्स नयरस्स बहिया =** राजगृह नगर के बाहर, **एत्थ णं महं एगे पुप्फारामे होत्था =** एक विशाल फूलों का बगीचा था। **कण्हे जाव निकुरंबभूए =** वह उद्यान श्यामल यावत् हरा भरा था। **दसद्धवण्ण–कुसुम–कुसुमिए पासाइए =** वहाँ पाँच वर्ण के फूल खिले हुए थे। वह उद्यान मन को प्रसन्न करने वाला था। **तस्स णं पुप्फारामस्स अदूरसामंते =** उस फूलों के बगीचे के पास ही, **तत्थ णं अज्जुणयस्स मालागारस्स =** वहाँ उस अर्जुन मालाकार के, **अज्जयपज्जयपिइपज्जयागए =** पिता पितामह प्रपितामह से चला आया, **अणेगकुल–पुरिसपरंपरागए =** अनेक, कुलपुरुषों की परम्परा से सेवित, **मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स =** मुद्गरपाणियक्ष का, **जक्खाययणे होत्था =** यक्षायतन था। **पोराणे दिव्वे, सच्चे जहा पुण्णभद्दे =** वह यक्षायतन प्राचीन दिव्य और सत्यप्रभाव वाला था जैसे पूर्णभद्र। **तत्थ णं मोग्गरपाणिस्स पडिमा =** वहाँ पर मुद्गरपाणि की प्रतिमा, **एगं महं फलसहस्सणिप्फण्णं =** एक हजार पल भार वाला, **अयोमयं मोग्गरं गहाय चिट्ठइ =** बड़ा लोहमय मुद्गर लिये हुए खड़ी थी।

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–''हे भगवन्! श्रमण भगवान महावीर ने छट्ठे वर्ग के दूसरे अध्ययन का भाव बताया सो सुना। अब तीसरे अध्ययन का प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर वह भी बताइये।''

श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू! उस काल उस समय में राजगृह नामका एक नगर था। वहाँ गुणशीलक नामक एक उद्यान था। उस नगर में राजा श्रेणिक राज्य करते थे उनकी रानी का नाम 'चेलना' था।

उस राजगृह नगर में 'अर्जुन' नाम का एक माली रहता था। उसकी पत्नी का नाम 'बन्धुमती' था, जो अत्यन्त सुन्दर एवं सुकुमार थी।

उस अर्जुनमाली का राजगृह नगर के बाहर एक बड़ा पुष्पाराम (फूलों का बगीचा) था। वह बगीचा नीले एवं सघन पत्तों से आच्छादित होने के कारण आकाश में चढ़ी घनघोर घटाओं के समान श्याम कान्ति से युक्त प्रतीत होता था। उसमें पाँचों वर्णों के फूल खिले हुए थे। वह बगीचा इस भाँति हृदय को प्रसन्न एवं प्रफुल्लित करने वाला बड़ा दर्शनीय था।

उस पुष्पाराम यानी फुलवाड़ी के समीप ही मुद्‌गरपाणि नामक एक यक्ष का यक्षायतन था, जो उस अर्जुन माली के पुरखों बाप-दादों से चली आई कुल परम्परा से सम्बन्धित था। वह 'पूर्णभद्र' चैत्य के समान पुराना, दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला था।

उसमें 'मुद्‌गर पाणि' नामक यक्ष की एक प्रतिमा थी, जिसके हाथ में एक हजार पल-परिमाण (वर्तमान तोल के अनुसार लगभग 62।। सेर तदनुसार लगभग 57 किलो) भारवाला लोहे का मुद्‌गर था।

सूत्र 2

मूल- **तए णं से अज्जुणए मालागारे बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि जक्खस्स भत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता पुप्फच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ करित्ता जाणुपायपडिए पणामं करेइ, करित्ता तओ पच्छा रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।**

संस्कृत छाया- ततः खलु सः अर्जुनकः मालाकारः बालप्रभृत्येव मुद्‌गरपाणियक्षस्य भक्तश्चाप्यभवत् प्रतिदिनं पच्छिपिटकानि गृह्णाति, गृहीत्वा राजगृहात् नगरात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव पुष्पारामः तत्रैव उपागच्छति। उपागत्य पुष्पोच्चयं करोति, कृत्वा अग्राणि वराणि पुष्पाणि गृहीत्वा यत्रैव मुद्‌गरपाणेः यक्षायतनम् तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य मुद्‌गरपाणेः यक्षस्य महार्हं पुष्पार्चनकं करोति, कृत्वा जानुपादपतितः प्रणामं करोति कृत्वा तत्पश्चात् राजमार्गे वृत्तिं कल्पमानः विहरति।

अन्वयार्था-तए णं से अज्जुणए मालागारे = वह अर्जुन मालाकार, **बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणि जक्खस्स** = बचपन से ही मुद्‌गरपाणि यक्ष का, **भत्ते यावि होत्था** = भक्त हो गया था। **कल्लाकल्लिं पच्छिपिडगाइं** = वह प्रतिदिन बाँस की छबड़ी, **गिण्हइ, गिण्हित्ता रायगिहाओ** = उठाता तथा उठाकर राजगृह, **नयराओ पडिणिक्खमइ** = नगर से बाहर निकलता, **पडिणिक्खमित्ता जेणेव पुप्फारामे** = व निकलकर जहाँ फूलों का बगीचा है, **तेणेव उवागच्छइ** = वहाँ पर आता, **उवागच्छित्ता पुप्फच्चयं करेइ** = आकर पुष्पों का चयन करता, **करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय** = करके अग्रणी श्रेष्ठ फूलों को

लेकर, **जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खायणे =** जहाँ पर मुद्गरपाणि का यक्षायतन था, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता =** वहाँ आता, आकर, **मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स महरिहं =** मुद्गरपाणि यक्ष का उत्तमोत्तम, **पुप्फच्चयणं करेइ करित्ता =** फूलों से अर्चन करता, करके, **जाणुपायपडिए पणामं करेइ =** पंचाङ्ग प्रणाम करता, **करित्ता तओ पच्छा रायमग्गंसि =** इसके बाद राजमार्ग पर फूल बेचकर, **वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ =** अपनी आजीविका चलाया करता था।

भावार्थ–वह अर्जुन माली बचपन से ही उस मुद्गर पाणि यक्ष का अनन्य उपासक था। प्रतिदिन बांस की छबड़ी लेकर वह राजगृह नगर से बाहर स्थित अपनी उस फुलवाड़ी में जाता था और फूलों को चुन-चुन कर एकत्रित करता था। फिर उन फूलों में से उत्तम-उत्तम फूलों को छाँटकर उन्हें उस मुद्गर पाणि यक्ष के ऊपर चढ़ाता था। इस प्रकार वह उत्तमोत्तम फूलों से उस यक्ष की पूजा अर्चना करता और भूमि पर दोनों घुटने टेककर उसे प्रणाम करता। इसके बाद राजमार्ग के किनारे बाजार में बैठकर उन फूलों को बेचकर अपनी आजीविका उपार्जन करता हुआ सुखपूर्वक वह अपना जीवन बिता रहा था।

सूत्र 3

मूल– **तत्थ णं रायगिहे नयरे ललिया नामं गोट्ठी परिवसइ, अड्ढा जाव अपरिभूया, जं कयसुकया यावि होत्था। तए णं रायगिहे नयरे अण्णया कयाइं पमोए घुट्ठे यावि होत्था। तए णं से अज्जुणए मालागारे 'कल्लं पभूयतरएहिं पुप्फेहिं कज्जं' इति कट्टु पच्चूसकालसमयंसि बंधुमईए भारियाए सद्धिं पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ॥3॥**

संस्कृत छाया– तत्र खलु राजगृहे नगरे ललिता-नाम गोष्ठी परिवसति, आढ्या: यावत् अपरिभूता, यत्कृतसुकृता चापि आसीत्। तत: खलु राजगृहे नगरे अन्यदा कदाचित् प्रमोद: घुष्ट: चापि अभवत्। तत्र खलु स: अर्जुन: मालाकार: 'कल्ये प्रभूततरकै: पुष्पै: कार्यम्।' इति कृत्वा प्रत्यूष:काले बन्धुमत्या भार्यया सार्द्धं पच्छिपिटकानि गृह्णाति, गृहीत्वा स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यति प्रतिनिष्क्रम्य राजगृहं नगरं मध्यं मध्येन निर्गच्छति, निर्गत्य यत्रैव पुष्पाराम: तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य, बंधुमत्या भार्यया सार्द्धं पुष्पोच्चयं करोति॥3॥

अन्वायार्थ–तत्थ णं रायगिहे नयरे ललिया नामं = वहाँ राजगृह नगर में ललिता नाम की, **गोट्ठी परिवसइ** = गोष्ठी (मित्र मंडली) रहती थी, **अड्डा जाव अपरिभूया** = वह ऋद्धि संपन्न यावत् किसी से पराभव पाने वाली नहीं थी, **जं कयसुकया यावि होत्था** = जो राजा के अनुग्रह के कारण मनमाने काम करने में स्वच्छन्द थी। **तए णं रायगिहे नयरे अण्णया** = फिर राजगृह नगर में बाद में किसी, **कयाइं पमोए घुट्ठे यावि होत्था** = दिन प्रमोदोत्सव की घोषणा हुई। **तए णं से अज्जुणए मालागारे** = तत्पश्चात् अर्जुन मालाकार ने सोचा, **'कल्लं पभूयतरएहिं पुप्फेहिं कज्जं'** = ''कल बहुत फूलों की माँग होगी'', **इति कट्टु पच्चूस–काल–समयंसि** = यह सोचकर उसने प्रातः काल जल्दी, **बंधुमईए भारियाए सद्धिं** = उठकर बन्धुमती भार्या को साथ लिया, **पच्छिपिडगाइं गिण्हइ, गिण्हित्ता** = बाँस की छाब (टोकरी) ली, **सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ,** = लेकर अपने घर से निकला, **पडिणिक्खमित्ता रायगिहं** = निकलकर राजगृह, **नयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ** = नगर के मध्य–मध्य से चलता हुआ निकल जाता है, **णिग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फारामे** = तथा निकलकर जहाँ फूलों का बगीचा है, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = वहाँ आता है, वहाँ आकर, **बंधुमईए भारियाए सद्धिं** = अपनी बन्धुमती पत्नी के साथ, **पुप्फुच्चयं करेइ** = पुष्पों का चयन शुरु कर देता है ।।3 ।।

भावार्थ–उस राजगृह नगर में 'ललिता' नाम की एक गोष्ठी (मित्र मंडली) थी। जिसके अत्यन्त समृद्ध और दूसरों से अपराभूत ऐसे कुछ व्यक्ति सदस्य थे। किसी समय नगर के राजा का कोई हित–कार्य सम्पादन करने के कारण राजा ने उस मित्र मंडली पर प्रसन्न होकर अभयदान दे दिया कि वे अपनी इच्छानुसार कोई भी कार्य करने में स्वतन्त्र हैं। राज्य की ओर से उन्हें पूरा संरक्षण था इस कारण यह गोष्ठी बहुत उच्छृंखल और स्वच्छन्द बन गई।

एक दिन राजगृह नगर में एक उत्सव मनाने की घोषणा हुई।

इस पर अर्जुनमाली ने अनुमान लगाया कि कल इस उत्सव के अवसर पर फूलों की भारी माँग होगी। इसलिए उस दिन वह प्रातःकाल जल्दी ही उठा और बांस की छबड़ी लेकर अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ जल्दी घर से निकल कर नगर में होता हुआ अपनी फुलवाड़ी में पहुँचा और अपनी पत्नी के साथ फूलों को चुन–चुन कर एकत्रित करने लगा।

सूत्र 4

मूल– **तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए छ, गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागया अभिरममाणा चिट्ठंति। तए णं से अज्जुणए मालागारे बन्धुमईए भारियाए सद्धिं पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स**

जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ। तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा अज्जुणयं मालागारं बंधुमईए भारियाए सद्धिं एज्जमाणं पासइ पासित्ता अण्णमण्णं एवं वयासी एस खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणयं मालागारं अवओडयबंधणयं करित्ता बंधुमईए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए। त्तिकट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता कवाडंतरेसु निलुक्कंति, णिच्चला णिप्फंदा, तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति।।4।।

संस्कृत छाया– ततः खलु ललितायाः गोष्ठ्याः षड् गौष्ठिकाः पुरुषाः यत्रैव मुद्गरपाणेर्यक्षस्य यक्षायतनं तत्रैव उपागताः, अभिरममाणाः तिष्ठन्ति। ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः बन्धुमत्या भार्यया सार्द्धं पुष्पोच्चयं करोति, कृत्वा अग्राणि वराणि पुष्पाणि गृहीत्वा यत्रैव मुद्गरपाणेर्यक्षस्य यक्षायतनं तत्रैव उपागच्छति। ततः खलु ते षड् गौष्ठिकाः पुरुषाः अर्जुनं मालाकारम् बन्धुमत्या भार्यया सार्द्धम् एजमानम् (आगच्छंतं) पश्यति, दृष्ट्वा अन्योन्यम् एवम् अवदत् एष खलु देवानुप्रियाः! अर्जुनः मालाकारः बन्धुमत्या भार्यया सार्द्धं इह शीघ्रमागच्छति, तत् श्रेयः खलु देवानुप्रियाः! अर्जुनं मालाकारम् अवकोटकबंधनकं कृत्वा बन्धुमत्या भार्यया सार्द्धं विपुलान् भोग-भोगान् भुंजमानानां (मध्ये) विहर्तुम्। इति कृत्वा एनमर्थम् अन्योन्यस्य प्रतिशृण्वन्ति, प्रतिश्रुत्य कपाटान्तरेषु निलुक्कन्ति, निश्चलाः निस्पंदाः तूष्णीकाः प्रच्छन्नाः तिष्ठन्ति।।4।।

अन्वायार्थ–तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए = तब उसी समय 'ललिता' मंडली के, **छ, गोट्ठिल्ला पुरिसा जेणेव** = छ गौष्ठिक पुरुष, जहाँ, **मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स** = मुद्गरपाणि यक्ष का, **जक्खाययणे तेणेव उवागया** = यक्षायतन था वहाँ आये और, **अभिरममाणा चिट्ठंति** = आपस में परिहास क्रीड़ादि करने लगे। **तए णं से अज्जुणए मालागारे** = उस समय अर्जुन माली ने, **बन्धुमईए भारियाए सद्धिं** = बन्धुमती भार्या के साथ, **पुप्फुच्चयं करेइ, करित्ता** = पुष्पों का चयन किया, करके, **अग्गाइं वराइं पुप्फाइं गहाय** = श्रेष्ठ फूलों को ग्रहण कर (लेकर), **जेणेव मोग्गरपाणिस्स** = जहाँ मुद्गरपाणि, **जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ** = यक्ष का यक्षायतन था वहाँ पर आया (आता है)। **तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा** = तब उन छः ललित गौष्ठिक पुरुषों ने, **अज्जुणयं मालागारं** = अर्जुन मालाकार को,

बंधुमईए भारियाए सद्धिं = बन्धुमती भार्या के साथ, **एज्जमाणं पासइ पासित्ता** = आते हुए देखा और देखकर, **अण्णमण्णं एवं वयासी** = आपस में यों बोले-, **एस खलु देवाणुप्पिया!** = हे देवानुप्रियों!, **अज्जुणए मालागारे बंधुमईए** = यह अर्जुन मालाकार बन्धुमती, **भारियाए सद्धिं इहं हव्वमागच्छइ** = भार्या के साथ यहाँ शीघ्र आ रहा है, इसलिये, **तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणयं मालागारं** = हे देवानुप्रियों! आनंद इसी में है कि अर्जुन मालाकार, **अवओडयबंधणयं करित्ता** = को उल्टी मुश्क से बाँधकर उसकी, **बंधुमईए भारियाए सद्धिं** = बन्धुमती स्त्री के साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणाणं विहरित्तए** = अनेक भोगों को भोगते हुए विचरण करें, **त्तिकट्टु एयमट्ठं अण्णमण्णस्स** = इस प्रकार विचार कर उन्होंने परस्पर, **पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता** = एक-दूसरे की बात सुनी व सुनकर, **कवाडंतरेसु निलुक्कंति, णिच्चला णिप्फंदा** = कपाट के पीछे छिप गये, बिल्कुल अचल व स्पन्दन रहित होकर, **तुसिणीया पच्छण्णा चिट्ठंति** = चुपचाप छिपकर बैठ गये।।4।।

भावार्थ-उस समय पूर्वोक्त 'ललित' गोष्ठी के छ: गौष्ठिक पुरुष मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन में आकर आमोद-प्रमोद एवं परस्पर खेलकूद करने लगे। उधर अर्जुनमाली अपनी पत्नी बन्धुमती के साथ फूल-संग्रह करके उनमें से कुछ उत्तम फूल छाँटकर उनसे नित्य नियम के अनुसार मुद्गरपाणि यक्ष की पूजा करने के लिये यक्षायतन की ओर चला। उन छ: गौष्ठिक पुरुषों ने अर्जुनमाली को बंधुमती भार्या के साथ यक्षायतन की ओर आते हुए देखा। देखकर परस्पर विचार करके निश्चय किया-'हे मित्रों! यह अर्जुनमाली अपनी बंधुमती भार्या के साथ इधर ही आ रहा है। हम लोगों के लिये यह उत्तम अवसर है कि ऐसे मौके पर इस अर्जुन माली को तो औंधी मुश्कियों (दोनों हाथों को पीठ पीछे) से बलपूर्वक बान्धकर एक ओर पटक दें और फिर इसकी इस सुन्दर स्त्री बन्धुमती के साथ खूब काम-क्रीड़ा करें।''

यह निश्चय करके वे छहों उस यक्षायतन के किवाड़ों के पीछे छिप कर निश्चल खड़े हो गये और उन दोनों के यक्षायतन के भीतर प्रविष्ट होने की श्वास रोककर प्रतीक्षा करने लगे।

सूत्र 5

मूल- **तए णं से अज्जुणए मालागारे बंधुमईए भारियाए सद्धिं जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, आलोए पणामं करेइ, करित्ता महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ करित्ता, जाणुपायपडिए पणामं करेइ। तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता, अज्जुणयं मालागारं गिण्हित्ता अवओडय-बंधणं करेंति करित्ता, बंधुमईए मालागारीए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं**

भुंजमाणा विहरंति तए णं तस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमज्झत्थिए समुप्पण्णे-''एवं खलु अहं बालप्पभिइं चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ कल्लाकल्लिं जाव वित्तिं कप्पेमाणे विहरामि। तं जई णं मोग्गरपाणि-जक्खे इह सण्णिहिए होंते से णं किं ममं एयारूवं आवत्तिं पावेज्जमाणं पासंते, तं नत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णिहिए, सुव्वत्तं तं एस कट्ठे।''

संस्कृत छाया- ततः खलु सोऽर्जुनः मालाकारः बंधुमत्या भार्यया सार्द्धं यत्रैव मुद्‌गरपाणेर्यक्षा-यतनं तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य आलोकयन् प्रणामं करोति, कृत्वा महार्हं पुष्पोच्चयं करोति, कृत्वा जानुपादपतितः प्रणामं करोति। ततः खलु ते षड् गौष्ठिकाः पुरुषाः द्रुतद्रुतेन कपाटान्तरात् निर्गच्छन्ति, निर्गत्य अर्जुनं मालाकारं गृहीत्वा अवकोटकबंधनं कुर्वन्ति कृत्वा बंधुमत्या मालाकारिण्या सार्द्धं विपुलान् भोगभोगान् भुंजमानाः विहरन्ति। ततः खलु तस्य अर्जुनस्य मालाकारस्य अयम् अध्यवसायः (विचारः) समुत्पन्नः-एवं खलु अहं बालप्रभृत्यैव मुद्‌गरपाणेः भगवतः कल्याकल्यिं यावत् वृत्तिं कल्पयन् विहरामि। तद् यदि खलु मुद्‌गर-पाणियक्षः इह सन्निहितः भवेत् सः खलु किं माम् एतद्रूपाम् आपत्तिं प्राप्नुवन्तं पश्येत् ? तत् नास्ति खलु मुद्‌गरपाणियक्षः इह सन्निहितः, सुव्यक्तं तत् एतत् काष्ठमेव। (न तु यक्षः)

अन्वायार्थ-तए णं से अज्जुणए मालागारे = तदनन्तर वह अर्जुन मालाकार, **बंधुमईए भारियाए सद्धिं =** बन्धुमती भार्या के साथ, **जेणेव मोग्गरपाणिस्स जक्खाययणे =** जहाँ पर मुद्‌गरपाणियक्ष का यक्षायतन था, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता =** वहाँ आया और आकर मुद्‌गरपाणि को, **आलोए पणामं करेइ, करित्ता =** देखता हुआ प्रणाम करता है, करके, **महरिहं पुप्फच्चयणं करेइ =** बहुमूल्य पुष्प चढ़ाये, **करित्ता, जाणुपायपडिए =** चढ़ाकर घुटनों के बल गिरकर, **पणामं करेइ =** प्रणाम किया। **तए णं ते छ गोट्ठिल्ला पुरिसा =** तब वे छः ही गौष्ठिक पुरुष, **दवदवस्स कवाडंतरेहिंतो =** जल्दी जल्दी किंवाड के पीछे से, **णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता =** निकले और निकलकर, **अज्जुणयं मालागारं गिण्हित्ता =** अर्जुन मालाकार को पकड़कर, **अवओडयबंधणं करेंति =** औंधी मुश्की से बांध दिया। **करित्ता, बंधुमईए मालागारीए सद्धिं =** बांधकर बन्धुमती मालिनी के साथ, **विउलाइं भोगभोगाइं =** अनेक प्रकार के भोगों को, **भुंजमाणा विहरंति =** भोगते हुए विचरण करने लगे। **तए णं तस्स अज्जुणयस्स =** उस समय उस

अर्जुन, **मालागारस्स अयमज्झत्थिए** = माली के मन में यह विचार, **समुप्पण्णे–** = उत्पन्न हुआ कि–, **एवं खलु अहं बालप्पभिइं** = मैं अपने बचपन से ही, **चेव मोग्गरपाणिस्स भगवओ** = मुद्‌गरपाणि भगवान की, **कल्लाकल्लिं जाव वित्तिं** = प्रतिदिन यावत् पूजा करके फिर, **कप्पेमाणे विहरामि। =** आजीविका पूरी करता आ रहा हूँ। **तं जई णं मोग्गरपाणिजक्खे** = अत: यदि मुद्‌गरपाणि यक्ष, **इह सण्णिहिए होंते** = यहाँ मौजूद होता, **से णं किं ममं एयारूवं आवत्तिं** = तो क्या वह मुझे इस प्रकार आपत्ति, **पावेज्जमाणं पासंते** = में पड़ा देखता ? **तं नत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे** = इसलिये निश्चय ही यहाँ मुद्‌गरपाणि, **इह सण्णिहिए, सुव्वत्तं** = यक्ष मौजूद नहीं है यह तो स्पष्ट ही, **तं एस कट्ठे** = केवल काष्ठ है।

भावार्थ–इधर अर्जुनमाली अपनी बन्धुमती भार्या के साथ यक्षायतन में प्रविष्ट हुआ और भक्तिपूर्वक प्रफुल्लित नेत्रों से मुद्‌गरपाणि यक्ष की ओर देखा। फिर चुने हुए उत्तमोत्तम फूल उस पर चढ़ाकर दोनों घुटने भूमि पर टेककर साष्टांग प्रणाम करने लगा। उसी समय शीघ्रता से उन छ: गौष्ठिक पुरुषों ने किवाडों के पीछे से निकल कर अर्जुनमाली को पकड़ लिया और उसकी औंधी मुश्कें बांधकर उसे एक ओर पटक दिया। फिर उसकी पत्नी बन्धुमती मालिन के साथ विविध प्रकार से काम–क्रीड़ा करने लगे।

यह देखकर उस समय अर्जुनमाली के मन में यह विचार आया–''देखो, मैं अपने बचपन से ही इस मुद्‌गरपाणि को अपना इष्टदेव मानकर इसकी प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पूजा करता आ रहा हूँ। इसकी पूजा करने के बाद ही इन फूलों को बेचकर अपना जीवन–निर्वाह करता रहा हूँ।

तो यदि मुद्‌गरपाणि यक्ष देव यहाँ वास्तव में ही होता तो क्या मुझे इस प्रकार विपत्ति में पड़े हुए को देखकर चुप रहता ? इसलिये यह निश्चय होता है कि वास्तव में यहाँ मुद्‌गरपाणि यक्ष नहीं है। यह तो मात्र काष्ठ का पुतला है।

मूल– **तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे अज्जुणयस्स मालागारस्स अयमेवारूवं अज्झत्थियं जाव वियाणित्ता, अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तडतडस्स बंधाइं छिंदइ, तं पलसहस्स–निप्फण्णं अओमयं मोग्गरं गिण्हइ, गिण्हित्ता ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स नयरस्स परिपेरंते णं कल्लाकल्लिं इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएमाणे विहरइ।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः मुद्गरपाणियक्षः अर्जुनस्य मालाकारस्य इदम् एतद् रूपम् अध्यवसायं यावत् विज्ञाय, अर्जुनस्य मालाकारस्य शरीरम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य, 'तडतड' इतिशब्देन बन्धनानि छिनत्ति, तं पलसहस्रनिष्पन्नम् अयोमयं मुद्गरं गृह्णाति, गृहीत्वा तान् स्त्रीसप्तमान् षट् पुरुषान् घातयति ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः मुद्गरपाणिना यक्षेण अन्वाविष्टः सन् राजगृहस्य नगरस्य परिपर्यन्ते खलु कल्याकल्यिं स्त्रीसप्तमान् षट् पुरुषान् घातयन् विहरति।

अन्वायार्थ–तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे = तब उस मुद्गरपाणि यक्ष ने, **अज्जुणयस्स मालागारस्स** = अर्जुनमालाकार के, **अयमेवारूवं अज्झत्थियं जाव** = इस प्रकार के मनोगत भावों को, **वियाणित्ता, अज्जुणयस्स मालागारस्स** = यावत् जानकर, अर्जुन मालाकार के, **सरीरयं अणुप्पविसइ** = शरीर में प्रवेश कर लिया, **अणुप्पविसित्ता तडतडस्स** = प्रविष्ट होकर तड़-तड़ करके, **बंधाइं छिंदइ** = सब बन्धनों को काट दिया, **तं पलसहस्सणिप्फण्णं अओमयं** = और उस हजार पलभार से निर्मित लोहे के, **मोग्गरं गिण्हइ, गिण्हित्ता** = मुद्गर को लेकर उन, **ते इत्थिसत्तमे छ पुरिसे घाएइ** = स्त्री जिनमें सातवीं है ऐसे छहों गोष्ठी पुरुषों को मार डालता है। **तए णं से अज्जुणए मालागारे** = तब वह अर्जुन मालाकार, **मोग्गरपाणिणा जक्खेणं** = मुद्गरपाणि यक्ष से, **अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स** = आविष्ट होकर राजगृह, **नयरस्स परिपेरंते णं** = नगर के आसपास चारों ओर, **कल्लाकल्लिं इत्थिसत्तमे छ पुरिसे** = प्रतिदिन छः पुरुषों और सातवीं स्त्री को, **घाएमाणे विहरइ** = मारता हुआ विचरने लगा।

भावार्थ–तब मुद्गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के इस प्रकार के मनोगत भावों को जानकर उस के शरीर में प्रवेश किया और उसके बन्धनों को तड़ातड़ तोड़ डाला।

अब उस मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट उस अर्जुन माली ने उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्गर को हाथ में लेकर अपनी बन्धुमती भार्या सहित उन छहों गौष्ठिक पुरुषों को उस मुद्गर के प्रहार से मार डाला।

इस प्रकार इन सातों प्राणियों को मारकर मुद्गरपाणि यक्ष से आविष्ट (वशीभूत) वह अर्जुनमाली राजगृह नगर की बाहरी सीमा के आस-पास चारों ओर 6 पुरुष और 1 स्त्री को मिला कर 7 प्राणियों की प्रतिदिन हत्या करते हुए घूमने लगा।

सूत्र 7

मूल– **तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ ''एवं खलु देवाणुप्पिया ! अज्जुणए मालागारे मोग्गर-पाणिणा जक्खेणं अणाइट्ठे समाणे रायगिहे बहिया इत्थिसत्तमे छ**

पुरिसे घाएमाणे विहरइ।'' तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-''एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ। तं माणं तुब्भे केइ तणस्स वा, पुप्फफलाणं वा अट्ठाए सइरं णिग्गच्छउ मा णं तस्स सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ। त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह, घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं पच्चप्पिणह।'' तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा जाव पच्चप्पिणंति।।7।।

संस्कृत छाया- ततः खलु राजगृहे नगरे शृंगाटक यावत् महापथेषु बहुजनः अन्योन्यस्य एवमाख्याति ''एवं खलु देवानुप्रियाः ! अर्जुनः मालाकारः मुद्गरपाणिना यक्षेण अन्वाविष्टः सन् राजगृहात् बहिः स्त्री सप्तमान् षट् पुरुषान् घातयन् विहरति।'' ततः खलु सः श्रेणिकः राजा अस्याः कथायाः लब्धार्थः सन् कौटुम्बिकपुरुषान् शब्दाययति, शब्दाययित्वा एवम् अवदत्-''एवं खलु देवानुप्रियाः! अर्जुनकः मालाकारः यावत् घातयन् विहरति। तस्मात् मा खलु युष्माकं (मध्ये) कोऽपि तृणस्य वा काष्ठस्य वा पानीयस्य वा पुष्पफलानां वा अर्थाय सकृदपि निर्गच्छतु। मा खलु तस्य शरीरस्य व्यापत्तिः भविष्यति। इति कृत्वा द्वितीयमपि तृतीयमपि घोषणाम् घोषयत, घोषयित्वा क्षिप्रमेव ममैतामाज्ञाम् प्रत्यर्पयत।'' ततः खलु ते कौटुम्बिकपुरुषाः यावत् प्रत्यर्पयन्ति।।7।।

अन्वायार्थ-तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग = उस समय राजगृह नगर के शृंगाटक, **जाव महापहेसु बहुजणो** = आदि राजमार्गों पर बहुत से लोग, **अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ** = परस्पर इस प्रकार कहने लगे-, **एवं खलु देवाणुप्पिया! अज्जुणए** = हे देवानुप्रियों! अर्जुन, **मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं** = माली मुद्गरपाणि यक्ष से, **अणाइट्ठे समाणे रायगिहे** = आविष्ट होकर राजगृह नगर के, **बहिया इत्थिसत्तमे छ पुरिसे** = बाहर छः पुरुषों और सातवीं स्त्री को, **घाएमाणे विहरइ** = मारता हुआ विचरण कर रहा है। **तए णं से सेणिए राया** = इसके बाद राजा श्रेणिक को जब, **इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे** = यह बात मालूम हुई तब उन्होंने, **कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ,** = अपने सेवकों को बुलाया, **सद्दावित्ता एवं वयासी-** = और बुलाकर इस प्रकार कहा-, **एवं खलु देवाणुप्पिया!** = हे देवानुप्रियों!, **अज्जुणए मालागारे जाव** = अर्जुन माली यावत् (सात जनों को), **घाएमाणे विहरइ** = मारता हुआ घूम रहा है। **तं माणं तुब्भे केइ तणस्स वा,** = इसलिये तुम में से कोई भी घास के लिए, **पुप्फफलाणं वा**

अट्ठाए सइरं = काष्ठ के लिये, जल के लिये अथवा फल फूलादि के लिए, **णिग्गच्छउ मा णं तस्स =** एक बार भी बाहर मत निकलो जिससे, **सरीरस्स वावत्ती भविस्सइ =** कि तुम्हारे शरीर का नाश न होवे। **त्ति कट्टु दोच्चं पि तच्चं पि घोसणं घोसेह =** इस प्रकार दूसरी बार भी, तीसरी बार भी घोषणा करो। **घोसित्ता खिप्पामेव ममेयं =** घोषणा करके शीघ्र ही मुझे इसकी, **पच्चप्पिणह =** वापस सूचना दो, **तए णं ते कोडुंबिय पुरिसा =** तदनन्तर उन आज्ञाकारी पुरुषों ने, **जाव पच्चप्पिणंति =** यावत् वापस सूचित कर दिया।।7।।

भावार्थ–उस समय राजगृह नगर में शृंगाटकों में राजमार्गों आदि सभी स्थानों में बहुत से लोग परस्पर इस प्रकार बोलने लगे–''हे देवानुप्रियों! अर्जुनमाली मुद्गरपाणि यक्ष के वशीभूत होकर राजगृह नगर के बाहर एक स्त्री और 6 पुरुषों, इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मार रहा है।''

इसके बाद जब श्रेणिक राजा ने यह बात सुनी तो उन्होंने अपने सेवक पुरुषों को बुलाया और उनको इस प्रकार कहा–''हे देवानुप्रियों! राजगृह नगर के बाहर अर्जुनमाली यावत् छः पुरुष और एक स्त्री इस प्रकार सात व्यक्तियों को प्रतिदिन मारता हुआ घूम रहा है।

इसलिए तुम सारे नगर में मेरी आज्ञा को इस प्रकार प्रसारित करो कि यदि नागरिकों की इच्छा जीवित रहने की हो तो कोई तृण के लिये, काष्ठ, पानी अथवा फल फूल के लिए राजगृह नगर के बाहर न निकले। यदि वे कहीं बाहर निकले, तो ऐसा न हो कि उनके शरीर का विनाश हो जाय।

हे देवानुप्रियों! इस प्रकार दो तीन बार घोषणा करके मुझे सूचित करो।

इस प्रकार राजाज्ञा पाकर राज्याधिकारियों ने राजगृह नगर में घूम–घूमकर उपर्युक्त राजाज्ञा की घोषणा की और घोषणा करके राजा को सूचित कर दिया।

सूत्र 8

मूल– **तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए यावि होत्था। अभिगय–जीवाजीवे जाव विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे जाव विहरइ। तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग जाव महापहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ–जाव किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे। एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं**

महावीरं वंदामि नमंसामि एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं जाव एवं वयासी-एवं खलु अम्मयाओ ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि जाव पज्जुवासामि ।।8 ।।

संस्कृत छाया- तत्र खलु राजगृहे नगरे सुदर्शन: नाम श्रेष्ठी परिवसति, आढ्य: यावत् अपरिभूत: । तत: खलु स: सुदर्शन: श्रमणोपासक: चापि अभवत् । अभिगतजीवाजीव: यावत् विहरति । तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणो भगवान् महावीर: समवसृत: यावत् विहरति । तत: खलु राजगृहे नगरे शृंगाटक यावत् महापथेषु बहुजन: अन्योन्यस्मै एवमाख्याति-यावत् किमंग पुन: विपुलस्य अर्थस्य ग्रहणेन ? तत: खलु तस्य सुदर्शनस्य बहुजनस्य अन्तिके एतमर्थं श्रुत्वा निशम्य अयमाध्यात्मिक: यावत् समुत्पन्न: । एवं खलु श्रमणो भगवान् महावीर: यावत् विहरति । तत् गच्छामि खलु श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दामि नमस्यामि एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य करतलपरिगृहीतं यावदेवमवदत्-एवं खलु अम्बातातौ ! श्रमण: भगवान् महावीर: यावत् विहरति । तत् गच्छामि खलु श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे नमस्यामि यावत् पर्युपासे ।।8 ।।

अन्वायार्थ-तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं = वहाँ राजगृह नगर में सुदर्शन नामक, **सेट्ठी परिवसइ, अड्ढे** = सेठ रहता था, वह धन सम्पन्न, **जाव अपरिभूए** = यावत् अपराजित था। **तए णं से सुदंसणे समणोवासए** = वह सुदर्शन श्रमणोपासक, **यावि होत्था** = भी था। यावत्, **अभिगयजीवाजीवे जाव विहरइ** = वह जीवाजीव का जानकार था। **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **समणे भगवं महावीरे** = श्रमण भगवान महावीर, **समोसढे जाव विहरइ** = पधारे यावत् विचरने लगे। **तए णं रायगिहे नयरे** = तब राजगृह नगर में, **सिंघाडग जाव महापहेसु** = शृंगाटक आदि महापथों में, **बहुजणो अण्णमण्णस्स** = बहुत से लोग परस्पर यह कहने लगे-, **एवमाइक्खइ-जाव किमंग** = जिनका नाम-गोत्र श्रवण ही, **पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ?** = महाफलदायी होता है, फिर उनके प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ-ग्रहण का लाभ तो अवर्णनीय है। **तए णं तस्स सुदंसणस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म** = तब बहुत से व्यक्तियों के मुख से भगवान के पधारने का वृत्तान्त सुनकर, **अयं अज्झत्थिए जाव समुप्पण्णे** = सुदर्शन के मन में इस प्रकार का अध्यवसाय यावत् उत्पन्न हुआ। **एवं खलु समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ** = इस प्रकार निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर यावत् राजगृह नगर के बाहर विचरण कर रहे हैं। **तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि** = अत: मैं श्रमण भगवान

महावीर को वन्दन नमस्कार करने हेतु जाऊँ। **एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव** = इस प्रकार विचार किया, करके जहाँ उसके माता पिता थे वहाँ, **उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं जाव एवं वयासी-** = आया, आकर दोनों हाथ जोड़कर यावत् यों कहने लगा-, **एवं खलु अम्मयाओ! समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ** = हे माता पिता! श्रमण भगवान महावीर यावत् पधारे हैं। **तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि नमंसामि** = इस कारण मैं उनकी सेवा में जाऊँ और उनको वन्दन नमस्कार करूँ, **जाव पज्जुवासामि** = यावत् सेवा करूँ ऐसी मेरी इच्छा है।।8।।

भावार्थ-उस राजगृह नगर में सुदर्शन नाम के एक धनाढ्य सेठ रहते थे, जो अपराभूत थे। श्रमणोपासक श्रावक थे और जीव अजीव आदि नवतत्त्वों के ज्ञाता थे। यावत् श्रमणों को प्रतिलाभ देने वाले थे।

उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर धर्मोपदेश देते हुए राजगृह पधारे और बाहर उद्यान में ठहरे। उनके पधारने का समाचार सुनकर राजगृह नगर के शृंगाटक, राजमार्ग आदि स्थानों में बहुत से नागरिक लोग परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगे-हे देवानुप्रियों! श्रमण भगवान महावीर स्वामी यहाँ पधारे हैं, जिनके नाम गोत्र के सुनने से भी महाफल होता है तो उनके दर्शन करने, वाणी सुनने तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म का विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता है उसका तो कहना ही क्या! वह तो अवर्णनीय है।

इस प्रकार बहुत से नागरिकों के मुख से भगवान के पधारने का समाचार सुनकर उस सुदर्शन सेठ के मन में इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ-

''निश्चय ही! श्रमण भगवान महावीर नगर में पधारे हैं और बाहर गुणशीलक उद्यान में विराजमान हैं, इसलिये मैं जाऊँ और उन श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ।''

ऐसा सोचकर वे अपने माता-पिता के पास आये और हाथ जोड़कर इस प्रकार बोले-''निश्चय ही हे माता-पिता! श्रमण भगवान महावीर स्वामी नगर के बाहर उद्यान में विराज रहे हैं। अत: मैं चाहता हूँ कि उनकी सेवा में जाऊँ और उन्हें वंदन-नमस्कार करूँ।''

सूत्र 9

मूल- **तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो एवं वयासी-एवं खलु पुत्ता! अज्जुणए मालागारे जाव घाएमाणे विहरइ, तं मा णं तुमं पुत्ता! समणं भगवं महावीरं वंदए निगच्छाहि, मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ। तुमं णं इहगए चेव समणं भगवं महावीरं वंदाहि नमंसाहि। तए णं सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं एवं वयासी-किण्णं अहं अम्मयाओ! समणं भगवं महावीरं इहमागयं इह पत्तं इह समोसढं इह**

गए चेव वंदिस्सामि नमंसिस्सामि ? तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदामि जाव पज्जुवासामि ।।9 ।।

संस्कृत छाया– ततः खलु तं सुदर्शनं श्रेष्ठिनम् अम्बापितरौ एवमवदताम्-एवं खलु पुत्र! अर्जुनकः मालाकारः यावत् घातयन् विहरति, तद् मा खलु त्वं हे पुत्र ! श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दको निर्गच्छ, मा खलु तव शरीरस्य व्यापत्तिः भविष्यति। त्वं खलु इह गत एव श्रमणं भगवन्तं महावीरम् वन्दस्व, नमस्य। ततः खलु सुदर्शनः श्रेष्ठी अम्बापितरौ एवमवदत्-किं खलु अहं अम्बातातौ! श्रमणं भगवन्तं महावीरम् इह आगतम्, इह प्राप्तम्, इह समवसृतम्, इह गत एव वन्दिष्ये नमस्यिष्यामि ? तद् गच्छामि खलु अहम् अम्बातातौ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञातः सन् श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दे यावत् पर्युपासे ।।9 ।।

अन्वायार्थ–तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो = यह सुनकर माता-पिता सुदर्शन सेठ, **एवं वयासी–** = को इस प्रकार बोले-, **एवं खलु पुत्ता! अज्जुणए मालागारे** = हे पुत्र ! निश्चय अर्जुन मालाकार, **जाव घाएमाणे विहरइ** = यावत् मारता हुआ घूम रहा है। **तं मा णं तुमं पुत्ता ! समणं** = इसलिये हे पुत्र ! तुम श्रमण, **भगवं महावीरं वंदए णिग्गच्छाहि** = भगवान महावीर को वन्दन करने हेतु बाहर मत जाओ, **मा णं तव सरीरयस्स वावत्ती भविस्सइ** = कदाचित् तुम्हारे शरीर की हानि हो जाय, **तुमं णं इहगए** = अतः तुम यहाँ रहते हुए, **चेव समणं भगवं महावीरं** = ही श्रमण भगवान महावीर, **वंदाहि नमंसाहि।** = को वन्दना नमस्कार कर लो। **तए णं सुदंसणे सेट्ठी अम्मापियरं** = तब सुदर्शन सेठ ने अपने माता पिता, **एवं वयासी–** = को इस प्रकार कहा-, **किण्णं अहं अम्मयाओ ! समणं** = हे माता पिता ! जब श्रमण, **भगवं महावीरं इहमागयं** = भगवान महावीर यहाँ पधारे हैं, **इह पत्तं इह समोसढं** = यहाँ विराजे हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं, तो मैं, **इह गए चेव वंदिस्सामि नमंसिस्सामि ?** = यहाँ से ही कैसे वन्दन-नमस्कार करूँ ? **तं गच्छामि णं अहं अम्मयाओ !** = इसलिये हे माता पिता !, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे** = आप आज्ञा दीजिये, **समणं भगवं महावीरं वंदामि** = मैं श्रमण भगवान महावीर के पास जाकर वन्दन-नमस्कार करूँ, **जाव पज्जुवासामि** = और यावत् सेवा करूँ ।।9।।

भावार्थ–सुदर्शन की यह बात सुनकर माता-पिता इस प्रकार बोले-''हे पुत्र! इस नगर के बाहर अर्जुनमाली छह पुरुष और एक स्त्री इस तरह सात व्यक्तियों को नित्यप्रति मारता हुआ घूम रहा है इसलिये हे पुत्र! तुम श्रमण भगवान महावीर को वंदन करने के लिये नगर के बाहर मत निकलो। नगर के बाहर निकलने से सम्भव है तुम्हारे शरीर को कोई हानि हो जाय। इसलिये यही अच्छा है कि तुम यहीं से श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार कर लो।''

तब सुदर्शन सेठ माता पिता से इस प्रकार बोला–''हे माता–पिता ! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ पधारे हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं और बाहर उद्यान में विराजे हैं तो मैं उनको यहीं से वंदना–नमस्कार करूँ, यह कैसे हो सकता है ? इसलिए हे माता–पिता ! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं वहीं जाकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दना करूँ, नमस्कार करूँ, यावत् उनकी पर्युपासना करूँ।''

सूत्र 10

मूल– **तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं अम्मापियरो जाहे नो संचायंति, बहूहिं आघवणाहिं 4 जाव परूवेत्तए। तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी–''अहासुहं देवाणुप्पिया!'' तए णं से सुदंसणे सेट्ठि अम्मापिइहिं अब्भणुण्णाए समाणे ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता, पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स अदूरसामंतेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे सुदंसणं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता आसुरत्ते तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।।10।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु तं सुदर्शनं श्रेष्ठिनम् अम्बापितरौ यदा न शक्नुतः बहुभिः आख्यायनाभिः यावत् प्ररूपयितुम्। ततः खलु तौ अम्बापितरौ तदा अकामे–चैव सुदर्शनं श्रेष्ठिनमेवमवदताम्–''यथासुखं देवानुप्रियः!'' ततः खलु सः सुदर्शनः श्रेष्ठी अम्बापितृभ्याम् अभ्यनुज्ञातः सन् स्नातः शुद्धप्रावेश्यानि यावत् शरीरः, स्वकात् गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य पादविहारचारेण राजगृहस्य नगरस्य मध्यं मध्येन निर्गच्छति निर्गत्य मुद्गरपाणेः यक्षस्य यक्षायतनस्य अदूरसामन्तेन यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव प्राधारयत् गमनाय। ततः खलु स मुद्गरपाणियक्षः सुदर्शनम् श्रमणोपासकम् अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन्तं

पश्यति, दृष्ट्वा आशुरक्त: तं पलसहस्रनिष्पन्नम् अयोमयम् मुद्गरम् उल्लालयन् उल्लालयन् यत्रैव सुदर्शन: श्रमणोपासक: तत्रैव प्राधारयद् गमनाय ।।10 ।।

अन्वायार्थ–तए णं तं सुदंसणं सेट्ठिं = तदनन्तर उस सुदर्शन सेठ को, **अम्मापियरो जाहे नो संचायंति,** = माता-पिता जब नहीं समझा सके, **बहूहिं आघवणाहिं 4 जाव परूवेत्तए** = अनेक प्रकार की युक्तियों से, **तए णं से अम्मापियरो ताहे अकामया** = तब माता पिता ने अनिच्छापूर्वक ही, **चेव सुदंसणं सेट्ठिं एवं वयासी–** = सुदर्शन सेठ को इस प्रकार कहा–, **अहासुहं देवाणुप्पिया!** = जैसे सुख हो वैसे ही करो। **तए णं से सुदंसणे सेट्ठि** = तब उस सुदर्शन सेठ ने, **अम्मापिइहिं अब्भणुण्णाए समाणे** = माता-पिता की आज्ञा पाकर, **ण्हाए सुद्धप्पावेसाइं जाव सरीरे, सयाओ गिहाओ** = स्नान किया और धर्मसभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र यावत्, **पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता** = धारण किये यावत् अपने घर से निकला, निकलकर, **पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छइ** = पैदल चलते हुए ही राजगृह नगर के मध्य से होता हुआ निकला, **णिग्गच्छित्ता मोग्गरपाणिस्स जक्खस्स जक्खाययणस्स** = निकलकर मुद्गरपाणियक्ष के यक्षायतन के, **अदूरसामंतेणं जेणेव** = पास से होते हुए जहाँ पर, **गुणसिलए चेइए जेणेव** = गुणशील नामक उद्यान और जहाँ, **समणे भगवं महावीरे तेणेव** = श्रमण भगवान महावीर हैं, **पहारेत्थ गमणाए** = उस ओर जाने लगा। **तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे** = तब उस मुद्गरपाणियक्ष ने, **सुदंसणं समणोवासयं** = सुदर्शन श्रमणोपासक को, **अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं** = समीप से ही जाते हुए, **पासइ, पासित्ता आसुरत्ते** = देखा देखकर शीघ्र क्रुद्ध हुआ और, **तं पलसहस्स–णिप्फण्णं अयोमयं** = उस हजारपल भारवाले लोहे के, **मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे** = मुद्गर को घुमाते घुमाते, **जेणेव सुदंसणे समणोवासए** = जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था, **तेणेव पहारेत्थ गमणाए** = वहाँ चलकर आने लगा ।।10 ।।

भावार्थ–उस सुदर्शन सेठ को माता-पिता जब अनेक प्रकार की युक्तियों से भी नहीं समझा सके, तब माता-पिता ने अनिच्छा पूर्वक इस प्रकार कहा–''हे पुत्र! फिर जिस प्रकार तुम्हें सुख उपजे वैसा करो।''

इस प्रकार सुदर्शन सेठ ने माता-पिता से आज्ञा प्राप्त करके स्नान किया और धर्मसभा में जाने योग्य शुद्ध वस्त्र धारण किये। फिर अपने घर से निकला और पैदल ही राजगृह नगर के मध्य से चलकर मुद्गरपाणि यक्ष के यक्षायतन के न अति दूर से और न अति निकट से ही होते हुए गुणशील उद्यान की ओर, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजित थे, निकलने लगा।

सुदर्शन सेठ को अपने यक्षायतन के पास से निकलते हुए देखकर वह मुद्गरपाणि यक्ष बड़ा क्रुद्ध हुआ और क्रुद्ध होकर उस हजार पल के वजन वाले लोह-मुद्गर को घुमाते हुए उसकी ओर दौड़ा।

सूत्र 11

मूल– **तए णं से सुदंसणे समणोवासए मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता अभीए, अतत्थे, अणुव्विग्गे, अक्खुब्भिए, अचलिए, असंभंते, वत्थंतेणं भूमिं पमज्जइ, पमज्जित्ता करयल एवं वयासी–नमोत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं जाव संपत्ताणं। नमोत्थुणं समणस्स जाव संपाविउकामस्स। पुव्विं च णं मए भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए 3 थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे सदारसंतोसे कए जावज्जीवाए, इच्छा परिमाणे कए जावज्जीवाए। तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं मुसावायं, सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए।।11।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः मुद्गरपाणिं यक्षम् आगच्छन्तम् पश्यति, दृष्ट्वा अभीतः अत्रस्तः, अनुद्विग्नः, अक्षुब्धः अचलितः, असंभ्रान्तः, वस्त्रान्तेन भूमिं प्रमार्जयति, प्रमार्ज्य करतलपरिगृहीतः एवमवदत् नमोऽस्तु खलु अर्हद्भ्यो भगवद्भ्यो यावत् संप्राप्तेभ्यः। नमोऽस्तु खलु श्रमणाय यावत् संप्राप्तुकामाय। पूर्वं च खलु मया भगवतः महावीरस्य अन्तिके स्थूलकः प्राणातिपातः प्रत्याख्यातः यावज्जीवम्। (एवं) स्थूलकः मृषावादः स्थूलकं अदत्तादानं (प्रत्याख्यातम्) स्वदारसन्तोषः कृतः यावज्जीवम् इच्छापरिमाणः कृतः यावज्जीवम्। तदिदानीमपि खलु तस्यैव अन्तिके सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्, सर्वं मृषावादं सर्वमदत्तादानं, सर्वं मैथुनं सर्वं परिग्रहं प्रत्याख्यामि यावज्जीवं सर्वं क्रोधं यावत् मिथ्यादर्शनशल्यं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्।।11।।

अन्वायार्थ–तए णं से सुदंसणे समणोवासए = तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने, **मोग्गरपाणिं जक्खं एज्जमाणं** = मुद्गरपाणि यक्ष को आते हुए को, **पासइ, पासित्ता अभीए,** = देखा और देखकर वह डरा नहीं, **अतत्थे, अणुव्विग्गे, अक्खुब्भिए,** = त्रास, उद्वेग एवं क्षोभ रहित, **अचलिए, असंभंते, वत्थंतेणं** = अचल, भ्रान्त हुए बिना वस्त्र के छोर से, **भूमिं पमज्जइ** = भूमि का प्रमार्जन किया, **पमज्जित्ता**

करयल एवं वयासी– = करके दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला–, **नमोत्थु णं अरिहंताणं** = नमस्कार हो अरिहंत भगवान यावत्, **भगवंताणं जाव संपत्ताणं ।** = मोक्ष प्राप्त सिद्धों को नमस्कार हो । **नमोत्थुणं समणस्स जाव** = नमस्कार हो प्रभु महावीर को यावत्, **संपाविउकामस्स ।** = मुक्ति पाने वाले श्रमणादिकों को । **पुव्विं च णं मए भगवओ** = मैंने पहले ही श्रमण भगवान, **महावीरस्स अंतिए थूलए** = महावीर के पास स्थूल, **पाणाइवाए पच्चक्खाए** = प्राणातिपात का आजीवन प्रत्याख्यान अर्थात् त्याग, **जावज्जीवाए 3** = किया है । इस प्रकार, **थूलए मुसावाए, थूलए अदिण्णादाणे** = स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का भी त्याग किया है, **सदारसंतोसे** = स्वदार सन्तोष, **इच्छा परिमाणे कए जावज्जीवाए** = और इच्छा परिमाण रूप स्थूल परिग्रह विरमण व्रत जीवन भर के लिए ग्रहण किया है । **तं इयाणिं पि णं तस्सेव अंतियं** = अब भी मैं उन्हीं भगवान के पास, **सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि** = (साक्षी से) सर्वथा प्राणातिपात का, **जावज्जीवाए** = यावज्जीवन त्याग करता हूँ, **सव्वं मुसावायं, सव्वं अदिण्णादाणं, सव्वं मेहुणं, सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि** = तथा सम्पूर्ण मृषावाद, सर्व विध अदत्तादान, सर्वविध मैथुन एवं सम्पूर्ण परिग्रह का, **जावज्जीवाए** = आजीवन त्याग करता हूँ।, **सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं** = मैं सर्वथा क्रोध यावत् मिथ्या, दर्शनशल्य तक के समस्त (18) पापों, **पच्चक्खामि जावज्जीवाए** = का भी आजीवन त्याग करता हूँ ।।11।।

भावार्थ–उस समय उस क्रुद्ध मुद्‌गरपाणि यक्ष को अपनी ओर आता हुआ देखकर वे सुदर्शन श्रमणोपासक मृत्यु की संभावना को जानकर भी किंचित् भय, त्रास, उद्‌वेग अथवा क्षोभ को प्राप्त नहीं हुए। उनका हृदय तनिक भी विचलित अथवा भयाक्रान्त नहीं हुआ ।

उन्होंने निर्भय होकर अपने वस्त्र के अंचल से भूमि का प्रमार्जन किया और मुख पर उत्तरासंग धारण किया। फिर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके बैठ गये। बैठकर बाएँ घुटने को ऊँचा किया और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अंजुलि-पुट रक्खा ।

इसके बाद इस प्रकार बोले–''सर्वप्रथम मैं उन सभी अरिहन्त भगवन्तों को, जो भूतकाल में मोक्ष पधार गये हैं, एवं श्रमण भगवान महावीर स्वामी सहित उन सभी अरिहन्तों को, जो भविष्य में मोक्ष में पधारने वाले हैं, नमस्कार करता हूँ।''

''मैंने पहले श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का आजीवन त्याग (प्रत्याख्यान) किया, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान का त्याग किया, स्वदार संतोष और इच्छा परिमाण रूप स्थूल परिग्रह-विरमण व्रत जीवन भर के लिये ग्रहण किया, अब उन्हीं भगवान महावीर स्वामी की साक्षी से प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और सम्पूर्ण-परिग्रह का सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ। क्रोध मान माया लोभ यावत् मिथ्या दर्शन शल्य तक 18 पापों का भी सर्वथा आजीवन त्याग करता हूँ।

मूल– **सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं, चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। जइ णं एत्तो उवसग्गाओ मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए, अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव त्तिकट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ। तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे जेणेव सुदंसणे समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नो चेव णं संचाइए सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए। तए णं से मोग्गरपाणी–जक्खे सुदंसणं समणोवासयं सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे परिघोलेमाणे जाहे नो चेव णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए। ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ, निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स सरीरं विप्पजहाइ, विप्पज्जहित्ता तं पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं गहाय जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।।12।।**

संस्कृत छाया– सर्वम् अशनम् पानम्, खाद्यम्, स्वाद्यम्, चतुर्विधमपि आहारं प्रत्याख्यामि यावज्जीवम्। यदि खलु एतस्मादुपसर्गात् मोक्ष्यामि तदा मम कल्पते पारयितुम्, यदि च एतस्मादुपसर्गात् न मुक्तो भविष्यामि तदा मेत्था प्रत्याख्यातमेव (सर्वं पूर्वोक्तम्) इति कृत्वा साकारां प्रतिमां प्रतिपद्यते। ततः खलु स मुद्गरपाणिः यक्षः तं पलसहस्रनिष्पन्नम् अयोमयं मुद्गरं उल्लालयन् उल्लालयन् यत्रैव सुदर्शनः श्रमणोपासकः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य न चैव खलु शक्नोति सुदर्शनं श्रमणोपासकं तेजसा समभिपतितुम्। ततः खलु सः मुद्गरपाणिः यक्षः सुदर्शनं श्रमणोपासकं सर्वतः समन्तात् परिघूर्णन् परिघूर्णन् यदा न चैव खलु शक्नोति सुदर्शनं श्रमणोपासकं तेजसा समभिपातयितुम्। तदा सुदर्शनस्य श्रमणोपासकस्य पुरतः सपक्षं सप्रतिदिक् स्थित्वा सुदर्शनं श्रमणोपासकम् अनिमिषया दृष्ट्या सुचिरं निरीक्षते, निरीक्ष्य, अर्जुनस्य मालाकारस्य शरीरं विप्रजहाति, विप्रजहाय तं

पलसहस्रनिष्पन्नम् अयोमयं मुद्गरं गृहीत्वा यस्या: दिश: प्रादुर्भूत: तामेव दिशं प्रतिगत: ।।12 ।।

अन्वयार्थ–सव्वं असणं, पाणं, खाइमं साइमं, चउव्विहं पि आहारं = मैं सर्व प्रकार के अशन, पान, खाद्य व स्वाद्य चारों ही आहारों को, **पच्चक्खामि जावज्जीवाए** = भी आजीवन छोड़ता हूँ। **जइ णं एत्तो उवसग्गाओ** = यदि इस उपसर्ग से, **मुच्चिस्सामि तो मे कप्पइ पारेत्तए** = छूटता हूँ तो मुझे पारना, आहारादि करना कल्पता है। **अह णं एत्तो उवसग्गाओ न मुच्चिस्सामि** = पर यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ तो, **तओ मे तहा पच्चक्खाए चेव** = मुझे इस प्रकार का सम्पूर्ण त्याग है। **त्तिकट्टु सागारं पडिमं पडिवज्जइ।** = ऐसा विचार करके सागारी पडिमा (अनशन व्रत) धारण कर लिया। **तए णं से मोग्गरपाणिजक्खे तं** = तदनन्तर वह मुद्गरपाणियक्ष उस, **पलसहस्सणिप्फण्णं अयोमयं मोग्गरं** = हजार पल भारी लोहे के मुद्गर को, **उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे** = घुमाता घुमाता हुआ, **जेणेव सुदंसणे समणोवासए** = जहाँ पर सुदर्शन श्रमणोपासक था, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = वहाँ आया, (परन्तु) वहाँ आकर (भी) वह सुदर्शन श्रमणोपासक को, **नो चेव णं संचाइए सुदंसणं समणोवासयं तेयसा समभिपडित्तए**= किसी प्रकार अपने तेज से विचलित करने में समर्थ नहीं हुआ। **तए णं से मोग्गरपाणी–** = फिर वह मुद्गरपाणि, **जक्खे सुदंसणं समणोवासयं** = यक्ष सुदर्शन श्रमणोपासक के, **सव्वओ समंताओ परिघोलेमाणे** = चारों ओर घूमते हुए, **परिघोलेमाणे जाहे नो चेव** = घूमते हुए जब नहीं, **णं संचाएइ सुदंसणं समणोवासयं** = सुदर्शन श्रमणोपासक को, **तेयसा समभिपडित्तए** = अपने तेज से पराजित कर सका, **ताहे सुदंसणस्स समणोवासयस्स** = तब सुदर्शन श्रमणोपासक के, **पुरओ सपक्खिं सपडिदिसिं ठिच्चा** = सामने खड़ा रहकर उस, **सुदंसणं समणोवासयं अणिमिसाए** = सुदर्शन श्रमणोपासक को अनिमेष, **दिट्ठीए सुचिरं निरिक्खइ** = दृष्टि से चिरकाल तक देखता रहा। **निरिक्खित्ता अज्जुणयस्स मालागारस्स** = देखकर अर्जुन मालाकार के, **सरीरं विप्पजहाइ, विप्पज्जहित्ता** = शरीर को छोड़ दिया, छोड़कर, **तं पलसहस्सणिप्फण्णं** = (शरीर से निकल कर) उस सहस्रपल भारवाले, **अयोमयं मोग्गरं गहाय** = लोहे के मुद्गर को लेकर, **जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव** = जिस दिशा से आया था उसी, **दिसं पडिगए** = दिशा की ओर चला गया **।।12 ।।**

भावार्थ–सब प्रकार का अशन, पान, खादिम और स्वादिम इन चारों प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूँ।

यदि मैं इस आसन्न मृत्यु उपसर्ग से बच गया तो इस त्याग का पारण करके–आहारादि ग्रहण करूँगा। पर यदि इस उपसर्ग से मुक्त न होऊँ, न बचूँ तो मुझे इस प्रकार का सम्पूर्ण त्याग यावज्जीवन है।

ऐसा निश्चय करके उन सुदर्शन सेठ ने उपर्युक्त प्रकार से सागारी पडिमा–अनशन व्रत–धारण कर लिया।

इधर वह मुद्‌गरपाणि यक्ष उस हजार पल के लोहमय मुद्‌गर को घुमाता हुआ जहाँ सुदर्शन श्रमणोपासक था वहाँ आया। परन्तु सुदर्शन श्रमणोपासक को अपने तेज से अभिभूत नहीं कर सका अर्थात् उसे किसी प्रकार से कष्ट नहीं पहुँचा सका।

मुद्‌गरपाणि यक्ष सुदर्शन श्रावक के चारों ओर घूमता रहा और जब उसको अपने तेज से पराजित नहीं कर सका तब सुदर्शन श्रमणोपासक के सामने आकर खड़ा हो गया और अनिमेष दृष्टि से बहुत देर तक उन्हें देखता रहा।

इसके बाद उस मुद्‌गरपाणि यक्ष ने अर्जुनमाली के शरीर को छोड़ दिया और उस हजार पल भार वाले लोहमय मुद्‌गर को लेकर जिस दिशा से आया था, उसी दिशा की ओर चला गया।

सूत्र 13

मूल– **तए णं से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेणं विप्पमुक्के समाणे धसत्ति धरणितलंसि सव्वंगेहिं निवडिए। तए णं से सुदंसणे समणोवासए निरुवसग्गमि त्ति कट्टु पडिमं पारेइ। तए णं से अज्जुणए मालागारे तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी–''तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के ? कहिं वा संपत्थिया ?'' तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी–''एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सुदंसणे नामं समणोवासए अभिगय–जीवाजीवे गुणसिलए चेइए समणं भगवं महावीरं वंदिउं संपत्थिए'' ।।13।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः मुद्‌गरपाणिना यक्षेण विप्रमुक्तः सन् 'धस्' इति (शब्देन सह) धरणीतले सर्वाङ्गैः निपतितः। ततः खलु सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः 'निरुपसर्गम्' इति कृत्वा प्रतिमां पारयति। ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः ततः मुहूर्तान्तरेण आश्वस्तः सन् उत्तिष्ठति, उत्थाय सुदर्शनं श्रमणोपासकम् एवमवदत्–''यूयं खलु देवानुप्रियाः ! के ? क्व वा संप्रस्थिताः?'' ततः खलु सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः अर्जुनकं मालाकारमेवमवादीत्–''एवं खलु देवानुप्रिय ! अहं सुदर्शनो नाम श्रमणोपासकः अभिगतजीवाजीवः गुणशिलके चैत्ये श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दितुम् संप्रस्थितः ।।13।।

अन्वयार्थ–तए णं से अज्जुणए मालागारे = तदनन्तर वह अर्जुनमाली, **मोग्गरपाणिणा जक्खेणं** = मुद्‌गरपाणि यक्ष से, **विप्पमुक्के समाणे धसत्ति** = मुक्त होने पर 'धस्' ऐसी, **धरणितलंसि सव्वंगेहिं निवडिए** = आवाज के साथ सर्वांग से भूमि पर गिर पड़ा। **तए णं से सुदंसणे** = तब सुदर्शन श्रावक, **समणोवासए निरुवसग्गमि त्ति** = ने अपने को निरुपसर्ग जानकर अपनी, **कट्टु पडिमं पारेइ** = प्रतिज्ञा पूर्ण की (ध्यान खुला किया)। **तए णं से अज्जुणए मालागारे** = इधर वह अर्जुन मालाकार, **तओ मुहुत्तंतरेणं आसत्थे समाणे** = मुहूर्त्त भर के पश्चात् स्वस्थ होकर, **उट्ठेइ, उट्ठित्ता सुदंसणं** = वहाँ से उठा, उठकर सुदर्शन, **समणोवासयं एवं वयासी–** =श्रावक से यों बोला–, ''**तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! के ?** = ''हे देवानुप्रिय ! आप कौन हो और, **कहिं वा संपत्थिया ?''** = कहाँ जा रहे हो ?'' **तए णं से सुदंसणे समणोवासए** = तब सुदर्शन श्रावक ने, **अज्जुणयं मालागारं एवं वयासी–** = अर्जुनमाली को इस प्रकार कहा–, ''**एवं खलु देवाणुप्पिया !** = ''हे देवानुप्रिय !, **अहं सुदंसणे नामं समणोवासए** = मैं सुदर्शन नामक श्रमणोपासक, **अभिगय–जीवाजीवे** = जीवाजीवादि का जानने वाला, **गुणसिलए चेइए समणं** = गुणशिलक उद्यान में श्रमण, **भगवं महावीरं वंदिउं** = भगवान महावीर को वन्दना नमस्कार, **संपत्थिए''** = करने के लिए जा रहा हूँ।।13।।

भावार्थ–मुद्‌गरपाणि यक्ष से मुक्त होते ही वह अर्जुन मालाकार 'धस्' इस प्रकार के शब्द के साथ भूमि पर गिर पड़ा।

तब सुदर्शन श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग रहित हुआ जानकर अपनी सागारी त्याग प्रत्याख्यान रूपी प्रतिज्ञा को पाला और अपना ध्यान खोला।

इधर वह अर्जुनमाली मुहूर्त्त भर (कुछ समय) के पश्चात् आश्वस्त एवं स्वस्थ होकर उठा और सुदर्शन श्रमणोपासक को सामने देखकर इस प्रकार बोला–''हे देवानुप्रिय ! आप कौन हो तथा कहाँ जा रहे हो ?''

यह सुनकर सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुन–माली से इस तरह बोला–''हे देवानुप्रिय ! मैं जीवादि नौ तत्त्वों का ज्ञाता सुदर्शन नाम का श्रमणोपासक हूँ और गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान महावीर को वंदन–नमस्कार करने जा रहा हूँ।''

सूत्र 14

मूल– **तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं समणोवासयं एवं वयासी– ''तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! अहमवि तुमए सद्धिं समणं भगवं महावीरं वंदित्तए जाव पज्जुवासित्तए।'' 'अहासुहं देवाणुप्पिया!' तए णं से सुदंसणे समणोवासए अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं जेणेव**

गुणसिलए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ। तए णं समणे भगवं महावीरे सुदंसणस्स समणोवासयस्स अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे य धम्मकहा। सुदंसणे पडिगए।।14।।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः सुदर्शनं श्रमणोपासकं एवमवदत्–तत् इच्छामि खलु देवानुप्रिय ! अहमपि त्वया सार्द्धं श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दितुं यावत् पर्युपासितुम्। 'यथा सुखं देवानुप्रिय!' ततः खलु सः सुदर्शनः श्रमणोपासकः अर्जुनकेन मालाकारेण सार्द्धं यत्रैव गुणशिलकः चैत्यः यत्रैव श्रमणो भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य अर्जुनकेन मालाकारेण सार्द्धं श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिः कृत्वा यावत् पर्युपासते। ततः खलु श्रमणः भगवान् महावीरः सुदर्शनाय श्रमणोपासकाय अर्जुनाय मालाकाराय तस्यै च धर्मकथा सुदर्शनः प्रतिगतः।14।

अन्वयार्थ–तए णं से अज्जुणए मालागारे सुदंसणं = तब वह अर्जुन माली सुदर्शन, **समणोवासयं एवं वयासी–** = श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला–, **तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय !, **अहमवि तुमए सद्धिं समणं** = मैं भी चाहता हूँ तुम्हारे साथ श्रमण, **भगवं महावीरं वंदित्तए** = भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार, **जाव पज्जुवासित्तए** = यावत् उनकी सेवा करने के लिए जाना। **अहासुहं देवाणुप्पिया!** = हे देवानुप्रिय! जैसा सुख हो वैसा करो, **तए णं से सुदंसणे समणोवासए** = इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक, **अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं** = अर्जुन मालाकार के साथ, **जेणेव गुणसिलए चेइए** = जहाँ गुणशीलक उद्यान था, **जेणेव समणे भगवं महावीरे** = जहाँ श्रमण भगवान विराजते थे, **तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता** = वहाँ आया और आकर, **अज्जुणएणं मालागारेणं सद्धिं** = अर्जुन मालाकार के साथ, **समणं भगवं महावीरं** = श्रमण भगवान महावीर को, **तिक्खुत्तो जाव पज्जुवासइ** = तीन बार वन्दन करके सेवा करने लगा। **तए णं समणे भगवं महावीरे** = उस समय श्रमण भगवान महावीर ने, **सुदंसणस्स समणोवासयस्स** = सुदर्शन श्रमणोपासक, **अज्जुणयस्स मालागारस्स तीसे** = अर्जुन माली और उस विशाल सभा के सम्मुख धर्म कथा कही। **य धम्मकहा** = धर्मकथा, **सुदंसणे पडिगए** = सुनकर सुदर्शन लौट गया।।14।।

भावार्थ–यह सुनकर अर्जुनमाली सुदर्शन श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला–''हे देवानुप्रिय ! मैं भी तुम्हारे साथ श्रमण भगवान महावीर की वन्दना नमस्कार करना यावत् सेवा करना चाहता हूँ।''

श्री सुदर्शन–''हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।''

इसके बाद वह सुदर्शन श्रमणोपासक अर्जुनमाली के साथ जहाँ गुणशील उद्यान में श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और अर्जुनमाली के साथ श्रमण भगवान महावीर को तीन बार प्रदक्षिणा पूर्वक वंदन–नमस्कार कर उनकी सेवा करने लगा।

उस समय श्रमण भगवान महावीर ने सुदर्शन श्रमणोपासक, अर्जुनमाली और उस विशाल सभा के सम्मुख धर्म कथा कही। सुदर्शन धर्मकथा सुनकर अपने घर लौट गया।

सूत्र 15

मूल– **तए णं से अज्जुणए मालागारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ एवं वयासी–सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं जाव अब्भुट्ठेमि। 'अहासुहं देवाणुप्पिया !' तए णं से अज्जुणए मालागारे उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जाव अणगारे जाए जाव विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए तं चेव दिवसं समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ–कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं–छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए तिकट्टु अयमेवारूवं अभिग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता जावज्जीवाए जाव विहरइ॥15॥**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः श्रमणस्य भगवतः महावीरस्य अन्तिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्टतुष्टः एवमवदत्–श्रद्दधामि खलु भदन्त ! नैर्ग्रन्थ्यं प्रवचनं यावत् अभ्युत्तिष्ठामि। यथासुखं देवानुप्रिय ! ततः खलु सः अर्जुनः मालाकारः उत्तरपौरस्त्याम् दिग्भागम् अपक्राम्यति, अपक्रम्य स्वयमेव पंचमुष्टिकं लोचं करोति, कृत्वा यावत् अनगारः जातः यावद् विहरति। ततः खलु सः अर्जुनः अनगारः यस्मिन्नेव दिवसे मुण्डो यावत् प्रव्रजितः तस्मिन्नेव दिवसे श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा इममेतद्रूप मभिग्रहम् अभिगृह्णाति–कल्पते मम यावज्जीवं षष्ठं षष्ठेन अनिक्षिप्तेन तपःकर्मणा आत्मानं भावयतः विहर्तुम्

इति (मनसि) कृत्वा इममेतद्रूपम्, अभिग्रहमभिगृह्णाति, अभिगृह्य यावज्जीवं यावत् विहरति ।।15।।

अन्वयार्थ–तए णं से अज्जुणए मालागारे = तब वह अर्जुन मालाकार, **समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए** = श्रमण भगवान महावीर के पास, **धम्मं सोच्चा निसम्म** = धर्मोपदेश सुनकर एवं धारणकर, **हट्ठतुट्ठ एवं वयासी–** = बड़ा प्रसन्न हुआ और इस प्रकार बोला–, **सद्दहामि णं भंते ! णिग्गंथं पावयणं जाव** = हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रुचि करता हूँ यावत् आपके, **अब्भुट्ठेमि** = चरणों में व्रत लेना चाहता हूँ। **'अहासुहं देवाणुप्पिया !'** = ''हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसा करो।'' **तए णं से अज्जुणए मालागारे** = तदनन्तर वह अर्जुनमाली, **उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए अवक्कमइ,** = ईशान कोण में गया, **अवक्कमित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं** = जाकर स्वयं ही पाँचमुट्ठियों का लोंच किया और, **करेइ, करित्ता जाव अणगारे** = यावत् अनगार हो गये, **जाए जाव विहरइ** = और संयम-तप से वे विचरने लगे। **तए णं से अज्जुणए अणगारे** = इसके पश्चात् अर्जुन मुनि ने, **जं चेव दिवसं मुंडे जाव पव्वइए** = जिस दिन मुंडित हो प्रव्रज्या ग्रहण की, **तं चेव दिवसं समणं भगवं** = उसी दिन श्रमण भगवान, **महावीरं वंदइ नमंसइ** = महावीर को वंदन-नमस्कार किया। **वंदित्ता नमंसित्ता इमं एयारूवं** = वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार का, **अभिग्गहं उग्गिण्हइ–** = अभिग्रह स्वीकार किया–, **कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं** = आज से मैं निरन्तर बेले बेले की, **अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं** = तपस्या से आजीवन, **अप्पाणं भावेमाणस्स** = आत्मा को भावित करते हुए, **विहरित्तए तिकट्टु अयमेवारूवं** = विचरूँगा यह मन में सोचकर तथा इस प्रकार के, **अभिग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता** = अभिग्रह को लेकर, **जावज्जीवाए जाव विहरइ** = जीवन भर के लिए यावत् विचरण करने लगे ।।15।।

भावार्थ–इधर अर्जुनमाली श्रमण भगवान महावीर के पास धर्मोपदेश सुनकर एवं धारण कर बड़ा प्रसन्न हुआ और प्रभु महावीर से इस प्रकार बोला–''हे भगवन् ! मैं आप द्वारा कहे हुए निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, यावत् आपके चरणों में व्रत लेना चाहता हूँ।''

प्रभु महावीर–''हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो।''

तब उस अर्जुनमाली ने ईशान कोण में जाकर स्वयं ही पंचमौष्टिक लुंचन किया, लुंचन करके वे अनगार हो गये और संयम व तप से विचरने लगे। अर्जुन माली अब अर्जुन मुनि हो गये।

इसके पश्चात् अर्जुन मुनि ने जिस दिन मुंडित हो प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन श्रमण भगवान महावीर को वंदना नमस्कार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया–''आज से मैं निरंतर बेले-बेले की तपस्या से आजीवन आत्मा को भावित करते हुए विचरूँगा।''

ऐसा अभिग्रह जीवन भर के लिए स्वीकार कर अर्जुन मुनि विचरने लगे।

मूल– **तए णं से अज्जुणए अणगारे छट्ठक्खमणपारणयंसि पढमपोरसीए सज्झायं करेइ, जहा गोयमसामी जाव अडइ। तए णं तं अज्जुणयं अणगारं रायगिहे नयरे उच्चणीय जाव अडमाणं बहवे इत्थिओ य पुरिसा य डहरा य महल्ला य जुवाणा य एवं वयासी–''इमेणं मे पिया मारिए, इमेणं मे माया मारिया, भाया मारिए, भगिणी मारिया, भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए, धूया मारिया, सुण्हा मारिया इमेणं मे अण्णयरे सयण–संबंधि–परियणे मारिए।'' त्तिकट्टु अप्पेगइया अक्कोसंति, अप्पेगइया हीलंति, निंदंति, खिंसंति, गरिहंति, तज्जेंति, तालेंति।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अर्जुनः अनगारः षष्ठक्षपणपारणके प्रथमपौरुष्यां स्वाध्यायं करोति, यथा गौतम स्वामी यावदटति। ततः खलु तं अर्जुनकं अनगारं राजगृहे नगरे उच्चनीचं यावत् अटन्तं बहवः स्त्रियश्च पुरुषाश्च डहराश्च महान्तश्च युवानश्च एवमवदन्–''अनेन खलु मे पिता मारितः, अनेन खलु मे माता मारिता, भ्राता मारितः, भगिनी मारिता, भार्या मारिता, पुत्रः मारितः दुहिता मारिता, स्नुषा मारिता, अनेन खलु मे अन्यतरः स्वजन–सम्बन्धि–परिजनः मारितः।'' इति कृत्वा अप्येके आक्रोशन्ति अप्येके हीलन्ति, निन्दन्ति, खिंसन्ति, गर्हन्ते, तर्जयन्ति, ताडयन्ति।

अन्वयार्थ–तए णं से अज्जुणए अणगारे = इसके बाद वह अर्जुन मुनि, **छट्ठक्खमणपारणयंसि पढम–** = बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम, **पोरसीए सज्झायं करेइ,** = प्रहर में स्वाध्याय करते, **जहा गोयमसामी जाव अडइ** = गौतम स्वामी के समान यावत् भ्रमण करते, **तए णं तं अज्जुणयं अणगारं** = उस समय अर्जुन मुनि को, **रायगिहे नयरे उच्चणीय जाव** = राजगृह नगर में उच्चनीच कुलों में यावत्, **अडमाणं बहवे इत्थिओ य** = घूमते हुए को बहुत सी स्त्रियाँ, **पुरिसा य डहरा य महल्ला य** = पुरुष, छोटे बच्चे, बड़े बूढ़े, **जुवाणा य एवं वयासी–** = और जवान इस प्रकार कहने लगे–, **''इमेणं मे पिया मारिए** = ''इसने मेरे पिता को मारा है, **इमेणं मे माया मारिया** = इसने मेरी माता को मारा है, **भाया मारिए, भगिणी मारिया** = भाई को मारा है, बहिन को मारा है, **भज्जा मारिया, पुत्ते मारिए** = पत्नी को मारा है, पुत्र को मारा है, **धूया मारिया, सुण्हा मारिया** = लड़की को मारा है, पुत्रवधू को मारा है, **इमेणं मे अण्णयरे सयण–** = इसने मेरे अमुक स्वजन, **संबंधि–परियणे मारिए''** = सम्बन्धी परिजन को मारा है, **त्तिकट्टु**

अप्पेगइया अक्कोसंति, = ऐसा कहकर कोई गाली देते, **अप्पेगइया हीलंति, णिंदंति =** कोई हीलना या निन्दा करते, **खिंसंति, गरिहंति, तज्जेंति, =** खिजाते, गर्हा करते, तर्जना करते, **तालेंति =** कोई ताड़ना भी कर देते।

भावार्थ–इसके पश्चात् अर्जुन मुनि बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में ध्यान करते एवं तीसरे प्रहर में राजगृह नगर में भिक्षार्थ भ्रमण करते।

उस समय उस अर्जुन मुनि को राजगृह नगर में उच्च–नीच मध्यम कुलों में भिक्षार्थ घूमते हुए देखकर नगर के अनेक नागरिक स्त्री–पुरुष आबाल वृद्ध इस प्रकार कहते–

''इसने मेरे पिता को मारा है, इसने मेरी माता को मारा है, भाई को मारा है, बहन को मारा है, भार्या को मारा है, पुत्र को मारा है, कन्या को मारा है, पुत्रवधू को मारा है, एवं इसने मेरे अमुक स्वजन संबंधी को मारा है।''

ऐसा कहकर कोई गाली देता, कोई हीलना करता, अनादर करता, निन्दा करता, कोई जाति आदि का दोष बताकर गर्हा करता, कोई भय बताकर तर्जना करता और कोई थप्पड़, ईंट, पत्थर, लाठी आदि से भी मारता।

सूत्र 17

मूल– **तए णं से अज्जुणए अणगारे तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य डहरेहिं य महल्लेहिं य जुवाणएहिं य आओसेज्जमाणे जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ, सम्मं सहमाणे, खममाणे तितिक्खमाणे, अहियासमाणे रायगिहे नयरे उच्चणीयमज्झिम–कुलाइं अडमाणे जइ भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ, जइ पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे अदीणे, अविमणे, अकलुसे, अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी अडइ, अडित्ता रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे जहा गोयमसामी जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे, अमुच्छिए बिलमिव पण्णगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ ।।17।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अर्जुनः अनगारः तैः बहुभिः स्त्रीभिश्च पुरुषैश्च डहरैश्च महद्भिश्च युवभिश्च आक्रुश्यमानः यावत् ताड्यमानः तेभ्यः मनसा अपि अप्रदुष्यन् सम्यक् सहते, सम्यक् क्षमते, सम्यक् तितिक्षते, सम्यक् अधिसहते, सम्यक् सहमानः, क्षममाणः तितिक्षमाणः, अधिसहमानः, राजगृहे नगरे उच्चनीचमध्यम-कुलेषु अटमानः यदि भक्तं लभते तदा पानं न लभते, यदि पानं लभते तर्हि भक्तं न लभते। ततः खलु सः अर्जुनकः अनगारः अदीनः, अविमनाः, अकलुषः अनाविलः अविषादी, अपरितान्तयोगी अटति, अटित्वा राजगृहान्नगरात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव गुणशिलकं चैत्यं, यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः यथा गौतमस्वामी यावत् प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य श्रमणेन भगवता महावीरेण अभ्यनुज्ञातः सन् अमूर्च्छितः बिलमिव पन्नगभूतेन आत्मना तमाहारमाहारयति ।।17।।

अन्वायार्थ–तए णं से अज्जुणए अणगारे = तब वह अर्जुन अनगार, **तेहिं बहूहिं इत्थीहि य पुरिसेहि य** = उन बहुत सी स्त्रियों से, पुरुषों से, **डहरेहिं य महल्लेहिं य** = बच्चों से, वृद्धों से, **जुवाणएहिं य आओसेज्जमाणे** = और तरुणों से तिरस्कृत यावत्, **जाव तालेज्जमाणे तेसिं मणसा** = ताड़ित होने पर भी उन पर मन से, **वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ,** = भी द्वेष नहीं करते हुए सम्यक् प्रकार से सहते, **सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ** = क्षमा करते, तितिक्षा रखते, **सम्मं अहियासेइ,** = निर्जरा समझकर हर्षानुभव करते। **सम्मं सहमाणे, खममाणे** = इस प्रकार सहते क्षमा करते, **तितिक्खमाणे, अहियासमाणे** = तितिक्षा रखते और अध्यास लाभ मानते, **रायगिहे नयरे उच्चणीयमज्झिम–** = हुए राज गृह नगर में छोटे-बड़े मध्यम, **कुलाइं अडमाणे जइ** = कुलों में भ्रमण करते हुए उन्हें यदि, **भत्तं लभइ तो पाणं न लभइ,** = भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता, **जइ पाणं लभइ तो भत्तं न लभइ** = पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता। **तए णं से अज्जुणए अणगारे** = तब वे अर्जुन मुनि ऐसी स्थिति में भी, **अदीणे, अविमणे, अकलुसे** = अदीन उदासी-मलिन भाव, आकुल, **अणाइले, अविसाई, अपरितंतजोगी** = व्याकुलपन और खेद रहित योगों से, **अडइ, अडित्ता** = थकान रहित भ्रमण करते-करते, **रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता** = राजगृह नगर से बाहर निकलकर, **जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव** = जहाँ गुणशिलक उद्यान था जहाँ, **समणे भगवं महावीरे जहा** = श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ, **गोयमसामी जाव पडिदंसेइ** = आकर गौतम स्वामी की तरह आहार, **पडिदंसित्ता समणेणं भगवया** = दिखाते और दिखाकर श्रमण भगवान, **महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे** = महावीर की आज्ञा प्राप्त कर, **अमुच्छिए बिलमिव पण्णगभूएणं** = मूर्च्छा रहित हो, बिल में जैसे सर्प सीधा प्रवेश करता है उसी तरह रागद्वेष रहित, **अप्पाणेणं तमाहारं आहारेइ** = आत्मा से उस आहार का सेवन कर लेते ।।17।।

भावार्थ–इस प्रकार उन बहुत से स्त्री पुरुष, बच्चे बूढ़े और जवानों से आक्रोश–गाली, एवं विविध प्रकार की ताड़ना तर्जना आदि पाकर के भी वह अर्जुन मुनि उन पर मन से भी द्वेष नहीं करते हुए उनके द्वारा दिये गये सभी परीषहों को समभाव–पूर्वक सहन करते, प्रतिकार कर सकने की स्थिति में होते हुए भी क्षमा–भाव धारण करते हुए उन कष्टों को प्रसन्नतापूर्वक झेल लेते एवं निर्जरा का लाभ समझकर हर्षानुभव करते। सम्यक् ज्ञानपूर्वक उन सभी संकटों को सहन करते, क्षमा करते, तितिक्षा रखते और उन कष्टों को भी लाभ का हेतु मानते हुए राजगृह नगर के छोटे–बड़े मध्यम कुलों में भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए अर्जुन मुनि को कहीं कभी भोजन मिलता तो पानी नहीं मिलता और कहीं पानी मिलता तो भोजन नहीं मिलता।

वैसी स्थिति में जो भी और जैसा भी अल्प स्वल्प मात्रा में प्रासुक भोजन उन्हें मिलता उसे वे सर्वथा अदीन, अविमन, अकलुष, अमलिन, आकुल–व्याकुलता रहित अखेद–भाव से ग्रहण करते, थकान अनुभव नहीं करते।

इस प्रकार वे भिक्षार्थ भ्रमण करते। भ्रमण करके वे राजगृह नगर से निकलते और गुणशील उद्यान में, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आते और वहाँ आकर गौतम स्वामी की तरह भिक्षा में मिले उस आहार–पानी को प्रभु महावीर को दिखाते और दिखाकर उनकी आज्ञा पाकर मूर्च्छा रहित जिस प्रकार बिल में सर्प सीधा प्रवेश करता है उस प्रकार राग–द्वेष भाव से रहित होकर उस आहार–पानी का वे सेवन करते।

सूत्र 18

मूल– **तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइं रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिं जणवय विहारं विहरइ। तए णं से अज्जुणए अणगारे तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवो–कम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्ण–परियागं पाउणइ, अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव सिद्धे ।।18।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु श्रमणः भगवान् महावीरः अन्यदा कदाचित् राजगृहात् नगरात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य बहिः जनपदविहारं विहरति। ततः खलु सः अर्जुनः अनगारः तेन उदारेण विपुलेन प्रयत्नेन परिगृहीतेन महानुभागेन तपः–कर्मणा आत्मानं भावयन् बहुपरिपूर्णान् षण्मासान् श्रामण्यपर्यायम् पालयति, अर्द्धमासिक्या

संलेखनया आत्मानं जोषयति, त्रिंशद् भक्तानि अनशनेन छिनत्ति, छित्त्वा यस्यार्थाय क्रियते यावत् सिद्धः ।।18 ।।

अन्वयार्थ–तए णं समणे भगवं महावीरे = फिर श्रमण भगवान महावीर ने, **अण्णया कयाइं रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ** = अन्य किसी दिन राजगृह नगर से विहार किया, **पडिणिक्खमित्ता** = विहार कर, **बहिं जणवय विहारं विहरइ** = बाहर जनपद देश में विहार करने लगे। **तए णं से अज्जुणए अणगारे** = तब वह अर्जुन मुनि, **तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं** = उस उदार श्रेष्ठ, पवित्र भाव से ग्रहण किये, **पग्गहिएणं महाणुभागेणं तवो–कम्मेणं** = महालाभकारी विपुल तप से, **अप्पाणं भावेमाणे** = आत्मा को भावित करते हुए, **बहुपडिपुण्णे छम्मासे सामण्ण–परियागं पाउणइ** = छः महीने चारित्रव्रत का पालन किया, **अद्धमासियाए संलेहणाए** = आधे मास की संलेखना से, **अप्पाणं झूसेइ, तीसं भत्ताइं** = आत्मा को जोड़कर तीस भक्त के, **अणसणाए छेदेइ, छेदित्ता** = अनशन को पूर्णकर, **जस्सट्ठाए कीरइ जाव सिद्धे** = जिस कार्य के लिए व्रत ग्रहण किया था उसको पूर्णकर यावत् सिद्ध हो गये ।।18।।

भावार्थ–भगवती सूत्र में जैसे प्रभु महावीर से पूछकर श्री गौतम स्वामी द्वारा भिक्षार्थ जाने का विस्तृत वर्णन किया गया है, वैसा ही अर्जुन माली द्वारा भिक्षार्थ जाने का वर्णन यहाँ समझना चाहिए।

फिर श्रमण भगवान महावीर किसी दिन राजगृह नगर के उस गुणशील उद्यान से निकल कर बाहर जनपदों में विहार करने लगे।

उस महाभाग अर्जुन मुनि ने उस उदर, श्रेष्ठ, पवित्र भाव से ग्रहण किये गये, महालाभकारी, विपुल तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए पूरे छः महीने मुनि चारित्र धर्म का पालन किया। इसके बाद आधे मास की संलेखना से अपनी आत्मा को जोड़कर तीस भक्त के अनशन को पूर्ण कर जिस कार्य के लिए व्रत ग्रहण किया, उसको पूर्ण कर वे अर्जुन मुनि यावत् सिद्ध बुद्ध और मुक्त हो गये।

।। इइ तइयमज्झयणं–तृतीय अध्ययन समाप्त ।।

चउत्थमज्झयणं-चतुर्थ अध्ययन

मूल– उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। तत्थणं सेणिए राया। कासवे नामं गाहावई परिवसइ, जहा मंकाई सोलसवासा परियाओ, विपुले सिद्धे।।4 ।।

संस्कृत छाया– उत्क्षेपकः चतुर्थस्य अध्ययनस्य एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहं नगरं गुणशिलकं चैत्यम्। तत्र खलु श्रेणिकः राजा। काश्यपः नाम गाथापतिः परिवसति, यथा मंकाई षोडश वर्षाणि पर्यायः, (यावत्) विपुले सिद्धः ।।4।।

अन्वयार्थ–उक्खेवओ चउत्थस्स अज्झयणस्स = चौथे अध्ययन का उत्क्षेपक, **एवं खलु जम्बू! तेणं कालेणं** = तब सुधर्मा स्वामी ने कहा–हे जम्बू ! उस काल, **तेणं समएणं रायगिहे नयरे** = उस समय में राजगृह नगर था, **गुणसिलए चेइए** = वहाँ गुणशिलक उद्यान था। **तत्थणं सेणिए राया** = वहाँ श्रेणिक राजा के राज्य में, **कासवे नामं गाहावई परिवसइ,** = काश्यप नाम का गाथापति भी रहता था, **जहा मंकाई** = उसने मंकाई की तरह, **सोलसवासा परियाओ** = सोलह वर्ष की दीक्षा पर्याय का पालन किया, **विपुले सिद्धे** = और विपुल पर्वत पर सिद्ध हो गये।

भावार्थ–जम्बू स्वामी–"हे भगवन् ! छठे वर्ग के तीसरे अध्ययन में प्रभु ने जो भाव कहे वे सुने। अब चौथे अध्ययन में क्या भाव कहा है वह कृपया कहिये।"

श्री सुधर्मा स्वामी–"हे जम्बू ! उस काल उस समय राजगृह नगर में गुणशील नामक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। वहाँ काश्यप नाम का एक गाथा पति रहता था। उसने मंकाई की तरह सोलह वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया और अन्त समय में विपुल गिरि पर्वत पर जाकर संथारा आदि करके सिद्ध–बुद्ध और मुक्त हो गये।

।। इइ चउत्थमज्झयणं–चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

पंचममज्झयणं-पंचम अध्ययन

मूल– **एवं खेमए वि गाहावई, नवरं काकंदी नयरी सोलसवासा परियाओ विपुले पव्वए सिद्धे ।।5।।**

संस्कृत छाया– एवं क्षेमकः अपि गाथापतिः, (नवीनं) विशेषः काकंदी नगरी षोडशवर्षाणि पर्यायः विपुले पर्वते सिद्धः ।।5।।

अन्वयार्थ–एवं खेमए वि गाहावई = इसी प्रकार क्षेमक गाथापति भी, विशेष, **नवरं काकंदी नयरी** = बात यह है कि ये कांकदी नगरी के थे, **सोलसवासा परियाओ** = सोलह वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन कर, **विपुले पव्वए सिद्धे** = वे विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए। **5।**

भावार्थ–इसी प्रकार क्षेमक गाथापति का वर्णन समझें। विशेष इतना है कि काकंदी नगरी के वे निवासी थे और सोलह वर्ष का उनका दीक्षा काल रहा। यावत् वे भी विपुल गिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ पचममज्झयणं–पंचम अध्ययन समाप्त ।।

छट्ठमज्झयणं-षष्ठम अध्ययन

मूल– **एवं धितिहरे वि गाहावई, काकंदी नयरी सोलसवासा परियाओ जाव विपुले सिद्धे ।।6 ।।**

संस्कृत छाया– एवं धृतिधरोऽपि गाथापतिः, काकंदी नगरी, षोडशवर्षाणि पर्यायः यावत् विपुले सिद्धः ।।6 ।।

अन्वयार्थ–एवं धितिहरे वि गाहावई, = इसी प्रकार धृतिधर गाथापति, **काकंदी नयरी सोलसवासा** = कांकदी के निवासी सोलह वर्ष, **परियाओ जाव विपुले सिद्धे** = दीक्षा पालकर यावत् विपुल पर्वत पर सिद्ध हो गये ।।6 ।।

भावार्थ–ऐसे ही धृतिधर गाथापति का भी वर्णन समझें। वे काकंदी के निवासी थे सोलह वर्ष तक मुनि चारित्र पालकर वह भी विपुलिगिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ छट्ठमज्झयणं–षष्ठम अध्ययन समाप्त ।।

सत्तममज्झयणं-सप्तम अध्ययन

मूल– **एवं केलासे वि गाहावई, नवरं सागेए नयरे, वारस वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ।।7 ।।**

संस्कृत छाया– एवं केलासोऽपि गाथापतिः, नवीनं साकेतं नगरं, द्वादश वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।।7 ।।

अन्वयार्थ–एवं केलासे वि गाहावई, = इसी प्रकार केलास गाथापति, **नवरं सागेए नयरे, वारस वासाइं परियाओ** = साकेत नगरवासी, 12 वर्ष दीक्षा पर्याय का, **विपुले सिद्धे** = पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।।7 ।।

भावार्थ–ऐसे ही कैलाश गाथापति भी थे। विशेष यह था कि ये साकेत नगर के रहने वाले थे, इन्होंने बारह वर्ष की दीक्षा पर्याय पाली और विपुलगिरि पर्वत पर से सिद्ध हुए।

।। इइ सत्तममज्झयणं–सप्तम अध्ययन समाप्त ।।

अट्ठममज्झयणं-अष्टम अध्ययन

मूल- **एवं हरिचंदणे वि गाहावई, सागेए नयरे, वारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।।8 ।।**

संस्कृत छाया- एवं हरिचंदन: अपि गाथापति:, साकेतं नगरं, द्वादश वर्षाणि पर्याय:, विपुले सिद्ध: ।।8 ।।

अन्वयार्थ-एवं हरिचंदणे वि गाहावई, = इसी प्रकार हरिचंदन गाथापति, **सागेए नयरे** = साकेत नगर वासी, **वारस वासा परियाओ, विपुले सिद्धे** = बारह वर्ष तक दीक्षा पालन कर विपुल पर्वत पर सिद्ध हुए ।।8 ।।

भावार्थ-ऐसे ही आठवें हरिचन्दन गाथापति भी थे। वे भी साकेत नगर के निवासी थे। उन्होंने भी बारह वर्ष तक श्रमण-चारित्र का पालन किया और अन्त में विपुलगिरि पर से सिद्ध हुए।

।। इइ अट्ठममज्झयणं-अष्टम अध्ययन समाप्त।।

नवममज्झयणं-नवम अध्ययन

मूल- **एवं वारत्तए वि गाहावई, नवरं रायगिहे नयरे, बारसवासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।।9 ।।**

संस्कृत छाया- एवं वारत्तक: अपि गाथापति:, विशेष: राजगृहं नगरं द्वादश वर्षाणि पर्याय:, विपुले सिद्ध: ।9 ।

अन्वयार्थ-एवं वारत्तए वि गाहावई, = इसी प्रकार वारत्त गाथापति, **नवरं रायगिहे नयरे, बारसवासा परियाओ** = राजगृह नगर वासी बारह वर्ष दीक्षा, अन्त में, **विपुले सिद्धे** = विपुल पर्वत पर सिद्ध हो गये ।।9 ।।

भावार्थ-इसी तरह नवमें वारत्त गाथापति थे। विशेष यह था कि ये राजगृह नगर के रहने वाले थे। बारह वर्ष का चारित्र पालन कर वे विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ नवममज्झयणं-नवम अध्ययन समाप्त ।।

दसममज्झयणं-दशम अध्ययन

मूल- एवं सुदंसणे वि गाहावई, नवरं वाणियगामे नयरे, दूइपलासए चेइए, पंचवासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।।10।।

संस्कृत छाया- एवं सुदर्शनः अपि गाथापतिः, विशेषः-वाणिज्यग्रामं नगरं, द्युतिपलाशकं चैत्यम्, पंचवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।10।

अन्वयार्थ-एवं सुदंसणे वि गाहावई, = इसी प्रकार सुदर्शन गाथापति, **नवरं वाणियगामे नयरे,** = वाणिज्य ग्रामवासी, **दूइपलासए चेइए पंचवासा परियाओ** = द्युतिपलाश उद्यान, पाँच वर्ष दीक्षा पाल कर, **विपुले सिद्धे** = विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।।10।।

भावार्थ-दशवें सुदर्शन गाथापति का वर्णन भी इसी प्रकार समझें। विशेष यह था कि वाणिज्य ग्राम नगर के बाहर द्युतिपलाश नाम का उद्यान था। वहाँ दीक्षित हुए। वे पाँच वर्ष चारित्र पालकर विपुलगिरि से सिद्ध हुए।

।। इइ दसममज्झयणं-दसवाँ अध्ययन समाप्त ।।

एगारसममज्झयणं-ग्यारहवाँ अध्ययन

मूल- एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई, वाणियगामे नयरे, पंचवासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।।11।।

संस्कृत छाया- एवं पूर्णभद्रोऽपि गाथापतिः वाणिज्यग्रामं नगरं पंचवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।।11।।

अन्वयार्थ-एवं पुण्णभद्दे वि गाहावई, = इसी प्रकार पूर्णभद्र गाथापति, **वाणियगामे नयरे, पंचवासा** = वाणिज्य-ग्राम नगर वासी, पाँच वर्ष चारित्र, **परियाओ, विपुले सिद्धे** = पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।।11।।

भावार्थ-पूर्णभद्र गाथापति का वर्णन भी ऐसे ही समझें। विशेष यह था कि वे वाणिज्यग्राम नगर के रहने वाले थे। पाँच वर्ष का चारित्र पालन कर वे भी विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

।। इइ एगारसममज्झयणं-ग्यारहवाँ अध्ययन समाप्त ।।

बारसममज्झयणं-बारहवाँ अध्ययन

मूल- **एवं सुमणभद्दे वि गाहावई, सावत्थी नयरी, बहुवासा परियाआविपुले सिद्धे ।।12।।**

संस्कृत छाया- एवं सुमनभद्रोऽपि गाथापतिः, श्रावस्ती नगरी, बहुवर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।।12।।

अन्वयार्थ-एवं सुमणभद्दे वि गाहावई = इसी प्रकार सुमनभद्र गाथापति, **सावत्थी नयरी, बहुवासा परियाओ =** श्रावस्ती नगरी। बहुत वर्षों तक दीक्षा पालन कर, **विपुले सिद्धे =** विपुलाचल पर सिद्ध हुए।।12।।

भावार्थ-सुमनभद्र गाथापति का वर्णन भी ऐसे ही समझें। ये श्रावस्ती नगरी के निवासी थे। बहुत वर्षों तक मुनि-चारित्र का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ बारसममज्झयणं-बारहवाँ अध्ययन समाप्त ।।

तेरसममज्झयणं-तेरहवाँ अध्ययन

मूल- **एवं सुपइट्ठे वि गाहावई, सावत्थी नयरी, सत्तावीसं वासा परियाओ, विपुले सिद्धे ।।13।।**

संस्कृत छाया- एवं सुप्रतिष्ठोऽपि गाथापतिः, श्रावस्ती नगरी, सप्तविंशति वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।।13।।

अन्वयार्थ-एवं सुपइट्ठे वि गाहावई, = इसी प्रकार सुप्रतिष्ठ गाथापति। **सावत्थी नयरी, सत्तावीसं वासा =** श्रावस्ती, नगरी। सत्ताईस वर्ष, **परियाओ, विपुले सिद्धे =** चारित्र पालकर, विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।।13।।

भावार्थ-ऐसे ही सुप्रतिष्ठ गाथापति को भी समझें। ये भी श्रावस्ती नगरी के रहने वाले थे और सत्ताईस वर्ष का श्रमण-चारित्र पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ तेरसममज्झयणं-तेरहवाँ अध्ययन समाप्त।।

चउद्दसममज्झयणं-चौदहवाँ अध्ययन

मूल- **एवं मेहे वि गाहावई, रायगिहे नयरे बहूहिं वासाइं परियाओ, विपुले सिद्धे ।।14 ।।**

संस्कृत छाया- एवं मेघोऽपि गाथापतिः, राजगृहं नगरं, बहूनि वर्षाणि पर्यायः, विपुले सिद्धः ।।14 ।।

अन्वयार्थ-एवं मेहे वि गाहावई, = इसी प्रकार मेघ गाथापति। **रायगिहे नयरे बहूहिं वासाइं =** राजगृह वासी बहुत वर्ष, **परियाओ, विपुले सिद्धे =** चारित्र पालकर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए ।।14 ।।

भावार्थ-मेघ गाथापति को भी ऐसे ही समझें। ये राजगृह नगर के निवासी थे। बहुत वर्ष चारित्र-धर्म का पालन कर विपुलगिरि पर सिद्ध हुए।

।। इइ चउद्दसममज्झयणं-चौदहवाँ अध्ययन समाप्त ।।

पण्णरसममज्झयणं-पन्द्रहवाँ अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **उक्खेवओ पण्णरसमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरे नयरे, सिरीवणे उज्जाणे। तत्थ णं पोलासपुरे नयरे विजए नामं राया होत्था। तस्स णं विजयस्स रण्णो सिरी नामं देवी होत्था, वण्णओ। तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते नामं कुमारे होत्था। सुकुमाले। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव सिरीवणे विहरइ। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई, जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे नयरे उच्चणीय जाव अडइ ।।1 ।।**

संस्कृत छाया- उत्क्षेपकः पंचदशमस्य अध्ययनस्य। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये पोलासपुरं नगरम् श्रीवनम् उद्यानम्। तत्र खलु पोलासपुरे नगरे विजयो नाम

राजा अभवत्, तस्य खलु विजयस्य राज्ञ: श्री नाम देवी आसीत्। वर्ण्या। तस्य खलु विजयस्य राज्ञ: पुत्र: श्रीदेव्या: आत्मज: अतिमुक्त: नाम कुमार: आसीत्। सुकोमल:। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमण: भगवान् महावीर: यावत् श्रीवने विहरति। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवत: महावीरस्य ज्येष्ठ: अन्तेवासी इन्द्रभूति, यथा प्रज्ञप्त्यां तथा पोलासपुरे नगरे उच्चनीचं यावत् अटति।।1।।

अन्वयार्थ–उक्खेवओ पण्णरसमस्स अज्झयणस्स = पन्द्रहवें अध्ययन का उत्क्षेपक। **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं =** हे जम्बू! उस काल, **तेणं समएणं पोलासपुरे =** उस समय में पोलासपुर नामक, **नयरे, सिरीवणे उज्जाणे =** नगर व श्रीवन नामक उद्यान था। **तत्थ णं पोलासपुरे नयरे =** उस पोलासपुर नामक नगर में, **विजए नामं राया होत्था। =** विजय नामक राजा राज्य करता था। **तस्स णं विजयस्स रण्णो =** उस विजय नामक राजा की, **सिरी नामं देवी होत्था =** उसकी श्रीदेवी नाम की महारानी थी, **वण्णओ =** जो कि वर्णन करने योग्य थी। **तस्स णं विजयस्स रण्णो पुत्ते =** महाराज विजय का पुत्र और, **सिरीए देवीए अत्तए अइमुत्ते =** श्री देवी का आत्मज अतिमुक्त, **नामं कुमारे होत्था =** नामक कुमार था, जो कि, **सुकुमाले =** सुकोमल था। **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस काल उस समय में, **समणे भगवं महावीरे जाव =** श्रमण भगवान महावीर विचरते हुए, **सिरीवणे विहरइ =** श्रीवन में पधारे। **तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स =** उस काल उस समय श्रमण, **भगवओ महावीरस्स जेट्ठे =** भगवान महावीर के ज्येष्ठ, **अंतेवासी इंदभूई =** शिष्य इन्द्रभूति, **जहा पण्णत्तीए जाव पोलासपुरे =** भगवती सूत्र के वर्णन के अनुसार यावत् पोलासपुर, **नयरे उच्चणीय जाव अडइ =** नगर में बड़े छोटे कुलों में भ्रमण करने लगे।।1।।

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–''हे भगवन्! चौदह अध्ययनों का भाव मैंने सुना। अब पन्द्रहवें अध्ययन में प्रभु ने क्या भाव कहा है, कृपा कर बतलावें।'' आर्य सुधर्मा कहते हैं–''निश्चय ही हे जम्बू! उस काल उस समय में पोलासपुर नामक नगर था, वहाँ श्रीवन नामक उद्यान था। उस नगर में विजय नाम का राजा था जिसकी श्रीदेवी नाम की महारानी थी, जो वर्णन योग्य थी।

महाराज विजय का पुत्र और श्रीदेवी का आत्मज अतिमुक्त नाम का एक कुमार था जो बड़ा सुकुमाल था। उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर विचरते हुए श्रीवन उद्यान में पधारे।

उस काल उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति का भगवती सूत्र में जैसे भगवान से पूछकर भिक्षार्थ जाने का वर्णन किया गया वैसे ही यावत् उस पोलासपुर नगर में वे छोटे-बड़े कुलों में सामूहिक भिक्षा हेतु भ्रमण करने लगे।

सूत्र 2

मूल– **इमं च णं अइमुत्ते कुमारे ण्हाए जाव विभूसिए बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य, डिंभएहिं य डिंभियाहिं य, कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धिं संपरिवुडे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव उवागए। तेहिं बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं य डिंभएहिं य डिंभियाहिं य कुमारएहिं य कुमारियाहिं य सद्धिं संपरिवुडे अभिरममाणे अभिरममाणे विहरइ। तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नयरे उच्चणीय जाव अडमाणे इंदट्ठाणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयइ। तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागए। भगवं गोयमं एवं वयासी–के णं भंते ! तुब्भे, किं वा अडह ? ।।2 ।।**

संस्कृत छाया– अस्मिन् च खलु (काले) अतिमुक्तः कुमारः स्नातः यावत् विभूषितः बहुभिः दारकैश्च दारिकाभिश्च डिंभकैश्च डिंभिकाभिश्च कुमारैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृत्तः स्वकाद् गृहात् प्रतिनिष्क्राम्यति, प्रतिनिष्क्रम्य यत्रैव इन्द्रस्थानं तत्रैव उपागतः। तत्र बहुभिः दारकैश्च दारिकाभिश्च डिंभकैश्च डिंभिकाभिश्च कुमारकैश्च कुमारिकाभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः अभिरममाणः अभिरममाणः विहरति। तदा खलु भगवान् गौतमः पोलासपुरे नगरे उच्चनीच यावत् अटमानः इन्द्रस्थानस्य अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजति। ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतमं अदूरसामन्तेन व्यतिव्रजन्तं पश्यति, दृष्ट्वा यत्रैव भगवान् गौतमः तत्रैव उपागतः। भगवन्तं गौतमं एवमवदत्–''के खलु हे भदन्त ! यूयम् ? किं वा अटथ ?''

अन्वयार्थ–इमं च णं अइमुत्ते कुमारे = इधर अतिमुक्त कुमार, **ण्हाए जाव विभूसिए** = स्नान करके यावत् विभूषित होकर, **बहूहिं दारएहिं य दारियाहिं** = बहुत से लड़के लड़कियों, **य, डिंभएहिं य डिंभियाहिं य,** = बालक, बालिकाओं एवं, **कुमारएहिं य कुमारियाहिं य** = कुमार–कुमारिकाओं, **सद्धिं संपरिवुडे सयाओ गिहाओ** = के साथ घिरा हुआ अपने घर से, **पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता** = निकला निकलकर, **जेणेव इंदट्ठाणे तेणेव** = जहाँ इन्द्र का स्थान (क्रीड़ा स्थान) है वहाँ पर, **उवागए** = आया। **तेहिं बहूहिं** = वहाँ आकर उन बहुत से, **दारएहिं य दारियाहिं य** = बच्चे–बच्चियों, **डिंभएहिं य डिंभियाहिं य** = लड़के–लड़कियों एवं, **कुमारएहिं य कुमारियाहिं य** = कुमार–कुमारिकाओं के, **सद्धिं**

संपरिवुडे अभिरममाणे = साथ उनसे घिरा हुआ प्रेम पूर्वक, **अभिरममाणे विहरइ** = खेलते हुए विचरण करने लगा। **तए णं भगवं गोयमे पोलासपुरे** = तभी भगवान गौतम पोलासपुर, **नयरे उच्चणीय जाव** = नगर में छोटे-बड़े कुलों में, **अडमाणे इंदट्ठाणस्स** = यावत् भ्रमण करते हुए क्रीड़ास्थल, **अदूरसामंतेणं वीइवयइ** = के पास से जा रहे थे। **तए णं से अइमुत्ते कुमारे** = इसी समय अतिमुक्त कुमार ने, **भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं** = भगवान गौतम को पास से ही, **वीईवयमाणं पासइ, पासित्ता** = जाते हुए देखा, देखकर, **जेणेव भगवं गोयमे तेणेव** = जहाँ भगवान गौतम थे वहाँ, **उवागए भगवं गोयमं** = आये और भगवान गौतम से, **एवं वयासी-के णं भंते ! तुब्भे** = इस प्रकार बोले-हे पूज्य ! आप कौन हैं, **किं वा अडह ?** = और क्यों घूम रहे हैं ?।।2।।

भावार्थ-इधर अतिमुक्त कुमार स्नान करके यावत्, शरीर की विभूषा करके बहुत से लड़के-लड़कियों, बालक-बालिकाओं और कुमार कुमारिकाओं के साथ अपने घर से निकले और निकल कर जहाँ इन्द्र-स्थान यानी क्रीड़ास्थल है, वहाँ आये। वहाँ उन बालक-बालिकाओं के साथ वे प्रेम पूर्वक खेलेने लगे।

उस समय भगवान गौतम पोलासपुर नगर में छोटे-बड़े कुलों में यावत् भ्रमण करते हुए उस क्रीड़ा स्थल के पास से जा रहे थे, तब अतिमुक्त कुमार ने उनको पास से जाते हुए देखकर उनके पास आये और उनसे इस प्रकार बोले-''हे पूज्य! आप कौन हैं और इस तरह क्यों घूम रहे हैं ?''

सूत्र 3

मूल- **तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी-''अम्हे णं देवाणुप्पिया! समणा णिग्गंथा इरियासमिया जाव बंभयारी उच्चणीय जाव अडामो।'' तए णं अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-''एह णं भंते ! तुब्भे, जण्णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमि।'' त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गिण्हइ, गिण्हित्ता, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा सिरीदेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता, हट्ठतुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता, जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागया। भगवं गोयमं तिक्खुत्तो-आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता, वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ।।3।।**

संस्कृत छाया- ततः खलु भगवान् गौतमः अतिमुक्तं कुमारमेवमवदत्-''वयं खलु हे देवानुप्रिय ! श्रमणाः निर्ग्रन्थाः ईर्यासमिताः यावत् ब्रह्मचारिणः उच्चनीच यावदटामः।'' ततः

खलु अतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतममेवमवदत्–''इह खलु (आगच्छत) भदन्त ! यूयं येनाहं युष्मभ्यं भिक्षां दापयामि।'' इति कृत्वा भगवन्तं गौतमं अंगुल्या गृह्णाति, गृहीत्वा यत्रैव स्वकं गृहम् तत्रैव उपागतः। ततः खलु सा श्रीदेवी भगवन्तं गौतमं आगच्छंतं पश्यति, दृष्ट्वा, हृष्टतुष्टा यावत् आसनादभ्युत्तिष्ठति, अभ्युत्थाय, यत्रैव भगवान् गौतमः तत्रैव उपागता। भगवन्तं गौतमं त्रिःकृत्वा आदक्षिणं-प्रदक्षिणां करोति, कृत्वा, वंदते, नमस्यति, वन्दित्वा, नमस्यित्वा विपुलेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रतिलम्भयति यावत् प्रतिविसर्जयति ।।3 ।।

अन्वयार्थ–तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं = तब भगवान गौतम ने अतिमुक्त, **कुमारं एवं वयासी–** = कुमार को इस प्रकार कहा–, **अम्हे णं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय ! हम, **समणा णिग्गंथा इरियासमिया** = श्रमण निर्ग्रन्थ हैं, ईर्यासमिति आदि सहित, **जाव बंभयारी उच्चणीय जाव** = यावत् ब्रह्मचारी हैं, छोटे-बड़े कुलों, **अडामो** = में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं। **तए णं अइमुत्ते कुमारे** = तब अतिमुक्त कुमार, **भगवं गोयमं एवं वयासी–** = भगवान गौतम से इस प्रकार कहने लगे–, **एह णं भंते ! तुब्भे, जण्णं अहं** = हे भगवन् ! आप इधर पधारें जिससे, **तुब्भं भिक्खं दवावेमि** = मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ। **त्ति कट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए** = ऐसा कहकर भगवान गौतम की अँगुली, **गिण्हइ, गिण्हित्ता, जेणेव सए गिहे** = पकड़ी, पकड़कर जहाँ अपना घर था, **तेणेव उवागए** = वहाँ पर ही ले आये। **तए णं सा सिरीदेवी भगवं गोयमं** = फिर उस श्री देवी ने भगवान गौतम को, **एज्जमाणं पासइ, पासित्ता, हट्ठतुट्ठ** = आते हुए देखा, देख कर हृष्टतुष्ट, **जाव आसणाओ अब्भुट्ठेइ,** = बनी यावत् अपने आसन से उठी, **अब्भुट्ठित्ता, जेणेव भगवं गोयमे** = उठकर जहाँ भगवान गौतम थे, **तेणेव उवागया** = वहाँ आई। **भगवं गोयमं तिक्खुत्तो–** = भगवान गौतम को तीन बार, **आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता, वंदइ,** = आदक्षिणा प्रदक्षिणा करती है, **नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता** = करके वन्दन-नमस्कार करती है, करके, **विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं** = बहुत से अशन पान खाद्य स्वाद्य से, **पडिलाभेइ जाव पडिविसज्जेइ** = प्रतिलाभ दिया यावत् विसर्जित किया ।।3।।

भावार्थ–तब भगवान गौतम ने अतिमुक्त कुमार को उत्तर देते हुए इस तरह कहा–''हे देवानुप्रिय ! हम श्रमण-निर्ग्रन्थ, ईर्यासमिति के धारक गुप्त ब्रह्मचारी हैं और छोटे बड़े कुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हैं।'' यह सुनकर अतिमुक्तकुमार भगवान गौतम से इस प्रकार बोले–''हे भगवन् ! आप आओ ! मैं आपको भिक्षा दिलाता हूँ।''

ऐसा कहकर अतिमुक्तकुमार ने भगवान गौतम की अंगुली पकड़ी और उनको जहाँ अपना घर था वहाँ ले आये। श्रीदेवी महारानी भगवान गौतम को आते देखकर बहुत ही प्रसन्न हुई यावत् आसन से उठकर

जहाँ भगवान गौतम थे उनके सम्मुख आई, भगवान गौतम को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना की, नमस्कार किया। फिर विपुल अशन-पान खादिम और स्वादिम से प्रतिलाभ दिया यावत् विधिपूर्वक विसर्जित किया।

सूत्र 4

मूल- **तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-''कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?'' तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं कुमारं एवं वयासी- ''एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम धम्मायरिए धम्मोवएसए भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे, इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तत्थ णं अम्हे परिवसामो।'' तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं गोयमं एवं वयासी-''गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं समणं भगवं महावीरं पायवंदए?'' ''अहासुहं देवाणुप्पिया!''।।4।।**

संस्कृत छाया- ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतमम् एवमवदत्-''क्व नु भदन्त ! यूयं परिवसथ ?'' ततः खलु भगवान् गौतमः अतिमुक्तं कुमारं एवमवदत्-''एवं खलु देवानुप्रिय ! मम धर्माचार्यो धर्मोपदेशको भगवान् महावीरः आदिकरः यावत् संप्राप्तुकामः इहैव पौलासपुरात् नगरात् बहिः श्रीवने उद्याने यथाप्रतिरूपं अवग्रहमवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावमानः विहरति, तत्र खलु वयं परिवसामः।'' ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः भगवन्तं गौतमम् एवमवदत्- ''गच्छामि खलु भदन्त ! अहं युष्माभिः सार्द्धं श्रमणं भगवन्तं महावीरं पादवन्दितुम् ?'' ''यथासुखं देवानुप्रिय !''।।4।।

अन्वयार्थ-तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं = इसके बाद अतिमुक्त कुमार भगवान, **गोयमं एवं वयासी-** = गौतम से इस प्रकार बोले-, **''कहि णं भंते ! तुब्भे परिवसह ?''** = ''हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते हैं ?'', **तए णं भगवं गोयमे अइमुत्तं** = गौतम स्वामी ने इस पर अतिमुक्त, **कुमारं एवं वयासी-** = कुमार से कहा-, **''एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम** = ''हे देवानुप्रिय ! मेरे, **धम्मायरिए धम्मोवएसए** = धर्माचार्य धर्मोपदेशक, **भगवं महावीरे आइगरे जाव संपाविउकामे,** = धर्म के आदिकर यावत् मोक्ष के कामी भगवान महावीर, **इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया** = इसी पोलासपुर नगर के

बाहर, **सिरिवणे उज्जाणे अहापडिरूवं =** श्रीवन नामक उद्यान में यथाकल्प, **उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा =** अवग्रह लेकर संयम एवं तप से, **अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, =** आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे हैं, **तत्थ णं अम्हे परिवसामो =** हम वहाँ पर ही रहते हैं। **तए णं से अइमुत्ते कुमारे भगवं =** तब अतिमुक्त कुमार भगवान, **गोयमं एवं वयासी– =** गौतम से इस प्रकार बोले–, **गच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं सद्धिं =** हे पूज्य ! मैं भी चलूँ आपके साथ, **समणं भगवं महावीरं =** श्रमण भगवान महावीर को, **पायवंदए ? =** वन्दन करने ? **अहासुहं देवाणुप्पिया ! =** हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो ।।4।।

भावार्थ–इसके बाद भगवान गौतम से अतिमुक्त–कुमार यों बोले–"हे देवानुप्रिय ! आप कहाँ रहते हैं ?" इस पर भगवान गौतम ने अतिमुक्तकुमार को उत्तर दिया–"हे देवानुप्रिय ! मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक भगवान महावीर धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष के कामी ! इसी पोलासपुर नगर के बाहर श्रीवन उद्यान में मर्यादानुसार अवग्रह लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित कर विचरते हैं, हम वहीं रहते हैं।"

अतिमुक्त कुमार–"हे पूज्य ! क्या मैं भी आपके साथ श्रमण भगवान महावीर को वन्दन करने चलूँ?

श्री गौतम–"हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो।"

सूत्र 5

मूल– **तए णं से अइमुत्ते कुमारे गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ जाव पज्जुवासइ। तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागए। जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता, संजमेणं तवसा अप्पाणं–भावेमाणे विहरइ। तए णं समणे भगवं महावीरे अइमुत्तस्स कुमारस्स धम्मकहा। तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जं नवरं "देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए जाव पव्वयामि।" "अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह !" ।।5।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सोऽतिमुक्तः कुमारः गौतमेन सार्द्धं यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य श्रमणं भगवन्तं महावीरं त्रिःकृत्वा आदक्षिण–प्रदक्षिणां

करोति, कृत्वा वन्दते यावत् पर्युपासते। ततः खलु भगवान् गौतमः यत्रैव श्रमणः भगवान् महावीरः तत्रैव उपागतः। यावत् प्रतिदर्शयति, प्रतिदर्श्य, संयमेन तपसा आत्मानं भावमानः विहरति। ततः खलु श्रमणः भगवान् महावीरः अतिमुक्ताय कुमाराय धर्मकथां (कथितवान्)। ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य अंतिके धर्मं श्रुत्वा, निशम्य हृष्टः तुष्टः यो विशेषः "देवानुप्रिय! अम्बापितरौ आपृच्छामि। ततः खलु अहं देवानुप्रियाणामन्तिके यावत् प्रव्रजामि।" "यथासुखं देवानुप्रिय! मा प्रतिबंधं कुरु"॥5॥

अन्वयार्थ–तए णं से अइमुत्ते कुमारे = इसके बाद अतिमुक्त कुमार, **गोयमेणं सद्धिं जेणेव समणे** = गौतम स्वामी के साथ जहाँ श्रमण, **भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ** = भगवान महावीर थे वहाँ आये, **उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं** = आकर श्रमण भगवान महावीर को, **तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं** = तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा, **करेइ, करित्ता वंदइ जाव** = करते हैं, करके यावत् वन्दन-नमस्कार, **पज्जुवासइ** = करके उनकी सेवा करने लगे। **तए णं भगवं गोयमे जेणेव समणे** = तभी भगवान गौतम श्रमण, **भगवं महावीरे तेणेव उवागए** = भगवान महावीर के समीप आये यावत्, **जाव पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता,** = आहार दिखाया, दिखाकर, **संजमेणं तवसा अप्पाणं-भावेमाणे** = संयम-तप से आत्मा को भावित **विहरइ** = करते हुए विचरने लगे।

तए णं समणे भगवं महावीरे = तब श्रमण भगवान महावीर ने, **अइमुत्तस्स कुमारस्स** = अतिमुक्त कुमार को, **धम्मकहा** = (उद्देश्य करके) धर्मकथा सुनाई। **तए णं से अइमुत्ते कुमारे समणस्स** = तब वह अतिमुक्त कुमार श्रमण, **भगवओ महावीरस्स अंतिए** = भगवान महावीर के पास, **धम्मं सोच्चा निसम्म** = धर्मकथा सुनकर और उसे धारण कर, **हट्ठतुट्ठ** = बहुत प्रसन्न हुआ। **जं नवरं देवाणुप्पिया !** = यह विशेष (बोले) हे देवानुप्रिय!, **अम्मापियरो आपुच्छामि** = मैं माता-पिता से पूछता हूँ। **तए णं अहं देवाणुप्पियाणं** = तब मैं देवानुप्रिय के पास यावत्, **अंतिए जाव पव्वयामि** = दीक्षा ग्रहण करूँगा। **अहासुहं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो, **मा पडिबंधं करेह** = परन्तु धर्मकार्य में प्रमाद मत करो॥5॥

भावार्थ–तब अतिमुक्त कुमार गौतम स्वामी के साथ श्रमण भगवान महावीर के पास आये और आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की और वन्दना करके पर्युपासना करने लगे। इधर भगवान गौतम भगवान महावीर के समीप आये और उन्हें लाया हुआ आहार-पानी दिखाकर संयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तब श्रमण भगवान महावीर ने अतिमुक्त कुमार को धर्म कथा सुनाई। धर्म कथा सुनकर और उसे धारण कर अतिमुक्त कुमार बड़े प्रसन्न हुए और बोले–''हे देवानुप्रिय! मैं अपने माता–पिता को पूछकर फिर आपकी सेवा में दीक्षा ग्रहण करूँगा।''

भगवान बोले–''हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसे करो। पर धर्मकार्य में प्रमाद मत करो।''

सूत्र 6

मूल– **तए णं से अइमुत्ते कुमारे जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए जाव पव्वइत्तए। अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–''बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता ! किण्णं तुमं जाणासि धम्मं ?'' तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापियरो एवं वयासी–''एवं खलु अहं अम्मयाओ जं चेव जाणामि, तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि।'' तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो एवं वयासी–''कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव जाणासि तं चेव न जाणासि, जं चेव न जाणासि तं चेव जाणासि ?''।।6।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः यत्रैव अम्बापितरौ तत्रैव उपागतः यावत् प्रव्रजितुम्। अतिमुक्तं कुमारं अम्बापितरौ एवमवदताम्–''बालः असि तावत् त्वं पुत्र ! असंबुद्धः असि त्वं पुत्र ! किं खलु त्वं जानासि धर्मम् ?'' ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः अम्बापितरौ एवमवदत्–''एवं खलु अहं मातापितरौ ! यत् चैव जानामि तत् चैव न जानामि, यच्चैव न जानामि तच्चैव जानामि।'' ततः खलु तं अतिमुक्तं कुमारं अम्बापितरौ एवमवदताम्–''कथं खलु त्वं पुत्र ! यच्चैव जानासि तच्चैव न जानासि, यच्चैव न जानासि तच्चैव जानासि ?''।।6।।

अन्वयार्थ–तए णं से अइमुत्ते कुमारे = तब वह अतिमुक्त कुमार, **जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागए =** जहाँ अपने माता–पिता थे वहाँ आये और, **जाव पव्वइत्तए। =** यावत् दीक्षा लेने की आज्ञा माँगी। **अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो =** अतिमुक्त कुमार को माता–पिता, **एवं वयासी– =** ने इस प्रकार कहा–, **''बाले सि ताव तुमं पुत्ता ! =** ''हे पुत्र! अभी तुम बालक हो। **असंबुद्धे सि तुमं पुत्ता ! =** हे पुत्र! अभी तुम असंबुद्ध हो। **किण्णं तुमं जाणासि धम्मं ?'' =** तुम धर्म को क्या जानो ?'' **तए णं से अइमुत्ते कुमारे =** तब अतिमुक्त कुमार ने, **अम्मापियरो एवं वयासी– =** माता–पिता से इस प्रकार कहा–, **''एवं**

खलु अहं अम्मयाओ = ''हे माता-पिता !, **जं चेव जाणामि, तं चेव न =** मैं जिसको जानता हूँ उसी को नहीं जानता हूँ।

जाणामि, जं चेव न जाणामि = जिसको नहीं जानता हूँ, **तं चेव जाणामि।'' =** उसी को जानता हूँ।'' **तए णं तं अइमुत्तं कुमारं =** तब उस अतिमुक्त कुमार से, **अम्मापियरो एवं वयासी- =** माता-पिता इस प्रकार बोले-, ''**कहं णं तुमं पुत्ता ! जं चेव =** ''हे पुत्र ! यह कैसे है कि तुम जिसको, **जाणासि तं चेव न जाणासि =** जानते हो उसी को नहीं जानते हो, **जं चेव न जाणासि तं चेव जाणासि ?'' =** जिसे नहीं जानते हो उसको जानते हो ?''।।6।।

भावार्थ-इसके पश्चात् अतिमुक्त कुमार अपने माता-पिता के पास आकर बोले-''अम्ब ! आपकी आज्ञा पाकर मैं दीक्षा लेना चाहता हूँ।''

इस पर माता-पिता अतिमुक्तकुमार से इस प्रकार बोले-''हे पुत्र ! अभी तुम बालक हो, असंबुद्ध हो। अभी धर्म को तुम क्या जानो ?''

अतिमुक्तकुमार बोला-'हे माता-पिता ! मैं जिसको जानता हूँ, उस को नहीं जानता। और जिसको नहीं जानता हूँ उसको जानता हूँ।'' माता-पिता-''पुत्र ! तुम जिसको जानते हो उसको नहीं जानते और जिसको नहीं जानते उसको जानते हो, यह कैसे ?''

सूत्र 7

मूल- **तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मा-पियरो एवं वयासी-''जाणामि अहं अम्मयाओ ! जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं, न जाणामि अहं अम्मयाओ ! काहे वा कहिं वा कहं वा केवच्चिरेण वा ? न जाणामि अहं अम्मयाओ ! केहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइयतिरिक्खजोणिय-मणुस्सदेवेसु उववज्जंति, जाणामि णं अम्मयाओ ! जहा सएहिं कम्मायणेहिं जीवा नेरइय जाव उववज्जंति। एवं खलु अहं अम्मयाओ ! जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि।**

तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव पव्वइत्तए।'' तए णं तं अइमुत्तं कुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति बहूहिं

आघवणाहिं जाव तं इच्छामो ते जाया! एगदिवसमवि रायसिरिं पासेत्तए। तए णं से अइमुत्ते कुमारे अम्मापिउवयणमणुवत्तमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ। अभिसेओ जहा महाबलस्स णिक्खमणं जाव सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूइं वासाइं सामण्ण परियाओ गुणरयणं जाव विपुले सिद्धे।।7।।

संस्कृत छाया– ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः अम्बापितरौ एवमवदत्–''जानामि अहम् अम्बतातौ! यथा जातेन अवश्यं मर्तव्यम्, न जानामि अहम् अम्बतातौ! कदा वा कुत्र वा कथं वा कियच्चिरेण वा ? न जानामि अहम् अम्बतातौ! कैः कर्मायतनैः जीवाः नैरयिकतिर्यग्योनिक मनुष्यदेवेषु उपपद्यंते (उत्पद्यन्ते) ? जानामि खलु अम्बतातौ! यथा स्वकैः कर्मायतनैः जीवाः नैरयिक यावद् उपपद्यंते। एवं खलु अहं अम्बतातौ! यच्चैव जानामि, तच्चैव न जानामि, यच्चैव न जानामि तच्चैव जानामि।

तद् इच्छामि खलु अम्बतातौ! युवाभ्यामभ्यनुज्ञातो यावत् प्रव्रजितुम्।'' ततः खलु तं अतिमुक्तं कुमारं अम्बापितरौ यदा न शक्नुतः बहुभिः आख्यायनाभिः यावत् तत् इच्छावः ते पुत्र! एक दिवसमपि राज्यश्रियं द्रष्टुम्। ततः खलु सः अतिमुक्तः कुमारः मातापितृवचनमनुवर्तमानः तूष्णीकः संतिष्ठते। अभिषेको यथा महाबलस्य निष्क्रमणं यावत् सामायिकाद्येकादश अंगानि अधीते, बहूनि वर्षाणि श्रामण्यपर्यायः, गुणरत्ननामकं तपः यावत् विपुले सिद्धः।।7।।

अन्वयार्थ–तए णं से अइमुत्ते कुमारे = तब वह अतिमुक्त कुमार, **अम्मा–पियरो एवं वयासी–** = माता–पिता से इस प्रकार बोले–, **जाणामि अहं अम्मयाओ!** = हे माता–पिता! मैं इतना जानता हूँ, **जहा जाएणं अवस्सं मरियव्वं,** = कि जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा, **न जाणामि अहं अम्मयाओ!** = परन्तु मैं यह नहीं जानता कि, **काहे वा कहिं वा कहं वा** = कब, कहाँ, कैसे तथा, **केवच्चिरेण वा ?** = कितने समय बाद मरेगा?, **न जाणामि अहं अम्मयाओ!** = मैं नहीं जानता हे माता–पिता!, **केहिं कम्मायणेहिं जीवा** = किन कर्मों द्वारा जीव, **नेरइयतिरिक्खजोणिय–** = नरक, तिर्यंच, **मणुस्सदेवेसु उववज्जंति** = मनुष्य और देव योनियों में उत्पन्न होते हैं ? परन्तु यह मैं, **जाणामि णं अम्मयाओ!** = अवश्य जानता हूँ कि जीव, **जहा सएहिं कम्मायणेहिं** = अपने कर्मों से, **जीवा नेरइय जाव उववज्जंति** = नरक आदि योनियों को प्राप्त होते हैं। **एवं खलु अहं अम्मयाओ!** = हे माता–पिता ! इसीलिए मैंने

कहा, **जं चेव जाणामि तं चेव न =** कि जिसको जानता हूँ उसको नहीं, **जाणामि, जं चेव न जाणामि =** जानता हूँ तथा जिसको नहीं जानता हूँ, **तं चेव जाणामि =** उसी को जानता हूँ।

तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! = इसलिए मेरी इच्छा है कि मैं, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए जाव =** आपकी आज्ञा लेकर भगवान महावीर, **पव्वइत्तए =** प्रभु के पास प्रव्रजित हो जाऊँ। **तए णं तं अइमुत्तं कुमारं =** तब अतिमुक्त कुमार को, **अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति =** माता-पिता जब बहुत-सी युक्ति-प्रयुक्तियों, **बहूहिं आघवणाहिं =** से समझाने में समर्थ नहीं हुए, **जाव तं इच्छामो ते जाया ! =** तब बोले-हे पुत्र ! हम, **एगदिवसमवि रायसिरिं =** एक दिन के लिए तुम्हारी राज्यलक्ष्मी, **पासेत्तए =** देखना चाहते हैं। **तए णं से अइमुत्ते कुमारे =** तब अतिमुक्तकुमार, **अम्मापिउवयण-मणुवत्तमाणे =** माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करते, **तुसिणीए संचिट्ठइ =** हुए मौन रहे, **अभिसेओ जहा महाबलस्स =** तब महाबल के समान उनका राज्याभिषेक हुआ, **णिक्खमणं जाव =** और निष्क्रमण हुआ यावत्, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, =** सामायिक आदि ग्यारह अंग पढ़े। **बहूइं वासाइं सामण्ण परियाओ =** बहुत वर्षों तक चारित्र पाला, **गुणरयणं जाव =** गुण रत्न तप का आराधन किया, **विपुले सिद्धे =** यावत् विपुलाचल पर सिद्ध हुए।।7।।

भावार्थ-अतिमुक्तकुमार-''हे माता-पिता ! मैं जानता हूँ कि जो जन्मा है उसको अवश्य मरना होगा, पर यह नहीं जानता कि कब, कहाँ, किस प्रकार और कितने दिन बाद मरना होगा। फिर मैं यह भी नहीं जानता कि जीव किन कर्मों के कारण नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवयोनि में उत्पन्न होते हैं, पर इतना जानता हूँ कि जीव अपने ही कर्मों के कारण नरक यावत् देवयोनि में उत्पन्न होते हैं।''

इस प्रकार निश्चय ही हे माता-पिता ! मैं जिसको जानता हूँ उसी को नहीं जानता और जिसको नहीं जानता उसी को जानता हूँ।

अत: हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा होने पर यावत् प्रव्रज्या लेना चाहता हूँ।'' अतिमुक्त कुमार को माता-पिता जब बहुत-सी युक्ति-प्रयुक्तियों से समझाने में समर्थ नहीं हुए, तो बोले-''हे पुत्र ! हम एक दिन के लिए तुम्हारी राज्यलक्ष्मी की शोभा देखना चाहते हैं।''

तब अतिमुक्त कुमार माता-पिता के वचन का अनुवर्तन करके मौन रहे।

तब महाबल के समान उनका राज्याभिषेक हुआ। फिर भगवान के पास दीक्षा लेकर सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण-चारित्र का पालन किया। गुण रत्न तप का आराधन किया। यावत् विपुलाचल पर्वत पर सिद्ध हुए।

।। इइ पण्णरसममज्झयणं-पन्द्रहवाँ अध्ययन समाप्त ।।

सोलसममज्झयणं-सोलहवाँ अध्ययन

सूत्र 1

मूल– **उक्खेवओ सोलसमस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसीए नयरीए, काममहावणे चेइए तत्थ णं वाणारसीए अलक्खे नामं राया होत्था। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव विहरइ। परिसा णिग्गया। तए णं अलक्खे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ जहा कूणिए जाव पज्जुवासइ, धम्मकहा। तए णं से अलक्खे राया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए जहा उदायणे तहा णिक्खंते, नवरं जेट्ठं पुत्तं रज्जे अहिसिंचइ, एक्कारस अंगाइं, बहुवासा परियाओ, जाव विपुले सिद्धे। एवं खलु जम्बू ! समणेणं जाव छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते।।1।।**

संस्कृत छाया– उत्क्षेपक: षोडशस्य अध्ययनस्य। एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये वाराणस्यां नगर्यां काममहावनं चैत्यं तत्र खलु वाराणस्यां अलक्ष: नाम राजा अभवत्। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमण: भगवान् महावीर: यावत् विहरति। परिषद् निर्गता। तत: खलु अलक्षो राजा अस्या: कथाया: लब्धार्थ: सन् हृष्ट तुष्ट: यथा कूणिक: यावत् पर्युपासते। (भगवता अलक्षमुद्दिश्य) धर्मकथा कथिता। तत: खलु स: अलक्ष: राजा श्रमणस्य भगवत: महावीरस्य अंतिके यथा उदायन: तथा निष्क्रान्त:, विशेष: ज्येष्ठं पुत्रं राज्ये अभिषिंचति, एकादशांगानि अधीते बहुवर्षाणि पर्याय:, यावत् विपुले सिद्ध:। एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् षष्ठस्य वर्गस्य अयमर्थ: प्रज्ञप्त:।।1।।

अन्वयार्थ–उक्खेवओ सोलसमस्स अज्झयणस्स। = सोलहवें अध्ययन का उत्क्षेपक, **एवं खलु जम्बू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं =** हे जम्बू ! उस काल उस समय में, **वाणारसीए नयरीए =** वाराणसी नगरी में, **काममहावणे चेइए तत्थ णं =** काम महावन नामक उद्यान था। उस, **वाणारसीए अलक्खे नामं राया होत्था =** वाराणसी में अलक्ष नामक राजा था। **तेणं कालेणं तेणं समएणं =** उस

काल उस समय में, **समणे भगवं महावीरे जाव** = श्रमण भगवान महावीर प्रभु यावत्, **विहरइ** = विचरण करते हुए उद्यान में पधारे। **परिसा णिग्गया** = परिषद् वन्दन करने को निकली। **तए णं अलक्खे राया इमीसे** = तब राजा अलक्ष भगवान के, **कहाए लद्धट्ठे समाणे** = पधारने का संवाद सुनकर बहुत, **हट्ठतुट्ठ जहा कूणिए जाव** = प्रसन्न हुआ और कूणिक के समान, **पज्जुवासइ,** = यावत् भगवान की सेवा करने लगा। **धम्मकहा** प्रभु ने धर्मकथा कही। **तए णं से अलक्खे राया** = तब अलक्ष राजा ने, **समणस्स भगवओ महावीरस्स** = श्रमण भगवान महावीर, **अंतिए जहा उदायणे तहा** = के पास उदायन राजा की तरह दीक्षा, **णिक्खंते, नवरं जेट्ठं पुत्तं** = ग्रहण की। विशेषत: ज्येष्ठ पुत्र को, **रज्जे अहिसिंचइ** = राज्य पर आरूढ़ किया, **एक्कारस अंगाइं** = उन्होंने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, **बहुवासा परियाओ,** = बहुत वर्षों तक चारित्र पालकर, **जाव विपुले सिद्धे** = यावत् विपुल गिरि पर सिद्ध हुए। **एवं खलु जम्बू !** = इस प्रकार हे जम्बू !, **समणेणं जाव** = श्रमण भगवान महावीर ने यावत्, **छट्ठमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते** = षष्ठ वर्ग का यह अर्थ कहा है।

भावार्थ–श्री जम्बू-''हे भगवन्! पन्द्रहवें अध्ययन का भाव सुना। अब सोलहवें अध्ययन में प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर बताइये।''

श्री सुधर्मा स्वामी-''हे जम्बू! उस काल उस समय वाराणसी नगरी में काम महावन नामक उद्यान था। उस वाराणसी नगरी का अलक्ष नाम का राजा था।

उस काल उस समय श्रमण भगवान प्रभु महावीर यावत् उस उद्यान में पधारे। जन परिषद् प्रभु-वन्दन को निकली। राजा अलक्ष भी प्रभु महावीर के पधारने की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और कोणिक राजा के समान वह भी यावत् प्रभु की सेवा उपासना करने लगा। प्रभु ने धर्मकथा कही।

तब अलक्ष राजा ने श्रमण भगवान महावीर के पास 'उदायन' की तरह श्रमण-दीक्षा ग्रहण की।

विशेष बात यह रही कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सिंहासन पर बिठाया। ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत वर्षों तक श्रमण चारित्र का पालन किया यावत् विपुलगिरि पर्वत पर जाकर सिद्ध हुए।

इस प्रकार ''हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर ने छट्ठे वर्ग का यह अर्थ कहा है।''

।। इइ सोलसममज्झयणं-सोलहवाँ अध्ययन समाप्त ।।

।। इइ छट्ठो वग्गो-षष्ठ वर्ग समाप्त ।।

सत्तमो वग्गो-सप्तम वर्ग

सूत्र 1

मूल- **जइ णं भंते। सत्तमस्स वग्गस्स उक्खेवओ, जाव तेरस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा-**

नंदा तह नंदवई, नंदोत्तर-नंदसेणिया चेव।
मरुया सुमरुया महमरुया, मरुद्देवा य अट्ठमा ।।1।।

भद्दा य सुभद्दा य, सुजाया सुमणाइया।
भूयदिण्णा य बोद्धव्वा सेणिय-भज्जाण नामाइं ।।2 ।।

संस्कृत छाया- यदि खलु भदन्त ! सप्तमस्य वर्गस्य उत्क्षेपकः, यावत् त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तानि यथा-

नन्दा तथा नन्दवती, नन्दोत्तरा नन्दश्रेणिका चैव।
मरुता सुमरुता महामरुता, मरुद्देवा च अष्टमी ।।1।।

भद्रा च सुभद्रा च, सुजाता सुमनातिका।
भूतदत्ता च बोद्धव्या श्रेणिक-भार्याणां नामानि ।।2।।

अन्वयार्थ-जइ णं भंते। सत्तमस्स = यदि छठे वर्ग का भाव प्रभु ने कहा तो ''हे भगवन् सातवें वर्ग का, **वग्गस्स उक्खेवओ** = उत्क्षेपक प्रभु ने क्या भाव कहा है ? **जाव तेरस अज्झयणा** = श्री सुधर्मा स्वामी-''यावत् 13 अध्ययन, **पण्णत्ता। तं जहा-** = कहे हैं। वे इस प्रकार हैं-, **नंदा तह नंदवई,** = 1. नंदा, 2. नन्दवती, **नंदोत्तर-नंदसेणिया चेव।** = 3. नन्दोत्तरा, 4. नन्दश्रेणिका, **मरुया सुमरुया महमरुया,** = 5. मरुता, 6. सुमरुता, 7. महामरुता, **मरुद्देवा य अट्ठमा** = 8. मरुदेवा ।।1 ।।

भद्दा य सुभद्दा य, = 9. भद्रा, 10. सुभद्रा, **सुजाया सुमणाइया।** = 11. सुजाता, 12. सुमनायिका **भूयदिण्णा य बोद्धव्वा** = और 13. भूतदत्ता। **सेणिय-भज्जाण नामाइं** = ये सब श्रेणिक राजा की भार्याओं के नाम समझें।''

भावार्थ-श्री जम्बू स्वामी-''हे भगवन्! छट्ठे वर्ग का भाव सुना। अब सातवें वर्ग का प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर कहिये।''

श्री सुधर्मा स्वामी–''सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे गये गये हैं, जो इस प्रकार हैं :–1. नन्दा, 2. नन्दवती, 3. नन्दोत्तरा, 4. नन्दश्रेणिका, 5. मरुता, 6. सुमरुता, 7. महामरुता, 8. मरुद्देवा, 9. भद्रा 10. सुभद्रा, 11. सुजाता, 12. सुमनायिका, 13. भूतदत्ता। ये सब श्रेणिक राजा की रानियाँ थीं।''

सूत्र 2

मूल– **जइ णं भंते! तेरस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ? एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए, सेणिए राया, वण्णओ। तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नामं देवी होत्था। वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा णिग्गया। तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव हट्ठतुट्ठा कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता, जाणं जहा पउमावई। जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ, जाव सिद्धा। एवं तेरस वि नंदागमेण नेयव्वाओ। णिक्खेवओ ।।2 ।।**

संस्कृत छाया– यदि खलु भदन्त ! त्रयोदश अध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन कः अर्थः प्रज्ञप्तः ? एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये राजगृहे नगरे, गुणशिलकं चैत्यम्, श्रेणिकः राजा, वर्ण्यः तस्य खलु श्रेणिकस्य राज्ञः नन्दा नाम देवी अभवत्। वर्ण्या (वर्णकः)। (तत्र नगरे) स्वामी समवसृतः। परिषद् निर्गता। ततः खलु सा नंदा देवी अस्याः कथायाः लब्धार्था सती यावत् हृष्टतुष्टा कौटुम्बिक–पुरुषान् शब्दयति। शब्दयित्वा यानं यथा पद्मावती। यावद् एकादशाङ्गानि अधीत्य, विंशतिः वर्षाणि पर्यायः, यावत् सिद्धा। एवं त्रयोदशापि देव्यः नंदा–गमेन नेतव्याः। निक्षेपकः ।।2 ।।

अन्वयार्थ–जइ णं भंते ! = हे भगवन् ! यदि सातवें वर्ग के, **तेरस अज्झयणा पण्णत्ता,** = तेरह अध्ययन बतलाये हैं, **पढमस्स णं भंते ! =** तो हे पूज्य ! प्रथम, **अज्झयणस्स समणेणं** = अध्ययन का श्रमण भगवान, **जाव संपत्तेणं के अट्ठे** = यावत् मुक्ति को प्राप्त प्रभु ने क्या, **पण्णत्ते ?** = अर्थ फरमाया है ? **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं** = हे जम्बू ! उस काल, **तेणं समएणं रायगिहे नयरे** = उस समय में राजगृह नगर में, **गुणसिलए चेइए,** = गुणशिलक नाम का उद्यान था। **सेणिए राया, वण्णओ** = श्रेणिक राजा थे जो वर्णन करने योग्य थे। **तस्स णं सेणियस्स रण्णो** = उस श्रेणिक राजा के, **नंदा नामं देवी होत्था** = नन्दा नाम की रानी थी जो कि, **वण्णओ** = वर्णन करने योग्य थी।

सामी समोसढे = उस नगर में महावीर स्वामी पधारे। **परिसा निग्गया =** परिषद् वन्दन करने को गई। **तए णं सा नंदा देवी इमीसे =** तब वह नंदा महारानी भगवान, **कहाए लद्धट्ठा समाणा जाव =** महावीर के पधारने का समाचार, **हट्ठतुट्ठा =** सुनकर यावत् हृष्टतुष्ट हुई, **कोडुंबिय पुरिसे सद्दावेइ =** और आज्ञाकारी सेवकों को बुलाया।, **सद्दावित्ता =** बुलाकर, **जाणं जहा पउमावई =** पद्मावती की तरह धार्मिक यान लाने की आज्ञा दी। **जाव एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता =** यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, **वीसं वासाइं परियाओ, =** बीस वर्ष चारित्र्य पालनकर, **जाव सिद्धा =** यावत् सिद्ध हुई। **एवं तेरस वि नंदागमेण =** इसी प्रकार नन्दवती आदि 12 ही अध्ययन नन्दा के समान जानें। **नेयव्वाओ =** निक्षेपक यानी भगवान ने सातवें, **णिक्खेवओ =** वर्ग का यह भाव फरमाया है।

भावार्थ–श्री जम्बू–''हे भगवन् ! प्रभु ने सातवें वर्ग के तेरह अध्ययन कहे हैं, तो प्रथम अध्ययन का हे पूज्य ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ?''

श्री सुधर्मा स्वामी–''इस प्रकार निश्चय हे जम्बू ! उस काल उस समय में राजगृह नामक एक नगर था। उसके बाहर गुणशील नामक एक उद्यान था। वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता था। वह वर्णन–योग्य था। उस श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की रानी थी, जो वर्णन–योग्य थी। प्रभु महावीर राजगृह नगर के उद्यान में पधारे। जन परिषद् वंदन करने को गयी।

उस समय नंदा देवी भगवान के आने की खबर सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और आज्ञाकारी सेवक को बुलाकर धार्मिक रथ लाने की आज्ञा दी। पद्मावती की तरह इसने भी दीक्षा ली यावत् ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बीस वर्ष तक चारित्र–पर्याय का पालन किया यावत् अन्त में सिद्ध हुई। इसी प्रकार नन्दवती आदि बाकी 12 ही अध्ययन नंदा के समान हैं। यह निक्षेपक है। इस प्रकार हे जम्बू ! भगवान ने सातवें वर्ग का यह भाव कहा है।

।। इइ सत्तमो वग्गो–सप्तम वर्ग समाप्त ।।

अट्ठमो वग्गो-अष्टम वर्ग

पढममज्झयणं-प्रथम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **जइ णं भंते ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे पण्णत्ते। अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?**

एवं खलु जंबू ! समणेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता। तं जहा-

काली, सुकाली, महाकाली, कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा।
वीरकण्हा य बोद्धव्वा, रामकण्हा तहेव य।
पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी महासेणकण्हा य।

जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता, पढमस्स णं भंते ! अज्झयणस्स समणेणं जाव संपत्तेणं के अट्ठे पण्णत्ते ?

संस्कृत छाया- यदि खलु भदन्त ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अंतकृद्दशानां सप्तमस्य वर्गस्य अयमर्थ: प्रज्ञप्त: । अष्टमस्य खलु भदन्त ! वर्गस्य अंतकृद्दशानां श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन क: अर्थ: प्रज्ञप्त: ?

एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अन्तकृद्दशानाम् अष्टमस्य वर्गस्य दशअध्ययनानि प्रज्ञप्तानि। तानि यथा-काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा। वीरकृष्णा च बोद्धव्या, रामकृष्णा तथैव च ।। पितृसेनकृष्णा नवमी, दशमी महासेनकृष्णा च ।। यदि खलु भदन्त ! अष्टमस्य वर्गस्य दशाध्ययनानि प्रज्ञप्तानि, प्रथमस्य खलु भदन्त ! अध्ययनस्य श्रमणेन यावत् संप्राप्तेन क: अर्थ: प्रज्ञप्त: ?

अन्वयार्थ-जइ णं भंते ! समणेणं = श्री जंबू-''यदि हे भगवन् ! श्रमण, **जाव संपत्तेणं** = यावत् मोक्ष को प्राप्त प्रभु ने, **अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं** = आठवें अंग अंतकृद्दशा के, **सत्तमस्स वग्गस्स अयमट्ठे** = सातवें वर्ग का यह अर्थ, **पण्णत्ते** = फरमाया है। तो हे भगवन् !, **अट्ठमस्स णं भंते ! वग्गस्स अंतगडदसाणं** = अंतकृद्दशा के आठवें वर्ग का, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = प्रभु ने क्या अर्थ फरमाया है ?

एवं खलु जंबू ! समणेणं = हे जम्बू ! श्रमण भगवान, **जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स** = यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग, **अंतगडदसाणं** = अन्तकृद्दशा सूत्र के, **अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा पण्णत्ता** = आठवें वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं। **तं जहा–** = जो कि इस प्रकार हैं–, **काली, सुकाली, महाकाली,** = काली, सुकाली, महाकाली, **कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा** = कृष्णा, सुकृष्णा और महाकृष्णा, **वीरकण्हा य बोद्धव्वा, रामकण्हा तहेव य =** = वीरकृष्णा और रामकृष्णा, **पिउसेणकण्हा नवमी,** = नवमी पितृसेन कृष्णा और, **दसमी महासेणकण्हा य** = दसवीं महासेन कृष्णा जानना चाहिये। **जइ णं भंते ! अट्ठमस्स वग्गस्स दस अज्झयणा** = यदि हे भगवन् ! आठवें वर्ग, के दस अध्ययन, **पण्णत्ता, पढमस्स णं** = कहे हैं तो प्रथम, **भंते ! अज्झयणस्स** = अध्ययन का, **समणेणं जाव संपत्तेणं** = श्रमण यावत् मुक्ति को प्राप्त प्रभु ने क्या, **के अट्ठे पण्णत्ते ?** = अर्थ फरमाया है ?

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–''हे भगवन् ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के सातवें वर्ग का यह भाव कहा है तो अब अन्तकृद्दशा सूत्र के आठवें वर्ग का श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने क्या अर्थ कहा है ? कृपा कर बताइये।''

श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू ! श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा के आठवें वर्ग में दश अध्ययन कहे हैं, जो इस प्रकार हैं–1. काली, 2. सुकाली, 3. महाकाली, 4. कृष्णा, 5. सुकृष्णा, 6. महाकृष्णा, 7. वीर कृष्णा, 8. रामकृष्णा, 9. पितृसेन कृष्णा और 10. महासेन कृष्णा।''

श्री जम्बू स्वामी–''हे भगवन् ! जब आठवें वर्ग के दस अध्ययन कहे हैं, तो प्रभो ! प्रथम अध्ययन का श्रमण यावत् मुक्ति प्राप्त प्रभु ने अपने श्रीमुख से क्या अर्थ कहा है ?''

सूत्र 2

मूल– **एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था, पुण्णभद्दे चेइए। तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया, काली नामं देवी होत्था, वण्णओ। जहा नंदा सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ–छट्ठट्ठमेहिं जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।**

संस्कृत छाया– एवं खलु जम्बू ! तस्मिन् काले तस्मिन् समये चंपा नाम्नी नगरी आसीत्, पूर्णभद्रं चैत्यमासीत्। तत्र खलु चंपायां नगर्यां श्रेणिकस्य राज्ञः भार्या कूणिकस्य राज्ञः क्षुल्लमाता काली नामं देवी अभवत्, वर्ण्या। यथा नंदा सामायिकादीनि एकादश–अंगानि अधीते, बहुभिः चतुर्थषष्ठाष्टमैः यावत् आत्मानं भावयन्ती विहरति।

अन्वयार्थ–एवं खलु जंबू ! तेणं कालेणं = हे जम्बू ! उस काल, **तेणं समएणं चंपा नामं =** उस समय में चंपा नाम की, **नयरी होत्था, पुण्णभद्दे =** नगरी थी, वहाँ पूर्णभद्र नाम, **चेइए =** का बगीचा था। **तत्थ णं चम्पाए नयरीए =** वहाँ चम्पा नगरी में, **सेणियस्स रण्णो भज्जा =** श्रेणिक राजा की भार्या एवं, **कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया =** कूणिक राजा की छोटी माता, **काली नामं देवी =** काली नामक देवी थी, **होत्था, वण्णओ =** जो कि वर्णन करने योग्य थी। **जहा नंदा =** काली रानी ने नन्दा देवी के समान ही प्रभु महावीर, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ =** के पास प्रव्रज्या लेकर सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। **बहूहिं चउत्थ–छट्ठट्ठमेहिं जाव =** बहुत से उपवास, बेले, तेले आदि तपस्या के द्वारा, **अप्पाणं भावेमाणे विहरइ =** आत्मा को भावित करती हुई यावत् विचरण करने लगी।

भावार्थ–श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू ! उस काल उस समय चंपा नाम की एक नगरी थी। वहाँ पूर्णभद्र नाम का एक उद्यान था। कोणिक राजा राज्य करता था। उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और महाराज कोणिक की छोटी माता काली नाम की देवी थी, जो वर्णन करने योग्य थी। नन्दा देवी के समान काली रानी ने भी प्रभु महावीर के समीप श्रमण–दीक्षा ग्रहण करके सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया एवं वह बहुत से उपवास, बेले, तेले आदि तपस्या से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।।2।।

सूत्र 3

मूल– **तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी–''इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।'' तए णं सा काली अज्जा अज्ज चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सा काली आर्या अन्यदा कदाचिद् यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य एवमवदत्–इच्छामि खलु आर्या ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलीं तपःकर्म उपसंपद्य विहर्तुम्। यथा सुखं देवानुप्रिया ! मा प्रतिबन्धं कुरुष्व। ततः खलु सा काली आर्या आर्यया चन्दनया अभ्यनुज्ञाता सती रत्नावलीं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति।

अन्वयार्थ–तए णं सा काली अज्जा = तदनन्तर वह काली आर्या, **अण्णया कयाइं जेणेव =**

अन्य किसी दिन जहाँ पर, **अज्जचंदणा अज्जा तेणेव** = आर्या चन्दनबाला थी वहाँ, **उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी–** = आई और आकर इस प्रकार बोली, **इच्छामि णं अज्जाओ !** = हे आर्ये !, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी** = आपकी आज्ञा हो तो मैं, **रयणावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए** = रत्नावली तप अंगीकार करके विचरण करना चाहती हूँ। **अहासुहं देवाणुप्पिया !** = हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो वैसे करो, **मा पडिबंधं करेह** = परन्तु धर्मकार्य में विलम्ब मत करो। **तए णं सा काली अज्जा** = तब वह काली आर्या, **अज्ज चंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी** = आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर, **रयणावलिं तवोकम्मं** = रत्नावली तप को, **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ** = अंगीकार करके विचरने लगी जो इस प्रकार है ।।3 ।।

भावार्थ–एक दिन वह काली आर्या आर्यचन्दना आर्या के समीप आयी और आकर हाथ जोड़कर विनयपूर्वक इस प्रकार बोली–''हे आर्ये ! आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो मैं रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।''

महासती आर्या चन्दना ने कहा–''हे देवानुप्रिये ! जैसा सुख हो, करो, धर्म साधना के कार्य में प्रमाद मत करो।''

तब काली आर्या, महासती चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है–

सूत्र 4

मूल– **तं जहा–चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता**

चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं खलु एसा रयणावलीए तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी, एगेणं संवच्छरेणं तिहिं मासेहिं बावीसाए य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ ।।4 ।।

संस्कृत छाया– तद्यथा–चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा, अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टौ षष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्षष्ठानि करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टषष्ठानि करोति, कृत्वा

सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा एवं खलु एषा रत्नावल्याः तपःकर्मणः प्रथमा परिपाटी, एकेन संवत्सरेण त्रिभिर्मासैः द्वाविंशत्या च अहोरात्रैः यथासूत्रं यावत् आराधिता भवति ।।4 ।।

अन्वयार्थ–तं जहा–चउत्थं करेइ, करित्ता = उन्होंने उपवास किया और करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = इच्छानुसार विगय युक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = इच्छानुसार विगय युक्त पारणा किया, पारणा करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता** = आठ बेले किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेले का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चौला (चार उपवास) किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चोद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **वीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बावीसइमं करेइ, करित्ता** = दस उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउवीसइमं करेइ, करित्ता** = ग्यारह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छव्वीसइमं करेइ, करित्ता** = बारह का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता** = तेरह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **तीसइमं करेइ, करित्ता** = चौदह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = पन्द्रह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके,

चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता = सोलह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चोत्तीसं छट्ठाइं करेइ, करित्ता** = चौंतीस बेले किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = सोलह की तपस्या की, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = पन्द्रह की तपस्या की, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **तीसइमं करेइ, करित्ता** = चौदह की तपस्या की, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता** = तेरह की तपस्या की, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छव्वीसइमं करेइ, करित्ता** = बारह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउवीसइमं करेइ, करित्ता** = ग्यारह उपवास का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बावीसइमं करेइ, करित्ता** = दस का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चोद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बारसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चार का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके,**अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तीन उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेले का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठछट्ठाइं करेइ, करित्ता** = आठ बेले किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, **एवं खलु एसा रयणावलीए** = इस प्रकार इस रत्नावली, **तवोकम्मस्स पढमा परिवाडी** = तप की प्रथम परिपाटी की, **एगेणं संवच्छरेणं तिहिं**

मासेहिं = एक वर्ष तीन महीने, **बावीसाए य अहोरत्तेहिं =** व बावीस अहोरात्रि से, **अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ =** सूत्रानुसार यावत् आराधना की जाती है।

भावार्थ–काली आर्या ने पहले उपवास किया और इच्छानुसार विगय से पारणा किया, फिर बेला किया और सर्वकामगुण–विगय सहित पारणा किया।

तेला किया, सर्वकामगुणयुक्त अर्थात् इच्छानुसार विगय सहित पारणा किया; फिर आठ बेले किये और सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया; फिर उपवास किया और सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया; बेले की तपस्या की और सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया; तेला किया और सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया; दशम अर्थात् चोले की तपस्या की और सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया; द्वादश–पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया; चतुर्दश–छः का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया; षोडश–सात का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया; अष्टादश–आठ का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया; नव का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया; दस का तप किया, और सर्वकामगुण पारणा किया; ग्यारह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया; बारह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेरह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चौदह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पन्द्रह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, सोलह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चौंतीस बेले किए और सर्वकामगुण पारणा किया, फिर सोलह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पन्द्रह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चौदह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेरह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बारह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, ग्यारह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, दस का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, नव का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, आठ का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, सात का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छः का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोले का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चोले का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेले का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेले का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास का तप किया और सर्वकाम–गुण पारणा किया, आठ बेले किये और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, षष्ठ–बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया इस प्रकार काली आर्या ने इस रत्नावली तप की प्रथम परिपाटी की आराधना की सूत्रानुसार रत्नावली तप की इस आराधना की प्रथम परिपाटी (लड़ी) एक वर्ष तीन महीने और बावीस अहोरात्र में पूर्ण की जाती है। इस एक परिपाटी में तीन सौ चौरासी दिन तपस्या के एवं अठासी दिन पारणे के होते हैं। इस प्रकार कुल चार सौ बहत्तर दिन होते हैं।।4।।

सूत्र 5

मूल– **तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता एवं जहा पढमाए, नवरं सव्वपारणए विगइवज्जं पारेइ जाव आराहिया भवइ। तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए चउत्थं करेइ, करित्ता अलेवाडं पारेइ, सेसं तहेव। एवं चउत्था परिवाडी, नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ, सेसं तं चेव। पढमम्मि सव्वकामपारणयं, बीइयाए विगइवज्जं। तइयम्मि अलेवाडं, आयंबिलओ चउत्थम्मि।। तए णं सा काली अज्जा रयणावली तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठमदसमदुवालसेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।।5 ।।**

संस्कृत छाया– तदनन्तरं च खलु द्वितीयस्यां परिपाट्याम् चतुर्थं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा एवं यथा प्रथमायाम्, विशेष: सर्वपारणायां विकृतिवर्जं पारयति यावत् आराधिता भवति तदनंतरं च खलु तृतीयायां परिपाट्यां चतुर्थं करोति, कृत्वा अलेपकृतं पारयति, शेषं तथैव। एवम् चतुर्थी परिपाटी, विशेषत: सर्वपारणा दिने आचामाम्लं पारयति, शेषं तदेव प्रथमायां सर्वकामपारणकम्, द्वितीयायां विकृतिवर्जम्। तृतीयायाम् अलेपकृतम्, आचामाम्लम् च चतुर्थ्याम्। तत: खलु सा काली आर्या रत्नावली तप:कर्म पंचभि: संवत्सरै: द्वाभ्यां मासाभ्याम् अष्टाविंशत्या च दिवसै: यथासूत्रं यावत् आराध्य यत्रैव आर्यचंदना आर्या तत्रैव उपागता, उपागत्य आर्याचंदनां वन्दते नमस्यति वन्दित्वा नमस्यित्वा, बहुभि: चतुर्थषष्ठाष्टम–दशमद्वादशभि: तप:कर्मभि: आत्मानं भावयन्ती विहरति ।।5 ।।

अन्वयार्थ–तयाणंतरं च णं दोच्चाए परिवाडीए = तदनन्तर द्वितीय परिपाटी में, **चउत्थं करेइ करित्ता** = उपवास किया, करके, **विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता** = विगयरहित पारणा किया, करके, **छट्ठं**

करेइ, करित्ता = बेले का तप किया, करके, **विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता =** विगयरहित पारणा किया। **एवं जहा पढमाए, =** शेष प्रथम परिपाटी के समान, **नवरं सव्वपारणए विगइवज्जं =** विशेष यह कि सब पारणे विगय रहित, **पारेइ जाव आराहिया भवइ =** पालते यावत् आराधते हैं। **तयाणंतरं च णं तच्चाए परिवाडीए =** तदनन्तर वह तृतीय परिपाटी में, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास करती, करके, **अलेवाडं पारेइ =** लेपरहित पारणा करती है। **सेसं तहेव =** शेष पहले की तरह। **एवं चउत्था परिवाडी =** इसी प्रकार चौथी परिपाटी में, **नवरं सव्वपारणए आयंबिलं पारेइ =** विशेष सब पारणे आयंबिल से करती है।, **सेसं तं चेव =** शेष उसी प्रकार। **पढमम्मि सव्वकामपारणयं =** पहली परिपाटी में सर्वकामगुणयुक्त पारणा, **बीइयाए विगइवज्जं =** द्वितीय में विगयरहित, **तइयम्मि अलेवाडं =** तीसरी में लेपरहित और, **आयंबिलओ चउत्थम्मि =** चौथी में आयंबिल से पारणा किया। **तए णं सा काली अज्जा =** इस प्रकार उस काली आर्या ने, **रयणावली तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं =** रत्नावली तप कर्म की पाँच वर्ष, **दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं =** दो मास व अट्ठाईस दिनों में, **अहासुत्तं =** सूत्रानुसार, **जाव आराहित्ता जेणेव =** यावत् आराधना करके जहाँ, **अज्जचंदणा अज्जा तेणेव =** आर्यचंदना आर्या थी वहाँ, **उवागया, उवागच्छित्ता =** वह आई, आकर, **अज्जचंदणं, वंदइ नमंसइ =** आर्यचंदना को उसने वन्दना-नमस्कार किया, **वंदित्ता नमंसित्ता =** वन्दन-नमस्कार करके, **बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम- =** बहुत से उपवास, बेले, तेले, **दसमदुवालसेहिं तवोकम्मेहिं =** चौले, पचोले आदि तप से, **अप्पाणं भावेमाणी विहरइ =** आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।।5।।

भावार्थ–इसके पश्चात् दूसरी परिपाटी में काली आर्या ने उपवास किया और विगयरहित पारणा किया, बेला किया और विगयरहित पारणा किया। इस प्रकार यह भी पहली परिपाटी के समान है। इसमें केवल यह विशेष (अन्तर) है कि पारणा विगयरहित होता है। इस प्रकार सूत्रानुसार इस दूसरी परिपाटी का आराधन किया जाता है।

इसके पश्चात् तीसरी परिपाटी में वह काली आर्या उपवास करती है और लेप रहित पारणा करती है। शेष पहले की तरह है। ऐसे ही काली आर्या ने चौथी परिपाटी की आराधना की। इसमें विशेषता यह है कि सब पारणे आयंबिल से करती है। शेष उसी प्रकार है। प्रथम परिपाटी में सर्वकामगुण एवं दूसरी में विगयरहित पारणा किया। तीसरी में लेप रहित और चौथी परिपाटी में आयंबिल से पारणा किया।

इस भाँति काली आर्या ने रत्नावली तप की पाँच वर्ष दो महीने और अट्ठावीस दिनों में सूत्रानुसार यावत् आराधना पूर्ण करके जहाँ आर्या चन्दना थी वहाँ आई और आर्या चन्दना को वंदना नमस्कार किया। फिर बहुत से उपवास, बेले, तेले, चार पाँच आदि तप से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।।5।।

सूत्र 6

मूल– **तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं जाव धमणि–संतया जाया यावि होत्था। से जहा नामए इंगाल सगडी वा जाव सुहुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए अईव अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ ।।6 ।।**

संस्कृत छाया– ततः खलु सा काली आर्या तेन उदारेण यावत् धमनि–संतता जाता चाप्यभवत्। तद् यथा नाम अंगारशकटी वा यावत् सुहुतहुताशन इव भस्मराशिप्रतिच्छन्ना तपसा तेजसा तपस्तेजःश्रिया च अतीव अतीव उपशोभमाना तिष्ठति ।।6 ।।

अन्वयार्थ–तए णं सा काली अज्जा = तपस्या के बाद वह काली आर्या, **तेणं ओरालेणं जाव धमणि– =** उस प्रधान तपस्या से यावत् सूख गई, **संतया जाया यावि होत्था =** और उसकी धमनियाँ दीखने लगीं। **से जहा नामए इंगाल सगडी वा जाव सुहुयहुयासणे =** जैसे कोयले की भरी गाड़ी में चलते हुए आवाज निकलती है वैसे ही उनकी, हड्डियाँ कड़–कड़ बोलने लगी, यावत्, **इव भासरासिपलिच्छण्णा =** भस्म से ढ़की हुई सुहुत अग्नि के समान, **तवेणं तेएणं तवतेयसिरीए =** तपस्या के तेज से, **अईव अईव उवसोभेमाणी चिट्ठइ =** अतीव शोभायमान थी ।।6 ।।

भावार्थ–इतनी तपस्या करने के बाद काली आर्या उस प्रधान तपस्या से यावत् सूख गई और उसकी खुली नसें दिखने लगी। जैसे कोयले से भरी गाड़ी में चलते समय आवाज निकलती है वैसे उठते–बैठते, चलते–फिरते काली आर्या की हड्डियाँ भी कड़–कड़ बोलने लगी। होम की हुई अग्नि के समान एवं भस्म से ढ़ँकी हुई आग जैसे भीतर से प्रज्वलित रहती है, वैसे तपस्या के तप तेज की शोभा से आर्या काली का शरीर अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ।।6 ।।

सूत्र 7

मूल– **तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए, जहा खंदयस्स चिंता जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे, बले, वीरिए पुरिसक्कार–परक्कमे, सद्धाधिई–संवेगे वा ताव मे सेयं कल्लं जाव जलंते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा झूसणा–झूसियाए भत्तपाणपडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्तिकट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव**

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी–''इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा जाव विहरित्तए।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह।'' तओ काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणाझूसणा झूसिया जाव विहरइ। सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे जाव चरिमुस्सासणीसासेहिं सिद्धा।।7।।

संस्कृत छाया– ततः खलु तस्याः काल्याः आर्यायाः अन्यदा कदाचित् पूर्व–रात्रापररात्रिकाले अयमध्यासः संजातः यथा स्कन्दकस्य चिंता यावदस्ति उत्थानं कर्म, बलं वीर्यम् पुरुषकारः पराक्रमः श्रद्धाधृतिः संवेगः वा तावत् मे श्रेयः कल्ये यावत् ज्वलति आर्यचंदनाम् आर्याम् आपृच्छ्य आर्यचंदनया आर्यया अभ्यनुज्ञातायाः सत्याः संलेखना जोषणा–जुष्टाया भक्तपान–प्रत्याख्यातायाः कालमनवकांक्षन्त्याः विहर्तुम् इति कृत्वा एवं संप्रेक्षते, संप्रेक्ष्य कल्यं यत्रैव आर्यचंदना आर्या तत्रैव उपागच्छति, उपागत्य आर्यचंदनाम् आर्याम् वन्दते नमस्यति, वंदित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्– ''इच्छामि खलु हे आर्या ! युष्माभिः अभ्यनुज्ञाता सती संलेखना यावत् विहर्तुम्।'' ''यथासुखं देवानुप्रिया ! मा प्रतिबंधं कुरु।'' ततः काली आर्या आर्यचंदनया आर्यया अभ्यनुज्ञाता सती संलेखना जोषण–जुष्टा यावद् विहरति। सा काली आर्या आर्यचंदनायाः आर्यायाः अन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीत्य बहुप्रतिपूर्णान् अष्टसंवत्सरान् (यावत्) श्रामण्य–पर्यायं पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जुष्ट्वा षष्टि–भक्तानि अनशनेन छित्त्वा यस्यार्थाय क्रियते नग्नभावः (स्थविरकल्पित्वं) यावत् चरमैरुच्छ्वासनिश्वासैः सिद्धा।।7।।

अन्वयार्थ–तए णं तीसे कालीए अज्जाए = फिर उसी काली आर्या को, **अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्तकाले** = अन्य किसी दिन रात्रि के पिछले प्रहर में, **अयमज्झत्थिए** = यह विचार उत्पन्न हुआ, **जहा खंदयस्स चिंता** = स्कंदक के समान चिन्तन हुआ कि, **जाव अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए**

पुरिसक्कार–परक्कमे = जब तक शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम है, **सद्धाधिई–संवेगे वा =** (मन में) श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है, **ताव मे सेयं कल्लं जाव =** तब तक मुझे योग्य है कि कल, **जलंते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता =** सूर्योदय के पश्चात् आर्यचंदना आर्या को पूछकर, **अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए =** आर्या चन्दना की आज्ञा प्राप्त होने पर, **संलेहणा झूसणा–झूसियाए =** संलेखना झूसणा को सेवन करती हुई, **भत्तपाणपडियाइक्खियाए =** भक्तपान का त्याग करके, **कालं अणवकंखमाणीए =** मृत्यु को नहीं चाहती हुई, **विहरित्तए त्तिकट्टु =** विचरण करूँ, **एवं संपेहेइ, संपेहित्ता =** यह विचार किया, करके, **कल्लं जेणेव अज्जचंदणा =** सूर्योदय होते ही जहाँ पर आर्यचंदना, **अज्जा तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता =** आर्या थी वहाँ पर आई और आकर, **अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ =** आर्यचंदना आर्या को वंदना–नमस्कार कियाा, **वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी– =** वंदन–नमस्कार करके इस प्रकार बोली–, **''इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णायाए समाणीए =** ''हे आर्ये ! आपकी आज्ञा प्राप्त कर मैं, **संलेहणा जाव विहरित्तए'' =** संलेखना करती हुई विचरण करना चाहती हूँ।'' (तब आर्यचंदना आर्या ने कहा–) **''अहासुहं देवाणुप्पिया ! =** हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार सुख हो वैसे करो। **मा पडिबंधं करेह'' =** सत्कार्य साधन में विलम्ब मत करो।''

तओ काली अज्जा अज्जचंदणाए = तब काली आर्या आर्यचंदना, **अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी =** आर्या से आज्ञा प्राप्त होने पर, **संलेहणाझूसणा =** संलेखना झूसणा, **झूसिया जाव विहरइ =** करती हुई यावत् विचरण करने लगी। **सा काली अज्जा अज्जचंदणाए =** उस काली आर्या ने आर्यचंदना, **अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं =** आर्या के पास सामायिकादि, **एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं =** ग्यारह अंगों का अध्ययन करके पूरे, **अट्ठ संवच्छराइं सामण्ण–परियागं पाउणित्ता =** आठ वर्ष तक श्रमण–पर्याय का पालन करके, **मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता =** एक मास की संलेखना से आत्मा को झूषित करके, **सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता =** साठ भक्त का अनशन पूर्णकर, **जस्सट्ठाए कीरइ =** जिस हेतु से संयम ग्रहण किया, **नग्गभावे जाव =** अपरिग्रह भाव से यावत्, **चरिमुस्सासणी सासेहिं =** उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास से पूर्णकर, **सिद्धा =** सिद्ध–बुद्ध–मुक्त हो गई।।7।।

भावार्थ–फिर एक दिन रात्रि के पिछले पहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दक मुनि के समान इस प्रकार विचार उत्पन्न हुआ–''इस कठोर तप साधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तथापि जब तक मेरे इस शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एवं वैराग्य है तब तक मेरे लिए उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्य चन्दना आर्या को पूछकर उनकी आज्ञा प्राप्त होने पर संलेखना झूषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके मृत्यु को नहीं चाहती हुई विचरण करूँ।''

ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्यचंदना थी वहाँ आई और आर्यचंदना को वन्दना नमस्कार कर इस प्रकार बोली–"हे आर्ये! आपकी आज्ञा हो तो मैं संलेखना झूषणा करते हुए विचरना चाहती हूँ।"

आर्यचंदना–"हे देवानुप्रिये! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य साधन में विलम्ब मत करो।"

तब आर्य चंदना की आज्ञा पाकर काली आर्या संलेखना झूषणा से यावत् विचरने लगी।

काली आर्या ने आर्य चन्दनबाला आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्र–धर्म का पालन करके एक मास की संलेखना से आत्मा को झूषित कर साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर जिस हेतु से संयम ग्रहण किया था, अपरिग्रह भाव से यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण कर वह काली आर्या सिद्ध–बुद्ध और मुक्त हो गई।।7।।

।। इइ पढममज्झयणं–प्रथम अध्ययन समाप्त ।।

बिइयमज्झयणं–द्वितीय अध्ययन

मूल– **उक्खेवओ बीयस्स अज्झयणस्स। एवं खलु जंबू! तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी, पुण्णभद्दे चेइए, कोणिए राया तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि णिक्खंता, जाव बहूहिं चउत्थ जाव अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव "इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।"**

एवं जहा रयणावली तहा कणगावली वि, नवरं तिसु ठाणेसु अट्ठमाइं करेइ, जहा रयणावलीए छट्ठाइं। एक्काए परिवाडीए संवच्छरो, पंचमासा बारस य अहोरत्ता चउण्हं पंच वरिसा नव मासा अट्ठारस दिवसा, सेसं तहेव, नव वासा परियाओ जाव सिद्धा।।2।।

संस्कृत छाया– उत्क्षेपक: द्वितीयस्य अध्ययनस्य। एवं खलु जम्बू! तस्मिन् काले तस्मिन् समये

चम्पा नामा नगरी पूर्णभद्रं चैत्यं कूणिको राजा (आसीत्)। तत्र खलु श्रेणिकस्य राज्ञः भार्या कोणिकस्य राज्ञः क्षुल्लमाता सुकाली नामा देवी अभवत्। यथा काली तथा सुकाली अपि निष्क्रान्ता यावत् बहुभिः चतुर्थैः यावत् आत्मानं भावयन्ती विहरति। ततः खलु सा सुकाली आर्या अन्यदा कदाचित् यत्रैव आर्यचन्दना आर्या यावत् ''इच्छामि खलु आर्या! युष्माभिः अभ्यनुज्ञाता सती कनकावली तपःकर्म उपसंपद्य विहर्तुम्। एवं यथा रत्नावली (तपः कृतं) तथा कनकावली तपः अपि (विहितम्) विशेषस्तु (कनकावल्यां) त्रिषु स्थानेषु अष्टमानि करोति, यथा रत्नावल्यां षष्ठानि एकस्यां परिपाट्यां संवत्सरः पंचमासाः द्वादश च अहोरात्राः चतुर्षु (परिपाटीसु) पंच वर्षाणि नवमासाः अष्टादश दिवसाः शेषं तथैव, नव वर्षाणि पर्यायः। यावत् सिद्धा।।2।।

अन्वयार्थ–उक्खेवओ बीयस्स अज्झयणस्स = दूसरे अध्ययन का उत्क्षेपक है, **एवं खलु जम्बू!** = इस प्रकार हे जम्बू! **तेणं कालेणं तेणं समएणं** = उस काल उस समय में, **चंपा नामं** = चम्पा नाम की, **नयरी, पुण्णभद्दे चेइए** = नगरी, पूर्णभद्र नामक उद्यान, **कोणिए राया** = और कोणिक राजा थे, **तत्थ णं सेणियस्स रण्णो** = उस नगरी में श्रेणिक राजा की, **भज्जा कोणियस्स रण्णो** = भार्या और कोणिक राजा की, **चुल्लमाउया सुकाली** = छोटी माता सुकाली, **नामं देवी होत्था** = नाम की रानी थी, **जहा काली तहा** = काली की तरह, **सुकाली वि णिक्खंता जाव** = सुकाली भी प्रव्रजित हुई तथा, **बहूहिं चउत्थ जाव** = बहुत सारे उपवास आदि तप से, **अप्पाणं भावेमाणी विहरइ** = आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी, **तए णं सा सुकाली अज्जा** = तब वह सुकाली आर्या, **अण्णया कयाइं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा जाव** = अन्य किसी दिन जहाँ आर्यचन्दना आर्या थी वहाँ आई और कहने लगी–, **''इच्छामि णं अज्जाओ!** = ''हे आर्ये! मैं चाहती हूँ कि, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी** = आपकी आज्ञा प्राप्तकर, **कणगावली तवोकम्मं** = कनकावली तप को, **उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए''** = अंगीकार करके विचरण करूँ।''

एवं जहा रयणावली तहा = जैसे आर्या ने रत्नावली तप किया, **कणगावली वि** = वैसे ही कनकावली तप भी किया। **नवरं तिसु ठाणेसु** = विशेषता यह कि तीनों स्थानों पर, **अट्ठमाइं करेइ** = तेले का व्रत किया। **जहा रयणावलीए छट्ठाइं** = जैसे रत्नावली तप में जहाँ बेले किये जाते हैं। **एक्काए परिवाडीए संवच्छरो** = एक परिपाटी में एक वर्ष, **पंचमासा बारस य अहोरत्ता** = पाँच महीने बारह अहोरात्र लगते हैं। **चउण्हं पंच वरिसा** = चारों परिपाटियों में पाँच वर्ष, **नव मासा अट्ठारस दिवसा** = नव मास अठारह दिन लगते हैं। **सेसं तहेव** = शेष वैसे ही। **नव वासा परियाओ** = नौ वर्ष पर्याय, **जाव सिद्धा** = यावत् सिद्ध हो गई।।7।।

भावार्थ–दूसरे अध्ययन का उत्क्षेपक। श्री जम्बू स्वामी–''हे पूज्य! आठवें वर्ग के दूसरे अध्ययन में प्रभु महावीर ने क्या भाव कहे हैं? कृपाकर बताइये।''

श्री सुधर्मा स्वामी–''हे जम्बू! इस प्रकार उस काल उस समय में चंपा नाम की एक नगरी थी वहाँ पूर्णभद्र उद्यान था और कोणिक नाम का राजा वहाँ राज्य करता था। उस नगरी में श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता सुकाली नाम की देवी थी। काली की तरह सुकाली भी प्रव्रजित हुई और बहुत से उपवास आदि तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

फिर वह सुकाली आर्या अन्यदा किसी दिन आर्य चन्दना के पास आकर इस प्रकार बोली–'हे आर्ये! आपकी आज्ञा होने पर मैं कनकावली तप को अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।'

सती चन्दना की आज्ञा पाकर रत्नावली के समान सुकाली ने कनकावली तप का आराधन किया। विशेषता इसमें यह थी कि तीनों स्थानों पर अष्टम (तेले) किये, जबकि रत्नावली में षष्ठ (बेले) किये जाते हैं। एक परिपाटी में एक वर्ष पाँच महीने और बारह अहोरात्रियाँ लगती हैं। इस एक परिपाटी में 88 दिन का पारणा और 1 वर्ष 2 मास 14 दिन का तप होता है। चारों परिपाटियों का काल–पाँच वर्ष, नव महीने और अठारह दिन होता है। शेष वर्णन काली आर्या के समान है। नव वर्ष तक चारित्र का पालन कर यावत् वह भी सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।।2।।

।। इइ बिइयमज्झयणं–द्वितीय अध्ययन समाप्त ।।

तइयमज्झयणं–तृतीय अध्ययन

मूल– **एवं महाकाली वि। नवरं खुड्डागं सीहणिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता**

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता चउत्थं, करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता छट्ठं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता तहेव चत्तारि परिवाडीओ, एक्काए परिवाडीए छम्मासा सत्त य दिवसा। चउण्हं दो वरिसा, अट्ठावीसा य दिवसा। जाव सिद्धा।।3।।

संस्कृत छाया– एवं महाकाली अपि। विशेषस्तु क्षुल्लकं सिंहनिष्क्रीडितं तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति,

कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा तथैव चतस्रः परिपाट्यः एकस्यां परिपाट्याम् (कालः) षण्मासाः सप्त च दिवसाः। चतसृणां (परिपाटीनां कालः) द्वे वर्षे अष्टाविंशतिः च दिवसाः (भवन्ति) यावत् सिद्धा।।3।।

अन्वयार्थ–एवं महाकाली वि = इसी तरह महाकाली भी, **नवरं खुड्डागं सीहणिक्कीलियं =** विशेष यह–लघुसिंह निष्क्रीड़ित, **तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** तप को अंगीकार करके विचरने लगी। **तं जहा =** जैसे कि, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके,

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पंचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चार उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बारसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणित पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ का तप किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके,**सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बारसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चार उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बारसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके,

सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चार किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुण पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुण पारणा किया, करके, **चउत्थं, करेइ करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके, **तहेव चत्तारि परिवाडीओ =** इसी प्रकार चारों परिपाटियाँ हैं। **एक्काए परिवाडीए =** एक परिपाटी में, **छम्मासा सत्त य दिवसा =** छः महीने और सात दिन का समय लगा। **चउण्हं दो वरिसा =** चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष, **अट्ठावीसा य दिवसा =** और अट्ठावीस दिन होता है। **जाव सिद्धा =** यावत् सिद्ध हुई।।3।।

भावार्थ–श्री जम्बू स्वामी–''भगवन् ! आठवें वर्ग के तीसरे अध्ययन का प्रभु महावीर ने क्या भाव बताया है ?''

आर्य सुधर्मा–''तीसरे अध्ययन में महाकाली का वर्णन है। उसने भी काली के समान दीक्षा ली। इसमें विशेषता इतनी है कि महाकाली ने लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप की आराधना की, जो इस प्रकार है–

उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया। बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया। तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। चौला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया। चौला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। छः किये और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच किये और सर्वकामगुण पारणा किया। सात उपवास किये और सर्वकामगुण पारणा किया। छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया। सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया।

नव किया और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ किया और सर्वकामगुण पारणा किया। नव किया और सर्वकामगुण पारणा किया। सात किया और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ किया और सर्वकामगुण पारणा किया। छह किया और सर्वकामगुण पारणा किया। सात किया और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच किया और सर्वकामगुण पारणा किया। छह किया और सर्वकामगुण पारणा किया। चौला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच किया और सर्वकामगुण पारणा किया। तेला किया और सर्वकामगुण पारणा

किया। चौला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया।

इसी प्रकार चारों परिपाटियाँ समझनी चाहिये। एक परिपाटी में छह महीने और सात दिन लगे। चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष और अट्ठावीस दिन होते हैं। इस प्रकार तप करती हुई अन्त में आर्या महाकाली भी संलेखना करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गईं।।3।।

।। इइ तइयमज्झयणं–तृतीय अध्ययन समाप्त ।।

चउत्थमज्झयणं-चतुर्थ अध्ययन

मूल– **एवं कण्हा वि। नवरं महासीहणिक्कीलियं तवोकम्मं जहेव खुड्डागं। नवरं चोत्तीसइमं जाव नेयव्वं, तहेव ऊसारेयव्वं, एक्काए परिवाडीए एगं वरिसं, छम्मासा अट्ठारस य दिवसा। चउण्हं छ वरिसा, दो मासा बारस य अहोरत्ता, सेसा जहा कालीए, जाव सिद्धा।।4।।**

संस्कृत छाया– एवं कृष्णापि। विशेषः (एषा) महासिंहनिष्क्रीडितं तपः कर्म (करोति) यथा क्षुल्लकः। विशेषः चतुस्त्रिंशद् यावन्नेतव्यम्, तथैव उत्सारयितव्यम्। एकस्यां परिपाट्यां एकम् वर्षं षण्मासाः अष्टादश च दिवसाः।।4।।

अन्वयार्थ–एवं कण्हा वि = इसी प्रकार कृष्णा रानी भी, **नवरं महासीहणिक्कीलियं तवोकम्मं =** विशेष–महासिंह निष्क्रीडित व्रत किया, **जहेव खुड्डागं =** लघुसिंह निष्क्रीड़ित के समान। **नवरं चोत्तीसइमं जाव नेयव्वं =** विशेष 16 तक तप किया जाता है, **तहेव ऊसारेयव्वं =** और उसी प्रकार उतारा जाता है। **एक्काए परिवाडीए एगं वरिसं =** एक परिपाटी में एक वर्ष, **छम्मासा अट्ठारस य दिवसा =** छः महीने और अट्ठारह दिन लगे, **चउण्हं छ वरिसा, दो मासा =** चारों परिपाटियों में 6 वर्ष, दो महीने, **बारस य अहोरत्ता =** और बारह अहोरात्र लगते हैं। **सेसा जहा कालीए =** शेष काली की तरह। अन्त में संलेखना करके, **जाव सिद्धा =** यह भी सिद्ध हो गई।।4।।

भावार्थ–इसी प्रकार कृष्णा रानी का भी चौथा अध्ययन समझना चाहिये।

महाकाली से इसमें विशेषता यह है कि इन्होंने महासिंह निष्क्रीड़ित तप किया। लघु–सिंह निष्क्रीड़ित तप से इसमें इतनी विशेषता है कि इसमें एक से लेकर 16 तक तप किया जाता है और उसी प्रकार उतारा जाता

है। एक परिपाटी में एक वर्ष छह महीने और अठारह दिन लगते हैं। चारों परिपाटी में छह वर्ष दो महीने और बारह अहोरात्र लगते हैं। शेष वर्णन काली आर्या की तरह है। अन्त में संलेखना करके यह कृष्णा आर्या भी सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गई।।4।।

।। इइ चउत्थमज्झयणं-चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

पंचममज्झयणं-पंचम अध्ययन

मूल- **एवं सुकण्हा वि, नवरं सत्तसत्तमियं भिक्खु-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केक्कं पाणगस्स। दोच्चे सत्तए दो दो भोयणस्स दो दो पाणगस्स। तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स तिण्णि पाणगस्स। चउत्थे चउ, पंचमे पंच छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए सत्तदत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ, सत्तपाण-गस्स। एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं एगूणपण्णाए राइंदिएहिं, एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया। अज्जचंदणं अज्जं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी ''इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।'' ''अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेह।'' तए णं सा सुकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भ-णुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, एक्केकं पाणगस्स दत्तिं जाव अट्ठमे अट्ठए अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, अट्ठ पाणगस्स। एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खु-पडिमं चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खा-सएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता, नवणवमियं भिक्खु-पडिमं उवसंज्जित्ताणं विहरइ। पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स, जाव नवमे**

नवए नवणव दत्ती भोयणस्स पडिगाहेइ नव पाणगस्स एवं खलु नवणवमियं भिक्खु–पडिमं एकासीइ राइंदिएहिं चउहिं पंचोत्तरेहिं, भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता दसदसमियं भिक्खुपडिमं उव–संपज्जित्ताणं विहरइ। पढमे दसए एक्केकं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स जाव दसमे दसए दस–दस भोयणस्स, दसदस पाणगस्स। एवं खलु एयं दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदिय–सएणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खा–सएहिं अहासुत्तं जाव आराहेइ। आराहित्ता बहूहिं चउत्थ जाव मासद्धमासविविहतवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ। तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा ।।5 ।।

संस्कृत छाया– एवं सुकृष्णापि, विशेष: सप्तसप्तमिकां भिक्षु–प्रतिमाम् उपसंपद्य विहरति। प्रथमे सप्तके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, तथा एकैकां पानीयस्य। द्वितीये सप्तके द्वे द्वे भोजनस्य द्वे द्वे पानीयस्य। तृतीये सप्तके तिस्र: भोजनस्य तिस्र: च पानकस्य। चतुर्थे चतस्र:, पंचमे पंच, षष्ठे षट्, सप्तमे सप्तके सप्तदत्ती: भोजनस्य प्रतिगृह्णाति, सप्त पानकस्य। एवं खलु सप्तसप्तमिकां भिक्षुप्रतिमां एकोनपंचाशत् रात्रिन्दिवै:, एकेन च षण्णवत्या भिक्षाशतेन यथासूत्रं यावद् आराध्य यत्रैव आर्यचंदना आर्या तत्रैव उपागता। आर्यचंदनाम् आर्यां वन्दते। नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा एवमवादीत्–''इच्छामि खलु हे आर्या:! युष्माभि: अभ्यनुज्ञाता सती अष्ट अष्टमिकां भिक्षुप्रतिमां उपसंपद्य विहर्तुम्।'' ''यथासुखं देवानुप्रिये।! मा प्रतिबन्धं कुरु।'' तत: खलु सा सुकृष्णा आर्या आर्यचन्दनया आर्यया अभ्य–नुज्ञाता सती अष्ट अष्टमिकां भिक्षु प्रतिमाम् उपसंपद्य खलु विहरति। प्रथमे अष्टके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति, एकैकां पानकस्य दत्तिं यावत् अष्टमे अष्टके अष्टाष्ट भोजनस्य दत्ती: प्रतिगृह्णाति, अष्ट पानकस्य। एवं खलु अष्ट–अष्टमिकां भिक्षु–प्रतिमां चतुषष्ट्या रात्रिन्दिवै: द्वाभ्यां च अष्टाशीत्या भिक्षा शतै: यथासूत्रं यावत् आराध्य नवनवमिकां भिक्षु प्रतिमाम् उपसंपद्य विहरति। प्रथमे नवके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति एकैकां पानकस्य यावत् नवमे नवके नवनव दत्ती: भोजनस्य प्रति–गृह्णाति नव च पानकस्य। एवं खलु नवनवमिकां भिक्षु–प्रतिमां एकाशीत्या रात्रिन्दिवै: चतुर्भि: पंचोत्तरै: भिक्षाशतै: यथासूत्रं

यावदाराध्य दशदशमिकां भिक्षुप्रतिमाम् उपसंपद्य विहरति। प्रथमे दशके एकैकां भोजनस्य दत्तिं प्रतिगृह्णाति एकैकां पानकस्य यावत् दशमे दशके दश दश भोजनस्य दश दश च पानकस्य एवं खलु एतां दशदशमिकां भिक्षुप्रतिमां एकेन रात्रिन्दिव-शतेन अर्द्धषष्ठैः भिक्षाशतैः यथासूत्रं यावत् आराधयति। आराध्य बहुभिः चतुर्थं यावत् मासार्द्धमासविविधतपःकर्मभिः आत्मानं भावयन्ती विहरति। ततः खलु सा सुकृष्णा आर्या तेन उदारेण (तपसा) यावत् सिद्धा ।।5 ।।

अन्वयार्थ-एवं सुकण्हा वि = इस प्रकार सुकृष्णा भी, **नवरं सत्तसत्तमियं =** विशेष-सप्त सप्तमिका, **भिक्खु-पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** भिक्षु प्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी। **पढमे सत्तए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं =** प्रथम सप्तक में एक-एक दत्ति भोजन की, **पडिगाहेइ =** ग्रहण की। **एक्केक्कं पाणगस्स =** और एक-एक दत्ति पानी की, **दोच्चे सत्तए दो-दो भोयणस्स =** द्वितीय सप्तक में दो-दो भोजन की, **दो-दो पाणगस्स =** और दो-दो पानी की। **तच्चे सत्तए तिण्णि भोयणस्स =** तीसरे सप्तक में तीन-तीन दत्ति भोजन की और, **तिण्णि पाणगस्स =** तीन-तीन पानी की। **चउत्थे चउ, पंचमे पंच =** चौथे सप्तक में चार, पाँचवें में पाँच, **छट्ठे छ, सत्तमे सत्तए =** छठे में छः और सातवें सप्तक में, **सत्तदत्तीओ भोयणस्स पडिग्गाहेइ =** सात दत्ति भोजन की ग्रहण की और, **सत्तपाणगस्स =** सात ही पानी की, **एवं खलु सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं =** इस प्रकार सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा, **एगूणपण्णाए राइंदिएहिं =** उनपचास दिनों में, **एगेण य छण्णउएणं भिक्खासएणं =** एक सौ छियानवे भिक्षा दत्तियों से, **अहासुत्तं जाव आराहित्ता जेणेव =** सूत्रानुसार आराधना करके जहाँ पर, **अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया =** आर्यचन्दना आर्या थी वहाँ पर आई। **अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ =** आर्यचन्दना आर्या को वन्दना नमस्कार की, **वंदित्ता नमंसित्ता =** वन्दन-नमस्कार करके, **एवं वयासी =** इस प्रकार बोली- ''**इच्छामि णं अज्जाओ ! =** ''हे आर्ये !, **तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी =** आपकी आज्ञा प्राप्त होने पर मैं, **अट्ठट्ठमियं भिक्खुपडिमं =** 'अष्ट अष्टमिका' भिक्षु प्रतिमा, **उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए'' =** अंगीकार करके विचरना चाहती हूँ।'' ''**अहासुहं देवाणुप्पिए ! =** ''हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो वैसा ही करो। **मा पडिबंधं करेह'' =** धर्मकार्य में प्रतिबन्ध मत करो।''

तए णं सा सुकण्हा अज्जा = तदनन्तर वह सुकृष्णाआर्या, **अज्जचंदणाए अज्जाए =** आर्यचन्दना आर्या की, **अब्भणुण्णाया समाणी अट्ठट्ठमियं =** आज्ञा प्राप्तकर अष्ट अष्टमिका, **भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी। **पढमे अट्ठए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ =** प्रथम अष्टक में एक-एक भोजन की दत्ति ग्रहण की और, **एक्केकं पाणगस्स दत्तिं =** एक-एक दत्ति जल की, **जाव अट्ठमे अट्ठए =** यावत् आठवें अष्टक में, **अट्ठट्ठ भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ, अट्ठ पाणगस्स =** आठ दत्ति भोजन की और आठ दत्ति पानी की ग्रहण की। **एवं खलु अट्ठट्ठमियं भिक्खु-**

पडिमं = इस प्रकार अष्ट अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा, **चउसट्ठीए राइंदिएहिं** = चौंसठ रात दिनों में, **दोहिं य अट्ठासीएहिं भिक्खा-सएहिं** = दौ सौ अट्ठासी भिक्षा दत्तियों से, **अहासुत्तं जाव आराहित्ता** = सूत्रानुसार यावत् आराधना करके, **नवणवमियं भिक्खु-पडिमं उवसंज्जित्ताणं विहरइ** = आर्या सुकृष्णा नव-नवमिका भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार, करके विचरने लगी। **पढमे नवए एक्केक्कं भोयणस्स दत्तिं** = प्रथम नवक में एक-एक भोजन की दत्ति, **पडिगाहेइ एक्केक्कं पाणगस्स** = ग्रहण करती और एक-एक पानी की, **जाव नवमे नवए** = यावत् नवमें नवक में, **नवणव दत्ती भोयणस्स पडिगाहेइ** = प्रतिदिन नव दत्ति भोजन की ग्रहण करती। **नव पाणगस्स** = और नव दत्ति पानी की, **एवं खलु नवणवमियं भिक्खु-पडिमं** = इस प्रकार नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा, **एकासीइ राइंदिएहिं** = इक्यासी दिनों में, **चउहिं पंचोत्तरेहिं, भिक्खासएहिं** = चार सौ पाँच भिक्षादत्तियों से , **अहासुत्तं जाव आराहित्ता** =सूत्रानुसार यावत् आराधना करके फिर, **दसदसमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ** = दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी। **पढमे दसए एक्केकं भोयणस्स दत्तिं पडिगाहेइ** = प्रथम दशक में एक एक भोजन की दत्ति ग्रहण करती और, **एक्केक्कं पाणगस्स** = एक-एक पानी की। **जाव दसमे दसए दस-दस भोयणस्स, दसदस पाणगस्स** = यावत् दसवें दशक में दस-दस दत्ति भोजन की और दस दस पानी की ग्रहण की। **एवं खलु एयं दसदसमियं** = इस प्रकार वह दशदशमिका, **भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं** = भिक्षु प्रतिमा एक सौ रात-दिनों में, **अद्धछट्ठेहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं** = पाँच सौ पचास भिक्षादत्तियों से सूत्रानुसार, **जाव आराहेइ आराहित्ता बहूहिं** = यावत् आराधना करके बहुत से, **चउत्थ जाव** = उपवास यावत्, **मासद्धमासविविहतवोकम्मेहिं** = मास, अर्द्धमास आदि विविध तप:कर्म से, **अप्पाणं भावेमाणी विहरइ** = आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। **तए णं सा सुकण्हा अज्जा** = फिर वह सुकृष्णा आर्या, **तेणं ओरालेणं जाव सिद्धा** = उस उदार श्रेष्ठ तप से यावत् सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गई।

भावार्थ-इसी प्रकार पाँचवें अध्ययन में सुकृष्णा देवी का भी वर्णन समझना चाहिये।

यह भी श्रेणिक राजा की रानी और कोणिक राजा की छोटी माता थी। भगवान का उपदेश सुनकर श्रमण-दीक्षा अंगीकार की। इसमें विशेषता यह है कि आर्य चन्दनबाला आर्या की आज्ञा प्राप्तकर आर्या सुकृष्णा 'सप्त सप्तमिका' भिक्षु प्रतिमा रूप तप अंगीकार करके विचरने लगी, जिसकी विधि इस प्रकार है- प्रथम सप्ताह में एक दत्ति (दाती) भोजन की और एक ही दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है। दूसरे सप्ताह में दो-दो दत्ति भोजन की और दो पानी की, तीसरे सप्ताह में तीन दत्ति भोजन की और तीन पानी की, चौथे सप्ताह में चार चार, पाँचवें सप्ताह (सप्तक) में पाँच-पाँच, छठे में छह छह, और सातवें सप्ताह में सात दत्ति भोजन की ली जाती है और सात ही पानी की ग्रहण की जाती है।

इस प्रकार उनपचास (49) रात-दिन में एक सौ छियानवे (196) भिक्षा की दत्तियाँ होती हैं।

सुकृष्णा आर्या ने सूत्रोक्त विधि के अनुसार इसी 'सप्त सप्तमिका' भिक्षु प्रतिमा तप की सम्यग् आराधना की। इसमें आहार-पानी की सम्मिलित रूप से प्रथम सप्ताह में सात दत्तियाँ हुईं, दूसरे सप्ताह में चौदह, तीसरे सप्ताह में इक्कीस, चौथे में अट्ठाईस, पाँचवें में पैंतीस, छठे में बयालीस, और सातवें सप्ताह में उनपचास दत्तियाँ हुईं। इस प्रकार सभी मिलाकर कुल एक सौ छियानवे (196) दत्तियाँ हुईं।

इस तरह सूत्रानुसार इस प्रतिमा का आराधन करके सुकृष्णा सती आर्या चन्दनबाला के पास आई और उन्हें वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोली-''हे आर्ये ! आपकी आज्ञा हो तो में 'अष्ट अष्टमिका' भिक्षु प्रतिमा का तप अंगीकार करके विचरूँ।''

आर्य चन्दना-''हे देवानुप्रिये ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो। धर्म कार्य में प्रमाद मत करो।''

फिर वह सुकृष्णा आर्या आर्य चन्दना आर्या की आज्ञा प्राप्त होने पर 'अष्ट अष्टमिका' भिक्षु प्रतिमा अंगीकार करके विचरने लगी।

इस तप में प्रथम अष्टक में एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक दत्ति पानी की ग्रहण की जाती है यावत् इसी क्रम से दूसरे अष्टक में प्रतिदिन दो दत्तियाँ आहार की और दो ही दत्तियाँ पानी की ली जाती हैं, इस तप में प्रथम नवक में प्रतिदिन वे एक-एक दत्ति भोजन की और एक-एक पानी की ग्रहण करतीं यावत् क्रम से बढ़ते बढ़ते नवमें नवक में प्रतिदिन नौ दत्तियाँ भोजन की और नव ही दत्तियाँ पानी की ग्रहण करतीं। इस प्रकार इक्कासी दिनों में चार सौ पाँच भिक्षा दत्तियों से 'नवनवमिका' भिक्षु प्रतिमा पूरी हुई, जिसकी सूत्रोक्त विधि के अनुसार सम्यग् आराधना करती हुई आर्या सुकृष्णा विचरने लगी।

इसके पश्चात् पूर्व की तरह यावत् अपनी गुरुणीजी की आज्ञा प्राप्त कर सुकृष्णा आर्या ने 'दश दशमिका' भिक्षु प्रतिमा रूप तप स्वीकार किया। इस तप के आराधना काल में वे प्रथम दशक में प्रतिदिन एक एक दत्ति भोजन की और एक एक दत्ति पानी की यावत् इसी क्रम से बढ़ाते बढ़ाते दसवें दशक में प्रतिदिन दस दत्तियाँ भोजन की और दस ही दत्तियाँ पानी की ग्रहण करतीं।

इस प्रकार उन आर्या सुकृष्णा ने इस 'दश दशमिका' भिक्षु प्रतिमा रूप तप को एक सौ रात दिनों में पाँच सौ पचास भिक्षा दत्तियों से पूर्ण किया।

सूत्रानुसार इस 'दश दशमिका' भिक्षु प्रतिमा तप की आराधना करके बहुत से यावत् मास, अर्द्धमास आदि विविध तप-कर्म से आर्या सुकृष्णा अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगीं।

इस तरह वह सुकृष्णा आर्या उन उदार श्रेष्ठ तपों की आराधना करते-करते शरीर से अत्यन्त कृश हो गयीं एवं अन्त में संलेखना संथारा करके सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर वे सिद्ध-बुद्ध एवं मुक्त हो गयीं।

।। इइ पंचममज्झयणं-पंचम अध्ययन समाप्त ।।

छट्ठमज्झयणं-षष्ठम अध्ययन

मूल- एवं महाकण्हा वि। नवरं खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं खलु एयं खुड्डागसव्वओ-भद्दस्स तवोकम्मस्स पढमं परिवाडि तिहिं मासेहिं

दसहिं दिवसेहिं अहासुत्तं जाव आराहित्ता दोच्चाए परिवाडिए चउत्थं करेइ, करित्ता विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता जहा रयणावलीए तहा एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ। पारणा तहेव। चउण्हं कालो संवच्छरो। मासो दस य दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।।6।।

संस्कृत छाया– एवं महाकृष्णापि। विशेषस्तु क्षुल्लकां सर्वतोभद्र-प्रतिमां उपसंपद्य विहरति, तद् यथा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा एवं खलु एतां क्षुल्लकसर्वतो-भद्रस्य तप:कर्मण: प्रथमां परिपाटीं त्रिभि: मासै: दशभि: दिवसै: यथासूत्रं यावदाराध्य द्वितीयस्यां परिपाट्याम् चतुर्थं करोति, कृत्वा विकृतिवर्जं पारयति, पारयित्वा यथा रत्नावल्यां तथा अत्रापि चतस्र: परिपाट्य:। पारणा तथैव। चतसृणां काल: संवत्सर: मास: दश च दिवसा:। शेषं तथैव यावत् सिद्धा।।6।।

अन्वयार्थ–एवं महाकण्हा वि नवरं = इसी प्रकार महासेन कृष्णा का भी (अध्ययन समझना चाहिए)। विशेष–(यह कि वह आर्यचन्दना आर्या की आज्ञा प्राप्तकर), **खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं =** लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा, **उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** अंगीकार करके विचरने लगी, **तं जहा चउत्थं करेइ, करित्ता =** इस प्रकार है–उसने उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा

किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **एवं खलु एयं खुड्डागसव्वओ-भद्दस्स तवोकम्मस्स =** इस प्रकार इस लघुसर्वतोभद्र तपःकर्म की, **पढमं परिवाडि तिहिं मासेहिं दसहिं दिवसेहिं =** प्रथम परिपाटी की तीन महीने और दस दिनों में, **अहासुत्तं जाव आराहित्ता =** सूत्रानुसार आराधना करके, **दोच्चाए परिवाडिए =** दूसरी परिपाटी में, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **विगइवज्जं पारेइ, पारित्ता =** विगय रहित, पारणा किया। **जहा रयणावलीए तहा =** जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटी कही गई हैं वैसे ही, **एत्थ वि चत्तारि परिवाडीओ =** यहाँ पर भी चार परिपाटियाँ होती हैं। **पारणा तहेव =** पारणा उसी प्रकार करना चाहिये। **चउण्हं कालो संवच्छरो =** चारों का काल एक वर्ष, **मासो दस य दिवसा =** एक मास और, दस दिन है। **सेसं तहेव जाव सिद्धा =** अन्त में संलेखना करके महासेन कृष्णा भी सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गईं।।6।।

भावार्थ–इसी प्रकार छठा महासेन कृष्णा का अध्ययन भी समझना चाहिये।

ये राजा श्रेणिक की रानी एवं राजा कोणिक की छोटी माता थीं। इन्होंने भी यावत् भगवान के पास दीक्षा ली।

विशेष, आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर आर्या महासेन कृष्णा लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र प्रतिमा का तप अंगीकार करके विचरने लगी। इस तप की विधि इस प्रकार है–इसमें सर्वप्रथम उपवास किया, करके सर्वकामगुण पारणा किया, करके बेला किया करके सर्वकामगुण पारणा किया।

तेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, चोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, तेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, चोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास करके सर्वकामगुण पारणा किया, बेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास करके सर्वकामगुण पारणा किया, बेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, तेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, चोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, बेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, तेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, चोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास करके सर्वकामगुण पारणा किया, चोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला करके सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास करके सर्वकामगुण पारणा किया, बेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, तेला करके सर्वकामगुण पारणा किया, इस प्रकार यह लघु (क्षुद्र-क्षुल्लक) सर्वतोभद्र तप-कर्म की प्रथम परिपाटी तीन महीने और दस दिनों में पूर्ण होती है। इसकी

सूत्रानुसार सम्यग् रीति (विधि) से आराधना करके आर्या महासेन कृष्णा ने इसकी दूसरी परिपाटी में उपवास किया और विगयरहित पारणा किया। जैसे रत्नावली तप में चार परिपाटियाँ बताई गईं वैसे ही इसमें भी चार परिपाटियाँ होती हैं। पारणा भी उसी प्रकार समझना चाहिये।

इसकी पहली परिपाटी में पूरे सौ दिन लगे, जिसमें पच्चीस दिन पारणे के और पचहत्तर दिन तपस्या के हुए। क्रम से इतने ही दिन दूसरी, तीसरी एवं चौथी परिपाटी के हुए। इस तरह इन चारों परिपाटियों का सम्मिलित काल एक वर्ष, एक मास और दस दिन का हुआ।

पहली एवं दूसरी परिपाटी में पारणे में विगय का त्याग कर दिया। तीसरी परिपाटी में पारणे में विगय के लेप मात्र का भी त्याग कर दिया। चौथी परिपाटी में आयम्बिल किया।

इस प्रकार इस तप की सूत्रोक्त विधि से आर्या महासेन कृष्णा ने आराधना की और अन्त में संलेखना-संथारा करके सभी कर्मों का क्षय करके वे सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गईं।

।। इइ छट्ठमज्झयणं-षष्ठम अध्ययन समाप्त ।।

सत्तममज्झयणं-सप्तम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **एवं वीरकण्हा वि। नवरं महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा-चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकागुणियं पारेइ, परित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता पढमा लया।।1।।**

संस्कृत छाया- एवं वीरकृष्णा अपि। विशेष:-(एषा) महत् सर्वतोभद्रं तप:कर्म उपसंपद्य विहरति। तद् यथा:-चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा, सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति,

कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा (एषा) प्रथमा लता।।1।।

अन्वायार्थ–एवं वीरकण्हा वि = इसी प्रकार वीरकृष्णा का अध्ययन भी समझना चाहिये। **नवरं महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** विशेष:–यह महत् सर्वतोभद्र तप: कर्म को अंगीकार करके विचरने लगी। **तं जहा– =** जैसे कि–, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकागुणियं पारेइ, परित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता =** छह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता =** सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **पढमा लया =** यह प्रथमा लता हुई।।1।।

भावार्थ–इसी प्रकार सातवाँ अध्ययन वीरसेन कृष्णा आर्या का भी समझना चाहिये। यह भी श्रेणिक राजा की छोटी रानी एवं कोणिक राजा की माता थीं। इन्होंने भी भगवान महावीर का धर्मोपदेश सुनकर एवं संसार से विरक्त होकर श्रमणी–दीक्षा अंगीकार की।

विशेष यह है कि वह अपनी गुरुणीजी आर्या चन्दनबाला की आज्ञा लेकर 'महा सर्वतोभद्र' तप को अंगीकार करके विचरने लगीं।

इस 'महा सर्वतोभद्र' की आराधना करने की विधि इस प्रकार है–सर्वप्रथम उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, यह प्रथम लता हुई।।1।।

सूत्र 2

मूल– **दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकाम–गुणियं पारेइ, पारित्ता**

छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीया लया ।।2 ।।

संस्कृत छाया– दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा (एवं) द्वितीया लता ।।2 ।।

अन्वयार्थ–दसमं करेइ, करित्ता = चार उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीया लया** = इस प्रकार दूसरी लता पूर्ण की।।2।।

भावार्थ–चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये, और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया यह दूसरी लता हुई।।2।।

सूत्र 3

मूल– **सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं**

करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तइया लया।।3।।

संस्कृत छाया– षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा तृतीय लता।3।

अन्वायार्थ–सोलसमं करेइ, करित्ता = फिर सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चार उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **तइया लया** = इस प्रकार तृतीय लता पूर्ण हुई।।3।।

भावार्थ–सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया यह तीसरी लता हुई।।3।।

सूत्र 4

मूल– अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम–गुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ,

पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थी लया।।4।।

संस्कृत छाया– अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थी लता।।4।।

अन्वयार्थ–अट्ठमं करेइ, करित्ता = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छ: उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थी लया** = इस प्रकार चौथी लता पूर्ण हुई।।4।।

भावार्थ–तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया यह चौथी लता हुई।।4।।

सूत्र 5

मूल– **चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता**

दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता पंचमी लया।।5।।

संस्कृत छाया– चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा पंचमी लता।।5।।

अन्वयार्थ–चउद्दसमं करेइ, करित्ता = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **पंचमी लया** = इस प्रकार पाँचवीं लता पूर्ण हुई।।5।।

भावार्थ–छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पचोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, यह पाँचवी लता हुई।।5।।

सूत्र 6

मूल– **छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं**

करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठी लया।।6।।

संस्कृत छाया– षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठी लता।।6।।

अन्वयार्थ–छट्ठं करेइ, करित्ता = बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता =** पाँच किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता =** छः किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता =** सात किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठी लया =** यह छट्ठी लता हुई।।6।।

भावार्थ–बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चार किये और सर्वकामगुण पारणा किया, पाँच किये और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, इस तरह छठी लता सम्पूर्ण हुई।।6।।

सूत्र 7

मूल– **दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सप्तमी लया।।7।।**

संस्कृत छाया– द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा सप्तमी लता ।।7 ।।

अन्वयार्थ–दुवालसमं करेइ, करित्ता = पाँच किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता =** छ: किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता =** सात किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता =** उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता =** बेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता =** तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता =** चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ =** सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **पारित्ता सप्तमी लया =** इस प्रकार सातवीं लतापूर्ण की।।7।।

भावार्थ–पाँच किये और सर्वकामगुण पारणा किया, छह का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेले का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया चोला किया और सर्वकामगुण पारणा किया यह सातवीं लता हुई।।7।।

सूत्र 8

मूल– **एक्काए कालो अट्ठमासा पंच य दिवसा। चउण्हं दो वासा अट्ठमासा बीसं दिवसा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।।8।।**

संस्कृत छाया– एकैकस्या: काल: अष्टमासा: पंच च दिवसा: चतसृणां काल: द्वौ वर्षौ अष्ट-मासा: विंशति दिवसा: । शेषं तथैव यावत् सिद्धा।।8।।

अन्वयार्थ–एक्काए कालो अट्ठमासा पंच य दिवसा = इस प्रकार सात लता की परिपाटी का काल आठ महीने और पाँच दिन हुआ। **चउण्हं दो वासा अट्ठमासा बीसं दिवसा =** चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष आठ महीने और बीस दिन हुआ। **सेसं तहेव जाव सिद्धा =** शेष सूत्रानुसार। पूर्ण आराधना करके अन्त में संलेखना करके यह भी सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।

भावार्थ–इस प्रकार तप में सात लताओं की एक परिपाटी हुई। इस तप में भी कुल परिपाटियाँ चार होती हैं। इसमें एक परिपाटी का काल आठ महीने और पाँच दिन हुए एवं इसी हिसाब से चारों का काल दो वर्ष आठ महीने और बीस दिन होते हैं। प्रथम परिपाटी के आठ मास और पाँच दिनों में, उनपचास दिन पारणे के और छ मास सोलह दिन तपस्या के होते हैं। इस प्रथम परिपाटी में पारणों में विगय का त्याग नहीं किया। दूसरी परिपाटी में पारणों में विगय का त्याग किया। तीसरी परिपाटी में पारणों में विगय के लेप मात्र का भी त्याग कर दिया। चौथी परिपाटी में पारणों में आयम्बिल किये।

इन चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष आठ मास और बीस दिन का समय लगा। शेष आर्या वीरसेन कृष्णा ने सूत्रानुसार इस तप की साधना की और अन्त में कृश काय होने पर वे भी संलेखना-संथारा कर यावत् सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गईं।।8।।

।। सत्तममज्झयणं-सप्तम अध्ययन समाप्त ।।

अट्ठममज्झयणं-अष्टम अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **एवं रामकण्हा वि। नवरं भद्दोतरं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकाम-गुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता पढमा लया।।1।।**

संस्कृत छाया- एवं रामकृष्णाऽपि। विशेषः-भद्रोत्तरप्रतिमाम् उपसंपद्य विहरति। तद् यथा-द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा (एवं) प्रथमा लता।।1।।

अन्वयार्थ-एवं रामकण्हा वि = इसी प्रकार आठवीं रामकृष्णा देवी का अध्ययन भी समझना चाहिए। **नवरं भद्दोतरं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ =** विशेष यह है कि वह रामकृष्णा देवी भद्रोत्तर

प्रतिमा अंगीकार करके विचरण करने लगी।, **तं जहा** = वह (भद्रोत्तर प्रतिमा) इस प्रकार है, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **पढमा लया** = यह प्रथम लता हुई।।1।।

भावार्थ–इसी प्रकार आठवाँ रामकृष्णा देवी का अध्ययन भी समझना चाहिये। विशेष में यह भी श्रेणिक राजा की रानी और राजा कोणिक की छोटी माता थी। इसने भी दीक्षा ली और आर्या चन्दनबाला की आज्ञा प्राप्त कर रामकृष्णा 'भद्रोत्तर प्रतिमा' तप अंगीकार करके विचरने लगीं। इसकी विधि इस प्रकार है– पाँच किया और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया, आठ किये और सर्वकामगुण पारणा किया, नव किये और सर्वकामगुण पारणा किया यह प्रथम लता हुई।।1।।

सूत्र 2

मूल– **सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीया लया।।2।।**

संस्कृत छाया– षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगु णितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा (एवं) द्वितीया लता।।2।।

अन्वयार्थ–सोलसमं करेइ, करित्ता = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ

उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीया लया** = इस प्रकार दूसरी लता पूर्ण की।।2।।

भावार्थ–सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ किये और सर्वकामगुण पारणा किया। नव किये और सर्वकामगुण पारणा किया। पचौला किया और सर्वकामगुण पारणा किया। छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया। यह दूसरी लता हुई।।2।।

सूत्र 3

मूल– **बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तइया लया।।3।।**

संस्कृत छाया– विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशम् करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा (एवं) तृतीया लता।।3।।

अन्वयार्थ–बीसइमं करेइ, करित्ता = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पचौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **तइया लया** = इस प्रकार तीसरी लता पूर्ण हुई।।3।।

भावार्थ–नव किया और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच किया और सर्वकामगुण पारणा किया। छः किये और सर्वकामगुण पारणा किया। सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ का तप किया और सर्वकामगुण पारणा किया। यह तीसरी लता हुई।।3।।

सूत्र 4

मूल– **चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थी लया।।4।।**

संस्कृत छाया– चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थी लता।।4।।

अन्वयार्थ–चउद्दसमं करेइ, करित्ता = छ: उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थी लया** = इस प्रकार चौथी लता पूर्ण हुई।।4।।

भावार्थ–छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया। सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया। आठ किये और सर्वकामगुण पारणा किया। नव किये और सर्वकामगुण पारणा किया। पाँच किये और सर्वकामगुण पारणा किया। यह चौथी लता हुई।।4।।

सूत्र 5

मूल– **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता पंचमी लया।5।**

संस्कृत छाया– अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं

पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा पंचमी लता।।5।।

अन्वायार्थ–अट्ठारसमं करेइ, करित्ता = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छः उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** =सर्वकामगुण युक्त पारणा किया, करके, **पंचमी लया** = इस प्रकार पाँचवीं लता पूर्ण की।।5।।

भावार्थ–आठ किये और सर्वकामगुण पारणा किया, नव किये और सर्वकामगुण पारणा किया, पाँच किये और सर्वकामगुण पारणा किया, छह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, सात किये और सर्वकामगुण पारणा किया। यह पाँचवीं लता हुई।।5।।

सूत्र 6

मूल– **एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा। चउण्हं कालो दो वरिसा दो मासा वीस य दिवसा। सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा।।6।।**

संस्कृत छाया– एतस्याः (पंचलतात्मिकायाः) कालः षण्मासाः विंशतिश्च दिवसाः। चतसृणां कालः द्वौ वर्षौ द्वौ मासौ विंशतिश्च दिवसाः। शेषं तथैव यथा काली यावत् सिद्धा।।6।।

अन्वायार्थ–एक्काए कालो छम्मासा वीस य दिवसा = इस प्रकार एक परिपाटी का काल छः मास और बीस दिन हुआ। **चउण्हं कालो दो वरिसा** = चारों का काल दो वर्ष, **मासा वीस य दिवसा** = दो मास और बीस दिन हुए, **सेसं तहेव जहा काली जाव सिद्धा** = शेष उसी प्रकार काली रानी के समान रामकृष्णा भी संलेखना करके यावत् सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गई।।6।।

भावार्थ–इस तरह पाँच लताओं की एक परिपाटी हुई। ऐसी चार परिपाटियाँ इस तप में होती हैं। एक परिपाटी का काल छः महीने और बीस दिन, एवं चारों परिपाटियों का काल दो वर्ष, दो महीने और बीस दिन होते हैं। शेष उसी प्रकार पूर्व वर्णन के अनुसार समझना चाहिए।

काली के समान आर्या रामकृष्णा भी संलेखना करके यावत् सिद्ध–बुद्ध मुक्त हो गई।।6।।

।। इइ अट्ठममज्झयणं–अष्टम अध्ययन समाप्त ।।

नवममज्झयण-नवम अध्ययन

मूल- एवं पिउसेणकण्हा, वि नवरं, मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा-चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छट्ठं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता दुवालसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउद्दसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता सोलसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठारसमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउवीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता छव्वीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता

बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता बत्तीसइमं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ, करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ। एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा। चउण्हं तिण्णि वरिसा दस य मासा। सेसं तहेव जाव सिद्धा।।9।।

संस्कृत छाया– एवं पितृसेनकृष्णाऽपि। विशेषः–मुक्तावली तपःकर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा–चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षष्ठं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा दशमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्दशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षोडशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टादशं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा षड्विंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा अष्टाविंशतितमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा त्रिशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं

करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुस्त्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा द्वात्रिंशत्तमं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति, पारयित्वा एवम् अवसारयति यावत् चतुर्थं करोति, कृत्वा सर्वकामगुणितं पारयति। एकस्या: (परिपाट्या) काल: एकादश मासा: पंचदश च दिवसा:। चतसृणां कालस्त्रीणि वर्षाणि दश च मासा:। शेषं तथैव यावत् सिद्धा ।।9।।

अन्वायार्थ–एवं पिउसेण कण्हा वि = इसी प्रकार पितृसेन कृष्णा का अध्ययन भी समझना चाहिए। **नवरं–मुत्तावली तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ** = विशेष:–उन्होंने मुक्तावली तप को अंगीकार किया और विचरने लगी। **तं जहा–** = मुक्तावली तप का वर्णन इस प्रकार है, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उन्होंने उपवास किया और, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छट्ठं करेइ, करित्ता** = बेला किया, करके,**सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठमं करेइ, करित्ता** = तेला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दसमं करेइ, करित्ता** = चौला किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **दुवालसमं करेइ, करित्ता** = पाँच उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउद्दसमं करेइ, करित्ता** = छ: उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **सोलसमं करेइ, करित्ता** = सात उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठारसमं करेइ, करित्ता** = आठ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बीसइमं करेइ, करित्ता** = नौ उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** =

सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बावीसइमं करेइ, करित्ता** = दस उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउवीसइमं करेइ, करित्ता** = ग्यारह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **छव्वीसइमं करेइ, करित्ता** = बारह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **अट्ठावीसइमं करेइ, करित्ता** = तेरह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **तीसइमं करेइ, करित्ता** = चौदह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = पन्द्रह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चोत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = सोलह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **बत्तीसइमं करेइ, करित्ता** = पन्द्रह उपवास किये, करके, **सव्वकामगुणियं पारेइ, पारित्ता** = सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया, करके, **एवं ओसारेइ जाव चउत्थं करेइ करित्ता सव्वकामगुणियं पारेइ** = इस प्रकार वैसे ही एक-एक उतारते हुए यावत् उपवास किया, करके, सर्वकामगुणयुक्त पारणा किया। **एक्काए कालो एक्कारस मासा पण्णरस य दिवसा** = एक परिपाटी का काल ग्यारह महीने पन्द्रह दिन, **चउण्हं तिण्णि वरिसा** = चारों परिपाटियों में तीन वर्ष, **दस य मासा** = दस महीने लगे, **सेसं तहेव जाव सिद्धा** = शेष उसी प्रकार यावत् संलेखना, करके पितृसेनाकृष्णा भी सिद्ध हो गई।

भावार्थ–ऐसे ही पितृसेन कृष्णा का नवमाँ अध्ययन भी समझना चाहिये। इसमें विशेष इतना है कि गुरुणी आर्या चन्दन बाला की आज्ञा पाकर पितृसेन कृष्णा आर्या 'मुक्तावली' तप को अंगीकार करके विचरने लगी, जो इस प्रकार है–

उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बेला किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेला किया और इसी क्रम से दस किये और सर्वकामगुण पारणा किया,

उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, ग्यारह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, बारह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, तेरह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, चौदह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पन्द्रह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, सोलह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, उपवास किया और सर्वकामगुण पारणा किया, पन्द्रह किये और सर्वकामगुण पारणा किया, इस प्रकार वैसे ही एक एक उल्टा उतारते जाते हैं, यावत् अन्त में उपवास करके सर्वकामगुण पारणा किया। इस तरह यह एक पारिपाटी हुई। एक परिपाटी का काल ग्यारह महीने और पन्द्रह दिन होते हैं। ऐसी चार परिपाटियाँ इस तप में होती हैं। इन चारों परिपाटियों में तीन वर्ष दस महीने का समय लगता है।

शेष वर्णन पूर्व की तरह समझना चाहिये। अन्त में अत्यन्त कृशकाय होने पर आर्या पितृसेन कृष्णा भी संलेखना संथारा करके सिद्ध-बुद्ध और सर्व दु:खों से मुक्त हो गई।

।। इइ नवममज्झयणं-नवम अध्ययन समाप्त ।।

दसममज्झयणं-दसवाँ अध्ययन

सूत्र 1

मूल- **एवं महासेणकण्हा वि। नवरं आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं जहा-आयंबिलं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता छ आयंबिलाइं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ, करित्ता एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं वड्ढंति चउत्थंतरियाइं जाव आयंबिलसयं करेइ, करित्ता चउत्थं करेइ।1।**

संस्कृत छाया- एवं महासेनकृष्णाऽपि। विशेष:-आचामाम्लवर्धमानं तप: कर्म उपसंपद्य विहरति। तद्यथा-आचामाम्लं करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा द्वे आचामाम्ले करोति,

कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा त्रीणि आचामाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा चत्वारि आचामाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा पञ्च आचामाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा षडाचामाम्लानि करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति, कृत्वा एकोत्तरिकया वृद्ध्या आचामाम्लानि वर्धन्ते चतुर्थान्तरितानि यावत् आचामाम्लशतं करोति, कृत्वा चतुर्थं करोति ।1 ।

अन्वायार्थ–एवं महासेणकण्हा वि = इसी प्रकार महासेनकृष्णा का अध्ययन है। **नवरं आयंबिलवड्ढमाणं** = विशेष यह है कि वह आयंबिल वर्धमान, **तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ** = तप को अंगीकार करके विचरने लगी। **तं जहा–** = जो इस प्रकार है–, **आयंबिलं करेइ, करित्ता** = एक आयंबिल किया, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **बे आयंबिलाइं करेइ, करित्ता** = फिर दो आयंबिल किये, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **तिण्णि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता** = फिर तीन आयंबिल किये, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **चत्तारि आयंबिलाइं करेइ, करित्ता** = चार आयंबिल तप किये, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **पंच आयंबिलाइं करेइ, करित्ता** = पाँच आयंबिल किये, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **छ आयंबिलाइं करेइ, करित्ता** = छः आयंबिल किये, करके, **चउत्थं करेइ, करित्ता** = उपवास किया, करके, **एकोत्तरियाए वुड्ढीए आयंबिलाइं** = इस प्रकार एक एक की वृद्धि से आयंबिल, **वड्ढंति चउत्थंतरियाइं जाव** = बढ़ाये बीच बीच में उपवास किया यावत्, **आयंबिलसयं करेइ, करित्ता** = सौ आयंबिल किये, करके, **चउत्थं करेइ** = उपवास किया।

भावार्थ–इसी प्रकार महासेन कृष्णा का दसवाँ अध्ययन भी समझना चाहिये। इसमें विशेष इतना ही है कि महासेन कृष्णा 'वर्द्धमान आयंबिल' तप को अंगीकार करके विचरने लगी। जो इस प्रकार है–

प्रारम्भ में एक आयंबिल करके उपवास किया, दो आयंबिल किये और उपवास किया, तीन आयंबिल किये और उपवास किया, चार आयंबिल किये और उपवास किया, पाँच आयंबिल किये और उपवास किया, छह आयंबिल किये और उपवास किया, ऐसे एक एक की वृद्धि से आयंबिल बढ़ाये। बीच-बीच में उपवास किया, इस प्रकार सौ आयंबिल करके उपवास किया। यह वर्द्धमान आयम्बिल तप हुआ।

सूत्र 2

मूल– **तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसेहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसेहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव सम्मं काएणं फासेइ जाव आराहित्ता, जेणेव अज्ज-चंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी विहरइ। तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी उवसो-भेमाणी चिट्ठइ ।।2 ।।**

तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त काले चिंता, जहा खंदयस्स जाव अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ जाव संलेहणा, कालं अणवकंखमाणी विहरइ। तए णं सा महासेण कण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता (पाउणित्ता) मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिंभत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ जाव तमट्ठं आराहेइ चरिम-उस्सासणीसासेहिं सिद्धा बुद्धा।

अट्ठ य वासा आदी, एकोत्तरियाए जाव सत्तरस।
एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाण नायव्वो।।

संस्कृत छाया- ततः खलु सा महासेनकृष्णा आर्या आचामाम्लवर्द्धमानं तपःकर्म चतुर्दशभिः वर्षैः त्रिभिश्च मासैः विंशत्या च अहोरात्रैः यथासूत्रं यावत् सम्यक् कायेन स्पृशति, यावत् आराध्य, यत्रैव आर्यचन्दना आर्या तत्रैव उपागच्छति। उपागत्य आर्यचन्दनाम् आर्याम् वन्दते नमस्यति, वन्दित्वा नमस्यित्वा बहुभिः चतुर्थैः यावत् भावयन्ती विहरति। ततः खलु सा महासेनकृष्णा आर्या तेन उदारेण तपसा यावत् उपशोभमाना उपशोभमाना तिष्ठति।।2।।

ततः खलु तस्याः महासेनकृष्णायाः आर्यायाः अन्यदा कदाचिद् पूर्वरात्रापररात्र-काले चिंता, यथा स्कंदकस्य यावत् आर्यचन्दनाम् आर्याम् आपृच्छति यावत् संलेखना, कालमनवकांक्षन्ती विहरति। ततः खलु सा महासेनकृष्णा आर्या आर्यचंदनाया आर्यायाः अन्तिके सामायिकादीनि एकादशांगानि अधीत्य बहूप्रतिपूर्णानि सप्तदश वर्षाणि पर्यायं पालयित्वा मासिक्या संलेखनया आत्मानं जोषयित्वा षष्टिं भक्तानि अनशनेन छित्त्वा यस्यार्थाय क्रियते यावत् तमर्थम् आराधयति। चरमोच्छ्वासनिःश्वासैः सिद्धा बुद्धा।

अष्ट च वर्षाणि आदिः, एकोत्तरिकया यावत् सप्तदशी।

एष खलु पर्यायः, श्रेणिकभार्याणां ज्ञातव्यः।।

अन्वायार्थ-तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा = तब उन महासेन कृष्णा आर्या ने, **आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं** = आयंबिलवर्धमान तप कर्म को, **चोद्दसेहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं** = चौदह वर्ष तीन महीने और, **वीसेहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं जाव** = बीस अहोरात्र में सूत्रानुसार यावत्, **सम्मं काएणं फासेइ** = विधिपूर्वक काया से स्पर्शन किया, **जाव आराहित्ता, जेणेव अज्ज-** = यावत्

आराधना करके जहाँ आर्या, **चंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ =** चन्दना आर्या थी वहाँ आई। **उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं =** आकर आर्यचन्दना आर्या को, **वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता =** वन्दन-नमस्कार करती है, वन्दन-नमस्कार करके, **बहूहिं चउत्थेहिं जाव भावेमाणी =** बहुत से उपवासों से आत्मा को भावित करती हुई, **विहरइ =** विचरने लगी।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा = तब वह महासेनकृष्णा आर्या, **तेणं ओरालेणं जाव उवसोभेमाणी उवसोभेमाणी चिट्ठइ =** उस प्रधान तप से यावत् शोभायमान होकर रहने लगी, **तए णं तीसे महासेणकण्हाए =** फिर महासेनकृष्णा, **अज्जाए अण्णया कयाइं पुव्वरत्तावरत्त काले =** आर्या को अन्य किसी दिन पिछली रात्रि के समय, **चिंता जहा खंदयस्स जाव =** स्कंदक के समान धर्म चिन्ता उत्पन्न हुई। **अज्जचंदणं अज्जं =** आर्य चन्दना आर्या को, **आपुच्छइ जाव संलेहणा =** पूछकर यावत् संलेखना की, **कालं अणवकंखमाणी विहरइ =** और काल (मृत्यु) को नहीं चाहती हुई विचरने लगी। **तए णं सा महासेण कण्हा अज्जा =** फिर उस महासेन कृष्णा आर्या ने, **अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए =** आर्य चन्दना आर्या के पास, **सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता =** सामायिकादि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, **बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं =** पूरे सत्रह वर्ष तक चारित्र्य धर्म का, **पालइत्ता (पाउणित्ता) =** पालन करके, **मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता =** एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करके, **सट्ठिंभत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ =** साठ भक्त अनशन को पूर्ण कर यावत् जिस कार्य के लिए संयम लिया था, **जाव तमट्ठं आराहेइ =** उसकी पूर्ण आराधना करके, **चरिम-उस्सासणीसासेहिं =** अन्तिम श्वासोच्छ्‌वास से, **सिद्धा बुद्धा =** सिद्ध बुद्ध मुक्त हुई, एवं श्रेणिक राजा की भार्याओं में से।

अट्ठ य वासा आदी = पहली काली आर्या ने आठ वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन किया, **एकोत्तरियाए जाव सत्तरस =** एक-एक रानी के चारित्र पर्याय में एक-एक वर्ष की वृद्धि होती गई, अन्तिम दसवीं रानी ने सत्तरह वर्ष तक, **एसो खलु परियाओ =** चारित्र पर्याय का पालन किया, **सेणियभज्जाण नायव्वो =** ये सभी श्रेणिवक राजा की रानियाँ (पत्नियाँ) थी।

भावार्थ-इस प्रकार महासेन कृष्णा आर्या ने इस 'वर्द्धमान आयम्बिल' तक की आराधना चौदह वर्ष तीन महीने और बीस अहोरात्र की अवधि में सूत्रानुसार विधि पूर्वक पूर्ण की।

आराधना पूर्ण करके आर्या महासेन कृष्णा जहाँ अपनी गुरुणी आर्या चन्दनबाला थीं, वहाँ आई और चंदनबाला को वंदना नमस्कार करके उनकी आज्ञा प्राप्त करके बहुत से उपवास आदि तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी। इस महान् तप के तेज से महासेन कृष्णा आर्या शरीर से दुर्बल हो जाने पर भी अत्यन्त दैदीप्यमान लगने लगी।

एक दिन पिछली रात्रि के समय महासेन कृष्णा आर्या को धर्म-चिन्ता उत्पन्न हुई-''मेरा शरीर तपस्या से दुर्बल हो गया है तथापि अभी तक मुझ में उत्थान, बल, वीर्य आदि है। इसलिये कल सूर्योदय होते ही आर्या चन्दनबाला के पास जाकर उनसे आज्ञा लेकर संलेखना संथारा करूँ।''

तदनुसार दूसरे दिन सूर्योदय होने पर आर्या महासेन कृष्णा ने आर्या चन्दन बाला के पास जाकर वन्दन नमस्कार करके संथारे की आज्ञा मांगी। आज्ञा लेकर यावत् संलेखना संथारा किया और काल की इच्छा नहीं रखती हुई धर्मध्यान-शुक्लध्यान में तल्लीन रहते हुए विचरने लगी।

उन महासेनकृष्णा आर्या ने आर्य चंदना आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। पूरे सत्रह वर्ष तक श्रमणी चारित्र-धर्म का पालन किया। अन्त में एक मास की संलेखना से आत्मा को भावित करते हुए साठ भक्त अनशन तप किया। इस तरह जिस लक्ष्य-प्राप्ति हेतु संयम ग्रहण किया था उसकी पूर्ण आराधना करके महासेन कृष्णा आर्या अन्तिम श्वास-उच्छ्वास में अपने सम्पूर्ण कर्मों को नष्टकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो गई।

इन दसों रानियों के दीक्षापर्याय काल का वर्णन एक ही गाथा में किया गया है। इन में से प्रथम काली आर्या ने आठ वर्ष चारित्र पर्याय का पालन किया।

दूसरी सुकाली आर्या ने नौवर्ष तक इस प्रकार क्रमश: एक एक रानी के चारित्र पर्याय में एक एक वर्ष की वृद्धि होती गई। अन्तिम दसवीं रानी महासेन कृष्णा आर्या ने 17 वर्ष तक दीक्षा पर्याय का पालन किया। ये सभी राजा श्रेणिक की रानियाँ थीं और कोणिक राजा की छोटी माताएँ थीं।

।। इइ दसममज्झयणं-दसवाँ अध्ययन समाप्त।। ।। इइ अट्ठमो वग्गो-अष्टम वर्ग समाप्त ।।

मूल- **एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स अंगस्स अंतगडदसाणं अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि। अंतगडदसाणं अंगस्स एगो सुयक्खंधो अट्ठवग्गा अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति। तत्थ पढमबितियवग्गे दस दस उद्देसगा, तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, चउत्थपंचम-वग्गे दस उद्देसगा, छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा, सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा, अट्ठम वग्गे दस उद्देसगा। सेसं जहा नायाधम्मकहाणं।**

संस्कृत छाया- एवं खलु जम्बू ! श्रमणेन भगवता महावीरेण आदिकरेण यावत् (मुक्तिं) संप्राप्तेन अष्टमस्य अंगस्य अंतकृद्दशानाम् अयमर्थ: प्रज्ञप्त: इति ब्रवीमि। अन्तकृद्दशानाम् अंगस्य एक: श्रुतस्कन्धो अष्ट-वर्गा:। अष्टसु चैव दिवसेषु उद्दिश्यन्ते। तत्र

प्रथम–द्वितीय वर्गयो: दश दश उद्देशका:, तृतीय वर्गे त्रयोदश उद्देशका:, चतुर्थ–पंचमवर्गयो: दश दश उद्देशका:, षष्ठवर्गे षोडश उद्देशका:, सप्तमवर्गे त्रयोदश उद्देशका:, अष्टमवर्गे दश उद्देशका: । शेषं यथा ज्ञाताधर्मकथानाम् ।

अन्वायार्थ–एवं खलु जंबू ! समणेणं भगवया महावीरेणं = इस प्रकार हे जम्बू ! श्रमण भगवान महावीर, **आइगरेणं =** जो कि धर्म की आदि करने वाले, **जाव संपत्तेणं अट्ठमस्स =** यावत् मुक्ति पधारे हैं, ने आठवें, **अंगस्स अंतगडदसाणं =** अंग अंतकृद्दशासूत्र का, **अयमट्ठे पण्णत्ते त्ति बेमि =** यह अर्थ कहा है, ऐसा मैं कहता हूँ। **अंतगडदसाणं अंगस्स =** अंतकृद्दशा अंग में, **एगो सुयक्खंधो अट्ठवग्गा =** एक श्रुतस्कन्ध और आठ वर्ग हैं। **अट्ठसु चेव दिवसेसु उद्दिसिज्जंति =** आठ ही दिनों में इनका वाचन होता है। **तत्थ पढमबितियवग्गे दस दस उद्देसगा =** इसमें प्रथम व द्वितीय वर्ग में दस–दस उद्देशक हैं, **तइयवग्गे तेरस उद्देसगा, =** तीसरे वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, **चउत्थपंचम–वग्गे दस उद्देसगा =** चौथे और पाँचवे वर्ग में दस दस उद्देशक हैं, **छट्ठवग्गे सोलस उद्देसगा =** छठे वर्ग में सोलह उद्देशक हैं, **सत्तमवग्गे तेरस उद्देसगा =** सातवें वर्ग में तेरह उद्देशक हैं, **अट्ठम वग्गे दस उद्देसगा =** आठवें वर्ग में दस उद्देशक हैं। **सेसं जहा नायाधम्मकहाणं =** शेष वर्णन ज्ञाताधर्म कथा के सदृश है।

भावार्थ–श्री सुधर्माह्व''हे जूम्ब ! अपने शासन की अपेक्षा से धर्म की आदि करने वाले श्रमण भगवान् महावीर, जो मोक्ष पधार गये हैं, ने आठवें अंग अन्तकृद्दशा का यह भाव, यह अर्थ प्ररूपित किया है।

भगवान से जैसा भाव, जैसा अर्थ मैंने सुना, उसी प्रकार मैंने तुम्हें कहा है।''

इस अन्तकृद्दशा सूत्र में एक श्रुतस्कन्ध है और आठ वर्ग हैं। आठ दिनों में इसका वाचन होता है।

इसमें प्रथम और दूसरे वर्ग के दस–दस अध्ययन हैं। तीसरे वर्ग में तेरह उद्देशक (अध्ययन) हैं। चौथे और पाँचवें वर्ग में दस–दस उद्देशक (अध्ययन) हैं। छठे वर्ग में सोलह अध्ययन हैं। सातवें वर्ग में तेरह और आठवें वर्ग में दस अध्ययन हैं।

शेष वर्णन ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र के अनुसार है।

।। अंतगडदसांगसुत्तं समत्तं ।।

।। अंतकृद्दशांगसूत्र समाप्त ।।

◆◆◆◆

नोट :– इस सूत्र में नगर आदि का वर्णन संक्षेप में किया गया है। नगर आदि से लेकर बोधि–लाभ और अन्त क्रिया आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन ज्ञाताधर्म कथांग सूत्र के समान जानना चाहिये।

परिशिष्ट 1

सूक्तियाँ

1. **जहा दढपइण्णे जाव गिरिकंदर–मल्लीणे चंपकवरपायवे सुहंसुहेणं परिवड्ढइ**–दृढ़ प्रतिज्ञ के समान पर्वत की गुफा में चम्पक वृक्ष पर चढ़ी हुई लता के समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा।
2. **अहासुहं देवाणुप्पिया। मा पडिबंधं करेह**–हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो। धर्मकार्य में विलम्ब मत करो।
3. **जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए**–जिस दिशा से आया उसी दिशा में वापस लौट गया।
4. **एगदिवसमपि रज्जसिरिं पासित्तए**–एक दिन के लिए भी तुम्हारी राज्यश्री को देखना चाहते हैं।
5. **मणसा वि अप्पदुस्समाणे**–मन से भी द्वेष न करते हुए।
6. **साहिज्जे दिण्णे**–सहायता दी।
7. **अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य जाव अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोएसु मुच्छिए**–मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ जो राज्य, अन्त:पुर और मनुष्य संबंधी कामभोगों में मूर्च्छित हूँ।
8. **से नूणं कण्हा। अयमट्ठे समट्ठे। हंता अत्थि**–निश्चय ही हे कृष्ण, क्या यह अर्थ समर्थ है? हाँ भगवन्।
9. **कोडुंबियपुरिसा**–हे कौटुम्बिक पुरुषों।
10. **सद्दहामि णं भंते! णिग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे वयह**–हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, वह ऐसा ही है जैसा आप कहते हो।
11. **आलित्ते ण भंते! जाव धम्ममाइक्खिउं**–हे भगवन्! यह संसार जल रहा है यावत् धर्म स्वीकार करना चाहती हूँ।
12. **तं नत्थि णं मोग्गरपाणिजक्खे इह सण्णिहिए, सुव्वत्तं तं एस कट्ठे**–निश्चय ही मुद्गरपाणियक्ष यह नहीं है, यह तो मात्र काष्ठ का पुतला है।
13. **किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए**–विपुल अर्थ ग्रहण करने से जो फल होता उसका तो कहना ही क्या?

14. **अहं सुदंसणे नामं समणोवासए अभिगयजीवाजीवे**–मैं सुदर्शन नाम का जीव–अजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक हूँ।

15. **मणसा वि अप्पउस्समाणे सम्मं सहइ, सम्मं खमइ, सम्मं तितिक्खइ, सम्मं अहियासेइ**–मन से भी द्वेष न करते हुए सम्यक् प्रकार से सहन करता है, क्षमा करता है, तितिक्षा रखते लाभ का हेतु मानते हुए समभाव से सहन करते हैं।

16. **संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ**–संयम–तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते हैं।

17. **जं चेव जाणामि तं चेव न जाणामि, जं चेव न जाणामि तं चेव जाणामि**–मैं जिसे जानता हूँ उसे नहीं जानता हूँ, जिसे नहीं जानता हूँ उसे जानता हूँ।

◆◆◆◆

परिशिष्ट 2

विशिष्ट तथ्य

(1) श्री अन्तगडदसा सूत्र में कुल 90 साधकों का वर्णन है। जिनमें से भगवान नेमिनाथ के शासनवर्ती 51 एवं भगवान महावीर के शासनवर्ती 39 साधक हैं।

(2) भगवान नेमिनाथ के शासनवर्ती 41 पुरुष एवं 10 स्त्रियाँ हैं तथा भगवान महावीर के शासनवर्ती 16 पुरुष एवं 23 स्त्रियों का वर्णन मिलता है।

(3) 66 साधकों ने 11 अंगों का अध्ययन किया। 10 साधकों ने 12 अंगों का अध्ययन किया। 12 साधकों ने 14 पूर्वों का अध्ययन किया। 2 साधकों (श्री गजसुकुमाल मुनि एवं श्री अर्जुन अणगार) ने अष्ट प्रवचन माता का अध्ययन किया।

(4) श्री नेमिनाथ भगवान के शासनवर्ती साधु शत्रुञ्जय पर्वत पर व गजसुकुमाल मुनि-श्मशान में सिद्ध हुए और भगवान महावीर के समय के साधक विपुलगिरि पर सिद्ध हुए। सभी स्त्री साधिकाएँ (साध्वियाँ) उपाश्रय में ही मुक्त हुईं।

(5) सबसे अल्पकाल में श्री गजसुकुमाल मुनि सिद्ध हुए, जबकि सबसे दीर्घकाल (दीक्षा-पर्याय) में श्री एवन्ता मुनिवर मुक्त हुए।

(6) सभी साधकों का संलेखना संथारा का काल 30 दिन का था। केवल श्री अर्जुन अणगार का 15 दिन का था एवं श्री गजसुकुमाल मुनि दीक्षित हुए उसी दिन पिछले प्रहर में बारहवीं भिक्षु प्रतिमा वहन करते हुए उसी रात्रि के प्रथम प्रहर में सिद्ध हुए।

(7) श्री गजसुकुमाल मुनि का जीवन, दृढ़ धैर्य से भयंकर परीषहों को जीतने का एवं श्री अर्जुन अणगार का जीवन क्षमा, तितिक्षा एवं सहिष्णुता का आदर्श प्रस्तुत करता है।

(8) धर्म के प्रति दृढ़ आस्था के लिये श्री सुदर्शन श्रावक की जीवन झाँकी अविस्मरणीय है। मृत्यु के मुँह में पहुँचने पर भी व्रतों को पालने की दृढ़ता मननीय एवं आचरणीय है।

(9) जीवन का वास्तविक दिग्दर्शन बाल साधक श्री एवन्ता कुमार की इस पहेली में, "जं चेव जाणामि, तं चेव न जाणामि, तं चेव जाणामि" ज्ञातव्य है।

(10) काली आदि दसों सुकुमाल राज रानियों का जीवन-चरित्र त्याग और तपस्या का प्रबल प्रेरक है।

(11) अर्जुन माली और गजसुकुमाल इन दो साधकों को छोड़कर शेष पुरुष साधकों ने गुणरत्न संवत्सर तप और प्रतिमाओं की आराधना की।

◆◆◆◆

परिशिष्ट 3

सन्दर्भ सामग्री

आर्य सुधर्मा का परिचय–

तेणं कालेणं..................................भावेमाणे विहरति।

ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन-1

अर्थ–उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के शिष्य आर्य सुधर्मा नामक स्थविर थे, वे जाति सम्पन्न-उत्तम मातृ पक्ष वाले, कुल सम्पन्न-उत्तम पितृपक्ष वाले थे। उत्तम संहनन से उत्पन्न बल से युक्त थे, अनुत्तर विमानवासी देवों की अपेक्षा भी अधिक रूपवान्, विनयवान्, चार ज्ञान सम्पन्न, क्षायिक सम्यक्त्ववान् लाघववान् (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि, रस एवं साता रूप तीनों गारवों से रहित) थे। ओजस्वी अर्थात् मानसिक तेज से सम्पन्न, या चढ़ते परिणाम वाले, तेजस्वी अर्थात् शारीरिक कान्ति से देदीप्यमान्, वचस्वी सगुण वचन वाले यशस्वी क्रोध को जीतने वाले, मान को, माया को एवं लोभ को जीतने वाले, पाँचों इन्द्रियों को, निद्रा को, तथा परीषहों को जीतने वाले, जीवित रहने की कामना और मृत्यु के भय से रहित, तप प्रधान अर्थात् अन्य मुनियों की अपेक्षा अधिक तप करने वाले, या उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान अर्थात् गुणों के कारण उत्कृष्ट या उत्कृष्ट संयम गुण वाले करणप्रधान-पिण्डविशुद्धि आदि करणसत्तरी में प्रधान, चरणप्रधान महाव्रत आदि चरणसत्तरी के गुणों में प्रधान, निग्रहप्रधान, अनाचार में प्रवृत्ति न करने के कारण उत्तम तत्त्व का निश्चय करने में प्रधान, इसी प्रकार आर्जव, मार्दव, लाघव प्रधान अर्थात् क्रिया करने में कौशल प्रधान, क्षमाप्रधान, गुप्तिप्रधान, मुक्ति (निर्लोभता) में प्रधान, देवता अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं में प्रधान, मंत्रप्रधान अर्थात् हरिणगमेषी आदि देवों से अधिष्ठित मन्त्रों से प्रधान, ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानों की प्रधानता वाले वेदप्रधान अर्थात् लौकिक एवं लोकोत्तर आगमों में निष्णात, नय-प्रधान, नियमप्रधान, भाँति-भाँति के अभिग्रह धारण करने में कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार अर्थात् अपनी उग्र तपश्चर्या से समीपवर्ती अल्पसत्त्व वाले मनुष्यों में भय उत्पन्न करने वाले, घोर अर्थात् परीषहों, इन्द्रियों एवं कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओं को निग्रह करने में कठोर, घोरव्रती अर्थात् महाव्रतों को आदर्श रूप पालन करने वाले, घोर तपस्वी, उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीर-संसार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाविष्ट करके रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चार ज्ञान के धनी, पाँच सौ साधुओं से परिवृत्त, अनुक्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विचरण करते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। (ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन-1)

महाबल चरित्र–भगवती सूत्र शतक 11 उद्देशक 11 से संक्षेप करके लिया है-उस काल उस समय हस्तिनागपुर नामक एक नगर था जो वर्णनीय था। वहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था जो वर्णनीय था। उस हस्तिनागपुर नगर में बल नामक राजा था जो वर्णन करने योग्य था। उस बल राजा के प्रभावती नाम की रानी थी, उसके हाथ-पैर सुकुमाल थे, इत्यादि वर्णन जानना चाहिये। किसी दिन पाँच वर्ण के सरस और सुगन्धित पुष्प-पुञ्जों के उपचार से युक्त ऐसे भवन में

कोमल, क्षौमिक-रेशमी दुकूलपट से आच्छादित सुगन्धित उत्तम पुष्प, चूर्ण और अन्य शयनोपचार से युक्त शय्या पर सोती हुई प्रभावती रानी ने अर्ध निद्रित अवस्था में अर्द्ध-रात्रि के समय इस प्रकार का उदार, कल्याण, शिव, मंगलकारक और शोभायुक्त महास्वप्न देखा और जाग्रत हुई।

प्रभावती रानी ने स्वप्न में एक सिंह देखा, जो (वैताढ्य) पर्वत के समान उच्च और श्वेत वर्ण वाला था। वह विशाल, रमणीय और दर्शनीय था। वह सिंह अपनी सुन्दर तथा उन्नत पूँछ को पृथ्वी पर फटकारता हुआ, लीला करता हुआ, उबासी लेता हुआ और आकाश से नीचे उतर कर अपने मुख में प्रवेश करता हुआ दिखाई दिया। यह स्वप्न देखकर प्रभावती रानी जागृत हुई। वह हर्षित और सन्तुष्ट हृदय से स्वप्न का स्मरण करने लगी। फिर रानी अपनी शय्या से उठी और राजहंसी के समान उत्तम गति से चलकर बलराजा के शयनगृह में आई और इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ आदि मधुर वाणी में बोलती हुई बलराजा को जगाने लगी। राजा के जागने पर एवं आज्ञा मिलने पर महारानी भद्रासन पर बैठी और इस प्रकार बोली--

हे देवानुप्रिय! आज तथा प्रकार की सुखशय्या में सोती हुई मैंने अपने मुख में प्रवेश करते हुए सिंह के स्वप्न को देखा है। हे देवानुप्रिय! इस उदार महास्वप्न का क्या फल होगा? रानी की यह बात सुनकर राजा बल ने अपने स्वाभाविक बुद्धि-विज्ञान से उस स्वप्न का फल निश्चय किया। तत्पश्चात् राजा इस प्रकार कहने लगा-हे देवी! तुमने उदार, कल्याणकारक, शोभायुक्त स्वप्न देखा है। हे देवानुप्रिये! तुम्हें अर्थलाभ, भोगलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ होगा। हे देवानुप्रिये! नव मास और साढ़े सात दिन बीतने के बाद तुम कुल के दीपक, कुल को आनन्द देने वाले, सौम्य आकृति वाले, कान्त, प्रियदर्शन, सुरूप एवं देवकुमार के समान कान्तिवाले पुत्र को जन्म दोगी। वह बालक बाल भाव से मुक्त होकर विज्ञ और परिणत होकर युवावस्था को प्राप्त करके शूरवीर, पराक्रमी, विस्तीर्ण और विपुल बल तथा वाहन वाला, राज्य का स्वामी होगा।

प्रभावती रानी राजा से महास्वप्न का फल श्रवण कर हर्षित हुई, यावत् शयनागार में आकर विचारने लगी-मेरा उत्तम, प्रधान मंगलरूप स्वप्न, दूसरे पाप स्वप्नों से विनष्ट न हो जाय अत: वह देव, गुरु, धर्म सम्बन्धी प्रशस्त और मंगल विचारणाओं से स्वप्न जागरण करती हुई बैठी रही।

प्रात:काल के समय बलराजा शय्या से उठे, स्नान आदि कार्यों से निवृत्त होकर, वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सुकोमल भद्रासन पर बैठे तथा कौटुम्बिक पुरुषों के द्वारा स्वप्न पाठकों को बुलवाकर स्वप्न का फल पूछा।

स्वप्न पाठकों ने भी सिंह के मुख में प्रवेश करने के महास्वप्न का फल वही बताया जो बलराजा ने रानी को बतलाया था। स्वप्न पाठकों से भी वह फल जो स्वयं ने सोचा था, सुनकर राजा बल अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा महारानी प्रभावती को भी स्वप्न पाठकों से सुना फल कह सुनाया।

प्रभावती रानी अत्यन्त हर्षित एवं सन्तुष्ट होती हुई। गर्भ के लिए हितकारी, पथ्यकारी, मित और पोषण करने वाले पदार्थ ग्रहण करने लगी। यथासमय जो जो दोहद उत्पन्न हुए, वे सभी सम्मान के साथ पूर्ण किये गये। रोग, मोह, भय, शोक और परित्रास रहित होकर गर्भ का सुखपूर्वक पालन करने लगी। इस प्रकार नवमास और साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर प्रभावती देवी ने चन्द्र समान सौम्य आकृति वाले कान्त, प्रियदर्शन और सुन्दर रूप वाले पुत्र को जन्म दिया। पुत्र जन्म के प्रिय सम्वाद दासियों से सुनकर राजा बल हर्षित एवं सन्तुष्ट हुआ और अपने मुकुट को छोड़कर धारण किये हुए शेष सभी अलंकार उन दासियों को पारितोषिक स्वरूप दे दिये।

कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर राजा ने आदेश दिया-कि शीघ्र ही बन्दियों को मुक्त करो, नाप-तोल की वृद्धि करो, हस्तिनागपुर नगर के बाहर और भीतर छिड़काव करो, शुद्ध करो। राजाज्ञा के अनुसार उक्त सारे कार्य किये गये। क्योंकि यह बालक राजा बल का पुत्र और प्रभावती देवी का आत्मज था अत: इसका नाम ''महाबल'' रक्खा गया। महाबल का 1. क्षीरधात्री, 2. मञ्जनधात्री, 3. मण्डनधात्री, 4. क्रीडनधात्री और 5. अंकधात्री, इन पाँच धात्रियों द्वारा पालन किया जाने लगा। आठ वर्ष से कुछ अधिक उम्र होने पर कलाचार्य के पास भेजा, यावत् दृढ़प्रतिज्ञ कुमार के समान भोग-भोगने में समर्थ हो गया। महाबल कुमार को भोग योग्य जानकर माता-पिता ने उसके लिये आठ उत्तम प्रासाद बनवाये, तत्पश्चात् शुभ मुहूर्त में समान त्वचा, उम्र, रूप, लावण्य और गुणों से युक्त एवं समान राजकुल से लाई गई उत्तम आठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में पाणिग्रहण करवाया गया। विवाहोपरान्त महाबलकुमार के माता-पिता ने अपनी आठों पुत्रवधुओं के लिए आठ-आठ करोड़ स्वर्णमुद्रा आदि अनेक वस्तुओं का प्रीतिदान दिया।

3. मेघकुमार की दीक्षा-उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वमी अनुक्रम से विहार करते हुए, जहाँ राजगृह नगर था और जहाँ गुणशील नामक चैत्य था, वहाँ पधारे। जब राजगृह नगर की जनता अपार भीड़ के साथ एक ही दिशा में, एक ही ओर मुख करके जाने लगी तब मेघकुमार ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर पूछा-कि आज ये लोग एक ही दिशा में कहाँ जा रहे हैं? क्या कोई इन्द्र महोत्सव आदि तो नहीं है? तब कौटुम्बिक पुरुषों ने कहा कि-देवानुप्रिय! राजगृह नगर के गुणशील उद्यान में त्रैलोक्य पूजनीय श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं, उन्हीं के दर्शन एवं उपदेश श्रवण करने ये लोग जा रहे हैं।

मेघकुमार ने कौटुम्बिक पुरुषों को चार घण्टाओं वाले अश्वरथ को लाने का आदेश दिया। मेघकुमार स्नान कर, वस्त्र आभूषण से अलंकृत हुए, तथा चार घंटा वाले अश्वरथ पर आरूढ़ होकर सुभटों के विपुल समूह वाले, परिवार से घिरे हुए राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर गुणशील उद्यान के पास आये। अश्वरथ से नीचे उतर, छत्रादि अतिशय देख कर और पाँच प्रकार के अभिगम करके श्रमण भगवान महावीर के सम्मुख चले। सम्मुख आकर भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके स्तुति रूप वन्दन किया और काय से नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके भगवान के सम्मुख दोनों हाथ जोड़े, विनयपूर्वक प्रभु की उपासना करने लगे।

तत्पश्चात् भगवान महावीर ने मेघकुमार को तथा उस महती परिषद् को श्रुतधर्म एवं चारित्र धर्म का कथन किया। किस प्रकार से जीव कर्मों से बद्ध और किस प्रकार मुक्त होते हैं तथा किस प्रकार संक्लेश को प्राप्त होते हैं, यह सब धर्मकथा सुनकर परिषद् अर्थात् जनसमूह वापिस लौट गया। तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के पास से मेघकुमार ने धर्म श्रवण करके उसे हृदय में धारण किया और हृष्टतुष्ट होकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार विधिवत् वन्दना करके इस प्रकार कहा-भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, मुझमें जिनशासन के अनुसार आचरण करने की अभिलाषा है। हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता की आज्ञा लेकर आपके चरणों में मुण्डित होकर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। भगवान ने कहा-हे देवानुप्रिय! जिस प्रकार तुम्हें सुख उपजे वैसा करो, धर्म कार्य में विलम्ब मत करो।

तत्पश्चात् मेघकुमार भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार कर चार घंटाओं वाले अश्वरथ में बैठकर अपने राजमहल में आया। अपने माता-पिता को पैरों में प्रणाम करके उनसे इस प्रकार बोला-हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर के समीप धर्म श्रवण किया है, उस धर्म की इच्छा की है, मुझे उस पर श्रद्धा, विश्वास एवं प्रतीति है। तब माता-पिता बोले-पुत्र! तुम धन्य हो, कि तुमने श्रमण भगवान महावीर के निकट धर्म श्रवण किया है और वह धर्म तुम्हें इष्ट, पुन: पुन: और रुचिकर भी लगा है।

तब मेघकुमार अपने माता-पिता से बोला-हे माता-पिता! मैंने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से धर्म श्रवण किया, वह मुझे रुचिकर लगा, अतएव मैं आपकी अनुमति प्राप्त करके श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समीप मुण्डित होकर मुनि दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

तब धारिणीदेवी इस अप्रिय, अमनोज्ञ वचन को सुनकर महान् पुत्र वियोग के मानसिक दु:ख से पीड़ित हुई, और मूर्च्छित हो गयी। फिर उपचार से आश्वस्त होने पर बड़े दीन भाव से कहने लगी-हे पुत्र! तू मेरा इकलौता, इष्ट, कान्त, प्रिय एवं मनोज्ञ पुत्र है, श्वासोच्छ्वास के समान आनन्ददायक है। हम तेरा वियोग सहन नहीं कर सकते, अत: जब तक हम जीवित हैं, तब तक तुम मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों का उपयोग करके कुल की वृद्धि करो और हमारे काल-धर्म प्राप्त होने पर फिर संयम ले लेना।

इस पर मेघकुमार ने कहा-मनुष्य भव अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत और रोग, शोक, उपद्रव आदि से व्याप्त है। सड़न, गलन एवं विध्वंसन धर्म वाला है। आगे पीछे इसे अवश्य छोड़ना पड़ेगा, फिर कौन जानता है कि पहले कौन मरेगा। अत: हे पूज्यों! मुझे आज्ञा दीजिये।

माता फिर बोली कि तुम्हारा गुण, शील और यौवन सम्पन्न आठ राजकुमारियों के साथ विवाह हुआ है। अतएव हे पुत्र! इनके साथ काम-भोग का उपभोग कर भुक्त भोगी होने के पश्चात् भगवान अरिष्टनेमि के समक्ष मुण्डित हो जाना। इस पर कुंवर ने कहा कि मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग जीवन को गिराने वाले, अपवित्र, अशाश्वत, वात, पित्त, कफ, शुक्र एवं शोणित युक्त हैं और इनको पहले ही त्यागना अच्छा है। आप मुझको संयम लेने की अनुमति देवें।

कुमार के युक्तियुक्त वचनों को सुनकर माता ने एक और दलील दी-''तुम्हारे पूर्वजों द्वारा अटूट संगृहीत द्रव्य है, उसे खूब खाओ और दानादि से दीन दु:खियों की सेवा करो।'' इस पर कुमार ने निवेदन किया कि धनादि द्रव्य को अग्नि जला सकती है, चोर चुरा सकते हैं, राजा अपहरण कर सकता है। हिस्सेदार बँटवारा कर सकता है और मृत्यु आने पर वह छूट जाता है। ऐसी परिस्थितियों में नष्ट होने वाले इन पदार्थों पर कौन बुद्धिमान विश्वास कर सकता है? फिर मृत्यु का भी कोई भरोसा नहीं, अत: हे माता-पिता! मुझे संयम अंगीकार करने की आज्ञा दीजिये।

माता, कुमार के युक्ति संगत जवाब से निरुत्तर होकर अब संयम की कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराती हुई कहती है कि संयम लेने की भावना प्रशंसनीय है, परन्तु उसका पालन करना अतिदुष्कर है। क्योंकि तुम सुकुमार हो, वहाँ प्रासुक भोजन आदि समय पर नहीं मिलते, शीत-उष्ण, रोग, आक्रोश आदि 22 कठिन परीषहों को जीतना, भिक्षा से जीवन निर्वाह करना, केश लुंचन, पैदल विचरण, भूमि शयन आदि-आदि संयम की क्रियाएँ दुस्साध्य हैं। इसलिये हे पुत्र! तू इस विचार को छोड़ दे। इस पर कुमार ने कहा-हे माता! संयम मार्ग कायर और कमजोर पुरुषों के लिए दुष्कर है, धीर-वीर-पुरुष के लिये इसका पालन दुष्कर नहीं है, अत: हे माता-पिता! मुझे संयमित होने की अनुज्ञा दीजिये। जब माता-पिता अनुकूल और प्रतिकूल वचनों से राजकुमार को समझाने में समर्थ नहीं हुए तो उन्होंने सबसे बड़ा प्रलोभन दिया कि हम तुम्हारी 'राजश्री' एक दिन के लिए देखना चाहते हैं। इस प्रस्ताव पर कुमार के मौन रहने से स्वीकृति समझ कर उनका राज्याभिषेक किया गया, राज्याभिषेक होने पर माता-पिता एवं प्रजाजन ने उनकी जय-विजय की और अर्ज की, कि अब आपकी क्या आज्ञा है? तब मेघकुमार (राजा) ने कहा-''मेरी दीक्षा की तैयारी की जावे।'' राज-भण्डार में से दीक्षा हेतु तीन लाख सौनेया निकाल कर दो लाख के ओघे पात्रे एवं एक लाख नापित को केश काटने के लिये दिये जावें।

उनका दीक्षा जुलूस बड़े ठाठ-बाट से नगर के मध्य से होता हुआ बगीचे में आया, कुमार पालकी से नीचे उतरे। तब उनके माता-पिता अपने पुत्र को आगे कर, भगवान को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार बोले-''हे भगवन्! यह मेघकुमार हमारा इकलौता, इष्ट, कान्त यावत् प्रिय पुत्र है। यह काम भोग के कीचड़ से जन्मा और भोग से वृद्धि पाया परन्तु यह काम भोगों में लिप्त नहीं हुआ है। संसार से उद्विग्न होकर आपके पास दीक्षित होना चाहता है। हम आपको इसे शिष्य रूप में भिक्षा देते हैं। आप इसको ग्रहण करावें।''

भगवान ने ''अहासुहं देवाणुप्पिया!'' कहकर स्वीकृति फरमाई। तत्पश्चात् मेघकुमार ने ईशान कोण में जाकर अपने वस्त्र अलंकार उतार कर साधु का वेश धारण किया। उसकी माता मेघकुमार के अलंकार और वस्त्रों को ग्रहण कर, विलाप करती हुई कुमार से बोली-''हे लाल! प्राप्त चारित्र योग में पूर्ण यतना रखना, अप्राप्त चारित्र योग को प्राप्त करना, संयम में कभी भी प्रमाद मत करना, तुम्हारी वैराग्य निष्ठा से प्रेरणा लेकर हम भी उसी मार्ग को ग्रहण करें।'' ऐसी भावना करती हुई भगवान को वन्दना नमस्कार कर वह लौट गयी।

तत्पश्चात् कुमार ने पंचमुष्टि लोच करके भगवान के पास जाकर वन्दन नमस्कार किया और प्रभु से कहा-''भन्ते! संसार जन्म-मरण रूपी आग से जल रहा है। जैसे जलते हुए घर में से बहुमूल्य व सार वस्तुएँ निकाल ली जाती हैं, उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ आत्मा रूपी रत्न को जलते हुए संसार से निकालने के लिये मैं आपके चरणों में दीक्षित होने को उपस्थित हुआ हूँ। आप मुझे दीक्षित कीजिये।'' इस पर प्रभु ने उन्हें मुनि धर्म की दीक्षा दी। साथ ही साधु-धर्म की शिक्षाएँ भी। भगवान के आदेशानुसार मेघमुनि संयम धर्म की पालना में संलग्न हो गये। (ज्ञाताधर्मकथांग-अध्ययन-1)

गौतम अणगार ने महामुनि स्कन्धक के समान भिक्षु की बारह प्रतिमाएँ धारण की, जिनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है-

पहली प्रतिमा का धारक साधु एक महीने तक एक दत्ति अन्न की और एक दत्ति पानी की (दाता द्वारा दिये जाने वाले अन्न और पानी की अखण्ड धारा) लेता है। एक से लेकर सात प्रतिमाओं का समय प्रत्येक का एक-एक मास का है। पहली एक मासिकी, दूसरी दो मासिकी, तीसरी त्रैमासिकी, चौथी चार मासिकी, पाँचवीं पाँच मासिकी, छट्ठी छ:मासिकी और सातवीं सप्तमासिकी कहलाती है। पहली प्रतिमा में अन्न-पानी की एक-एक दत्ति, दूसरी में दो, तीसरी में तीन, यावत् क्रमश: सातवीं में सात दत्ति अन्न की और सात दत्ति ही पानी की ली जाती है। आठवीं प्रतिमा का काल सात अहोरात्रि का है और नवमी का भी सात दिन रात है। आठवीं नवमी दसवीं प्रतिमा में चौविहार उपवास किया जाता है। ग्यारहवीं प्रतिमा का समय एक दिन रात का है और चौविहार बेला करके आराधना की जाती है। बारहवीं प्रतिमा का समय एक रात का है, चौविहार तेले से इसकी आराधना की जाती है।

(प्रतिमा पालन करने की विशेष विधि प्रश्नोत्तर में देखें।)

गुणरयणं वि तवो कम्मं-

गुणरत्न नामक तप सोलह महीनों में सपन्न होता है। इसमें तप के 407 दिन और पारणा के 73 दिन होते हैं। पहले मास में एकान्तर उपावस किया जाता है। दूसरे मास में बेले-बेले पारणा और तीसरे मास में तेले-तेले पारणा किया जाता है। इसी प्रकार बढ़ाते हुए सोलहवें महीने में सोलह-सोलह उपवास करके पारणा किया जाता है। इस तप में दिन को उत्कटुक आसन से बैठकर सूर्य की आतापना ली जाती है और रात्रि में वस्त्र रहित वीरासन से बैठकर ध्यान किया जाता है।

गुणरत्न संवत्सर तप-तालिका

महीना	तप व तप की संख्या	तप के दिन	पारणे के दिन	योग
पहला	15 उपवास	15	15	30
दूसरा	10 बेला	20	10	30
तीसरा	8 तेला	24	8	32
चौथा	6 चोला	24	6	30
पाँचवाँ	5 पचोला	25	5	30
छट्ठा	4 छह	24	4	28
सातवाँ	3 सात	21	3	24
आठवाँ	3 अठाई	24	3	27
नवमाँ	3 नव	27	3	30
दसवाँ	3 दस	30	3	33
ग्यारहवाँ	3 ग्यारह	33	3	36
बारहवाँ	2 बारह	24	2	26
तेरहवाँ	2 तेरह	26	2	28
चौदहवाँ	2 चौदह	28	2	30
पन्द्रहवाँ	2 पन्द्रह	30	2	32
सोलहवाँ	2 सोलह	32	2	34
योग		**407**	**73**	**480**

जहा खंदओ तहा चिंतेइ-

गौतम अणगार को स्कन्धक मुनि की तरह (भगवती शतक 2 उद्देशक 1) चिन्तन करते एकदा-किसी समय, रात्रि के पिछले प्रहर में धर्म जागरणा करते हुए ऐसा विचार किया-मैं पूर्वोक्त प्रकार से उदार तप द्वारा शुष्क एवं कृश हो गया हूँ। मेरा शारीरिक बल क्षीण हो गया, केवल आत्मबल से चलता और खड़ा रहता हूँ। चलते हुए, खड़े होते हुए हड्डियों में कड़-कड़ की आवाज होती है। अत: जब तक मुझमें उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकार पराक्रम है, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि रात्रि व्यतीत होने पर प्रात:काल भगवान के समीप जाकर, उनको वन्दन नमन कर, पर्युपासना करूँ, करके स्वयं ही पाँच महाव्रतों का आरोपण करके साधु-साध्वियों को खमाकर, स्थविरों के साथ शत्रुंजय पर्वत पर धीरे-धीरे चढ़कर, शिलापट्ट की प्रतिलेखना करके, डाभ का संथारा बिछाकर, अपनी आत्मा को संलेखना से दोषमुक्त करके, आहार-पानी का त्याग कर पादोपगमन संथारा करना तथा उसमें स्थिर रहना मेरे लिए श्रेष्ठ है। (भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1)

जहा गोयमसामी जाव इच्छामो......

छहों सहोदर मुनियों ने गौतम स्वामी की तरह जिनका वर्णन भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक-5 में आया है, की तरह बेले के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में शास्त्र-स्वाध्याय, दूसरे प्रहर में ध्यान तथा तीसरे प्रहर में शान्त भाव से मुखवस्त्रिका, वस्त्रों व पात्रों की प्रतिलेखना की। पात्रों को लेकर भगवान के चरणों में विधिवत् वन्दन-नमस्कार करके नगरी में भिक्षार्थ जाने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल जाने पर अविक्षिप्त, अत्वरित, चंचलता रहित तथा ईर्या शोधन पूर्वक शान्त चित्त से भिक्षा हेतु भ्रमण करने लगे।

जम्मणं जहा मेहकुमारे-धारिणी के समान देवकी महारानी के दोहद पूर्ति होने पर वह सुख पूर्वक अपने गर्भ का पालन कर लगी और नौ मास साढ़े सात दिन व्यतीत होने पर उसने एक सुन्दर पुत्र रत्न को जन्म दिया जिसका जन्म अभिषेक, मेघकुमार के समान समझना चाहिए (जिसका वर्णन ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र अध्ययन 1 पर उपलब्ध है) अर्थात्

(1) सूचना देने वाली दासियों का दासत्व दूर किया और उनको विपुल आजीविका दी।

(2) नगर को सुगन्धित कराया, कैदियों को बन्धन मुक्त किया और तोल-माप की वृद्धि की।

(3) दस दिन के लिये कर मुक्त किया और गरीबों और अनाथों को राजा ने मुक्त हाथ से दान दिया। दस दिन तक राज्य में आनन्द महोत्सव हुआ।

(4) बारहवें दिन राजा ने विपुल भोजन बनवा कर मित्र, ज्ञाति, राज्य-सेवक आदि के साथ खाते-खिलाते हुए आनन्द प्रमोद का उत्सव मनाया फिर उनका वस्त्राभूषणादि से सत्कार-सम्मान कर माता-पिता बोले कि हमारा यह बालक गज के तालु के समान कोमल व लाल है, इसलिये इसका नाम गजसुकुमाल होना चाहिये, ऐसा कह कर पुत्र का नाम गजसुकुमाल रखा।

तं वेरं सरइ, सरित्ता-सोमिल के उत्कृष्ट क्रोध का कारण शास्त्रकारों ने इन शब्दों में ''अणेगभवसय-सहस्ससंचियंकम्मं'' कहा है। तात्पर्य यह है कि लाखों भवों के पूर्व वैर का बदला लेने के लिये सोमिल को क्रोध उत्पन्न हुआ। पूर्व भव का वैर इस प्रकार कहा जाता है-

गजसुकुमाल का जीव पूर्व भव में एक राजा की रानी के रूप में था। उसकी सौतेली रानी के पुत्र होने से सौतेली रानी बहुत आहत हो गई, इस कारण उसे सौतेली रानी से बहुत द्वेष हो गया और चाहने लगी कि किसी भी तरह से उसका पुत्र मर जाय।

संयोग की बात है कि पुत्र के सिर में गुमड़ी हो गई और वह पीड़ा से छटपटाने लगा। विमाता ने कहा-मैं इस रोग का उपचार जानती हूँ, अभी ठीक कर देती हूँ। इस पर रानी ने अपने पुत्र को विमाता को दे दिया। उसने उड़द की मोटी रोटी गर्म करके बच्चे के सिर पर बाँध धी। बालक को भयंकर असह्य वेदना हुई। वेदना सहन न हो सकी और तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया। कालान्तर में बच्चे का जीव सोमिल, और विमाता का जीव गजसुकुमाल के रूप में उत्पन्न हुआ। इस पूर्व वैर को याद करके ही सोमिल को तीव्र क्रोध उत्पन्न हुआ और बदला चुकाने के लिये ध्यानस्थ मुनि के सिर पर मिट्टी की पाल बाँधकर खैर के धधकते अंगारे रखे।

कहा भी है-'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि'' अर्थात् कृत कर्मों को भोगे बिना मुक्ति नहीं होती।

जहा पण्णत्तीए गंगदत्ते-गंगदत्त श्रावक की तरह (जिसका वर्णन भगवती सूत्र शतक 16 उद्देशक 5 में उपलब्ध

है) मंकाई गाथापति शरीर को अलंकृत करके पैदल ही भगवान महावीर स्वामी के दर्शन करने गया। भगवान को वन्दना नमस्कार करके सेवा करने लगा। धर्म कथा सुनकर भगवान को वन्दन-नमस्कार करके सेवा करने लगा। धर्म कथा सुनकर भगवान को वन्दन-नमस्कार कर निवेदन किया कि मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, और अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर-कुटुम्ब का भार सौंपकर आपके पास दीक्षित होना चाहता हूँ। तदनन्तर घर लौटकर अपने मित्र, न्याति, गोत्र बन्धुओं को आमन्त्रित कर भोजन, पानादि से उनका सत्कार-सम्मान कर अपने दीक्षित होने का भाव प्रगट किया और अपने ज्येष्ठ पुत्र को घर का मुखिया बनाकर स्वयं दीक्षित हो गया।

अभिगयजीवाजीवे.........जाव विहरइ।

पुण्य, पाप के हेतु के ज्ञाता, कर्म आने के मार्ग एवं उसके निरोध, कर्मों के देशत:क्षय, निर्जरा, क्रिया अधिकरण, बन्ध और मोक्ष (कर्मों का सम्पूर्ण क्षय) आदि तत्त्वों के जानकार थे। वे विविध देवों की सहायता भी नहीं चाहते थे और उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से देव भी विचलित नहीं कर सकते थे। वे निर्ग्रन्थ प्रवचनों में नि:शंकित, नि:कांक्षित, निर्विचिकित्सक (धर्म करणी के फल से सन्देह रहित), धर्म के अर्थ को पूछकर, निश्चय कर, संशयरहित ग्रहण करते थे। उनकी नस-नस में धर्म रमा हुआ था। उनके लिये निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ और परमार्थ तथा बाकी अनर्थ था। दान देने के लिये उनके द्वार सदा खुले रहते थे। किसी के अन्त:पुर में जाने पर भी उनके प्रति अविश्वास नहीं होता था। ऐसे दृढ़धर्मी और प्रियधर्मी थे। वे बहुत से शीलव्रत, अणुव्रत, पौषधादि अनुष्ठान करते थे और साधु-साध्वियों को अशन-पान आदि 14 प्रकार की निर्दोष वस्तुओं का दान देते हुए विचरते थे। **(भगवती शतक 2 उद्देशक 5)**

परम्परा से श्रुत है कि अर्जुन ने 5 महीने 13 दिन में 1141 जीवों की हत्या की, यानी कुछ कम 6 महीने में हिंसा कर नवीन कर्म बाँधे, किन्तु 6 महीने की अल्पावधि में ही वे समस्त कर्मों को तोड़कर सिद्ध बुद्ध मुक्त हो गए।

श्री भगवती सूत्र शतक 5 उद्देशक 4 में अतिमुक्त कुमार का वर्णन इस प्रकार मिलता है-''भगवान महावीर स्वामी के अतिमुक्त नामक अणगार प्रकृति से भद्र यावत् विनीत थे। एक बार वर्षा होने के बाद रजोहरण व पात्र लेकर शौच निवृत्ति हेतु गए। वहाँ मार्ग में एक नाला बह रहा था, उन्होंने उस नाले के पानी को पाल बाँधकर रोक लिया और अपना पात्र पानी में छोड़कर ''मेरी नाव तिरे, मेरी नाव तिरे'' इस प्रकार वचन कहते हुए वहाँ खेलने लगे-

भजन-नाव तिरे, मारी नाव तिरे, यूँ मुख से शब्द उच्चारे।
साधा के मन शंका उपजी, किरिया लागे थारे हो,
एवन्ता मुनिवर, नाव तिराई.............

स्थविर मुनियों ने बाल मुनि की क्रीड़ा देखकर भगवान से आकर पूछा-भगवन्! अतिमुक्त मुनि कितने भव करके मुक्त होंगे? भगवान ने स्थविरों के मनोभाव जानकर फरमाया-अतिमुक्त प्रकृति का भद्र यावत् विनीत है, यह चरम शरीर है। (इसी भव में सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा) आप इसकी हीलना, निन्दा, गर्हा एवं अवमानना नहीं करें।

उसकी सहायता यावत् आहार पानी के द्वारा विनय पूर्वक वैयावच्च करो। स्थविर मुनियों ने भगवान को वन्दना कर नमस्कार किया एवं निर्देशानुसार अतिमुक्त कुमार श्रमण को अग्लान भाव से स्वीकार कर वैयावृत्य करने लगे।

आशय-प्रकृति के भद्र होने से एवं संयम समाचारी का बोध नहीं होने से ऐसा हुआ है। लेकिन ये चरम शरीरी जीव हैं, इसलिये आप अग्लान भाव से इनकी सेवा करो।

◆◆◆◆

परिशिष्ट 4

मुक्त–आत्माओं का विवरण

१. अवस्था द्वार (मुक्त आत्माएँ)

आयु के अनुसार		लिंगानुसार	
युवक	७५	पुरुष	५७
वृद्ध	१४	स्त्री	३३
बालक	१		
योग	९०	**योग**	९०

वैवाहिक स्थित्यनुसार

विवाहित साधु	५५
कुमार साधु	२
सधवा साध्वियाँ	२१
दीक्षित पति वाली	२
विधवा साध्वियाँ	१०
योग	**९०**

२. नगर द्वार

	साधु	साध्वियाँ
द्वारिका	३५	१०
राजगृह	६	२३
भद्दिलपुर	६	
काकंदी	२	
वाणिज्य ग्राम	२	
श्रावस्ती	२	
पोलासपुर	१	
वाराणसी	१	
साकेत नगर	२	
योग	**५७ +**	**३३ = ९०**

३. कुल द्वार

	साधु	साध्वियाँ
यादव कुल	३५	१०
श्रेणिक की रानियाँ		२३
नाग सुलसा के पुत्र	६	
राजा अक्षय	१	
विजय श्रीदेवी के पुत्र	१	
माली पुत्र	१	
गाथापति	१३	
योग	**५७ +**	**३३ = ९०**

४. शिष्य द्वार

	साधु	साध्वियाँ
भगवान नेमिनाथ	४१	
यक्षिणी		१०
भगवान महावीर स्वामी	१६	
चन्दना		२३
योग	**५७ +**	**३३ = ९०**

५. अध्ययन द्वार

	साधु	साध्वियाँ
समिति-गुप्ति	२	
११ अंग	३३	३३
१४ पूर्व	१२	
१२ अंग	१०	
योग	**५७ +**	**३३ = ९०**

६. संथारा द्वार

संथारा सहित साधु (एक मास)	५५
संथारा सहित साधु (१५ दिन)	१ अर्जुनमाली
साध्वियाँ	३३
संथारा रहित साधु	१ गजसुकुमाल
योग	**९०**

७. संयम पर्याय द्वार

वर्ष/दिन	**मोक्षगामी जीव संख्या**
एक दिन	१ (गजसुकुमाल)
छः मास	१ (अर्जुनमाली)
पाँच वर्ष	२
बारह वर्ष	१३
सोलह वर्ष	२३
बीस वर्ष : साधु	१२
साध्वी	२३
सताईस वर्ष	१
८ से १७ वर्ष	१०
बहुत वर्ष	४
योग	**९०**

८. प्रकीर्णक तप द्वार

तप	**मोक्षगामी जीव**
बारह भिक्षु प्रतिमा साधु	३२
गुणरत्न तप साधु	२३
साधु	२
साध्वियाँ	२३
रत्नावली साध्वियाँ	१
कनकावली साध्वियाँ	१
प्रकीर्णक तप साध्वियाँ	८
योग	**९०**

९. सिद्ध क्षेत्र द्वार

स्थान	मोक्षगामी जीव संख्या
श्मशान साधु	१ (गजसुकुमाल)
साधु	१ (अर्जुनमाली)
उपाश्रय में साध्वियाँ	३३
शत्रुञ्जय साधु	४०
विपुलगिरि साधु	१५
योग	**९०**

१०. अन्तगडदसा सूत्र के नगर आदि का वर्णन किस सूत्र में किस स्थान पर है ?

वर्ग	वर्ण्य-विषय	सूत्र
पहला	नगरी, उद्यान, राजा आदि	औपपातिक सूत्र
	आर्य सुधर्मा, जम्बू आदि	ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र
	रैवतक, नन्दन वन, सुरप्रिय	वण्हिदसा
	महाबल	भगवती सूत्र शतक ११ उद्देशक १
	अरिष्टनेमि समवसरण	ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र अध्ययन ५
	मेघकुमार	ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र अध्ययन १
	खंदक संन्यासी	भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशक १
तीसरा	गाथापति	उपासकदशांग अध्ययन १
	दृढ़ प्रतिज्ञ	राजप्रश्नीय ३ पांत में
	गौतम स्वामी	भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशक ५
	देवानन्दा	भगवतीसूत्र शतक ९ उद्देशक ३३
	अभय कुमार	ज्ञाता धर्मकथांग सूत्र अध्ययन १
	ब्राह्मण	भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशक १
छठा	गंगदत्त	भगवतीसूत्र शतक १६ उद्देशक ५
	श्रमणोपासक	भगवतीसूत्र शतक २ उद्देशक ५
	अभिषेक	भगवतीसूत्र शतक ११ उद्देशक ९
	कोणिक	औपपातिक सूत्र
	उदायन	भगवतीसूत्र शतक १३ उद्देशक ६
आठवाँ	तपश्चर्या जन्य शरीर	अनुत्तरोपपातिक वर्ग ३

परिशिष्ट 5

प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1. 'चामीगर पागारा' से क्या आशय समझना चाहिए?

उत्तर–चामीगर पागारा–स्वर्ण से निर्मित परकोट–जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के तीसरे वक्षस्कार में चक्रवर्ती भरतजी की राजधानी विनीता और अंतगड सूत्र में वासुदेव श्री कृष्णजी की राजधानी द्वारिका के चारों ओर स्वर्ण परकोट देवताओं द्वारा निर्मित बताया गया है। वैक्रिय पुद्गलों का परकोट इतनी लम्बी अवधि तक रहना शक्य नहीं है। औदारिक पुद्गलों के अंतर्गत जो सोना स्वामित्व रहित भू-भाग, भू-गर्भ में पड़ा रहता है, उसे लाकर परकोट निर्मित किया जाता है।

प्रश्न 2. सोमिल के लिए आया कि वह जिस दिशा से आया, उसी दिशा की ओर चला गया, इसका क्या आशय है?

उत्तर–मुख्य मार्ग

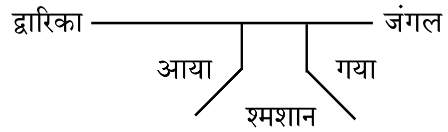

जंगल से आया, द्वारिका की ओर गया, यहाँ उसकी विवक्षा नहीं समझकर आम रास्ते से श्मशान के अंदर आने और वापस आम रास्ते की ओर जाने की दिशा समझनी चाहिए।

प्रश्न 3. निम्नांकित को स्पष्ट कीजिए-(अ) पुव्वाणुव्विं चरमाणे, (ब) गामाणुगामं दूइज्जमाणे, (स) सुहं सुहेणं विहरमाणे।

उत्तर–(अ) पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे–पूर्वानुपूर्वी–अनुयोग द्वार सूत्र में पूर्वानुपूर्वी आदि का विवेचन उपलब्ध है। चौबीस तीर्थङ्करों की पूर्वानुपूर्वी ऋषभ, अजित..... पार्श्व, महावीर के रूप में बताई गई है। वहाँ इसी क्रम से चली आ रही परिपाटी समझना। अर्थात् इस अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थङ्कर अथवा अनादि कालीन तीर्थङ्करों की परम्परा पाद विहार की ही रही है।

(ब) गामाणुगामं दूइज्जमाणे–विशिष्ट लब्धिधारी–आकाशगामिनी विद्या से, जंघाचरण–विद्याचरण आदि भी प्रसंगवश आकाश से सीधे जा सकते हैं, जैसे वायुयान। किंतु विहार का सामान्य क्रम थल पर चलने वाले वाहनों की भाँति ग्रामानुग्राम पैदल विहार करने का है।

(स) सुहं सुहेणं विहरमाणे–ठाणांग सूत्र के नवमें ठाणे में आया कि लगातार या निरंतर चलने से भी रोग उत्पन्न हो सकता है। इसलिए सुखे–सुखे विहार करने का उल्लेख आया। दूसरी अपेक्षा सुख–साता होने पर कल्प उपरांत कहीं नहीं ठहरना भी ध्वनित होता है। शरीर और संयम की बाधा न हो, इस प्रकार विचरण करना, शरीर भी स्वस्थ रहे और संयम भी निर्मल रहे, धर्मध्यान चलता रहे।

प्रश्न 4. दीक्षार्थी को दीक्षा लेने से पूर्व एक दिन के लिए राजा क्यों बनाया जाता था?

उत्तर–दीक्षा के लिए दृढ़ संकल्पित वैरागी को अब और रोक पाना शक्य नहीं, तब उसे राजा के रूप में देखने के

आंतरिक भावों से माता-पिता एक दिन के लिए राजा बनने का प्रस्ताव रखते हैं। मोहाधीन माता-पिता आज भी विरक्त-विरक्ता का शृङ्गार दुल्हे-दुल्हन से भी बढ़कर करते हैं। उनकी आँखों को तृप्ति मिलती है, मन आनन्दित होता है, साथ ही विरक्त की विरक्ति, मोह-विजय की दृढ़ भावना भी परिलक्षित हो जाती है।

प्रश्न 5. 'संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ' का क्या आशय है?

उत्तर–संयम के अभाव में भी तप होता है, जिसे बाल तप कहते हैं। लक्ष्य के अभाव में की गई साधना मूल सहित दु:खों का अंत नहीं कर सकती। लक्ष्य की ओर गतिशील होते ही संयमपूर्वक तप की साधना प्रारंभ हो जाती है। जहाँ भी संयम है, वहाँ सकाम निर्जरा अर्थात् तप की नियमा है। अस्तु संयमेन तपसा, संयमपूर्वक तप साधना आत्महितकारी है।

प्रश्न 6. कुलदेवी या कुलदेवता की सांसारिक कार्यों में सहायता प्राप्त करने से सम्यक्त्व में दोष लगता है अथवा नहीं?

उत्तर–कुलदेवी या कुलदेवता की सांसारिक कार्यों में सहायता प्राप्त करने में यद्यपि सम्यक्त्व में स्पष्ट रूप से कोई दोष नहीं बताया, तथापि यह प्रवृत्ति देव सहायता रूप होने से प्रशंसनीय एवं उचित नहीं कही जाती है। देवादि की सहायता नहीं चाहना, यह श्रावक की उच्च कोटि है। कई बार कमजोर श्रावकों की भक्ति धर्म से भी अधिक इन कुलदेवी आदि पर हो जाती है। इत्यादि कारणों से उसकी समकित शिथिल एवं नष्ट तक हो सकती है। जैसे औषधोपचार से असाता का उदय रूककर साता की उदीरणा हो जाती है, वैसे ही देव भी साता-असाता की उदीरणा में निमित्त बन सकते हैं। शरीर में रोगातंकों का प्रवेश भी करा सकते हैं एवं शरीर से रोगातंक निकाल भी सकते हैं। देव आराधना के लिए अट्ठम तप की आराधना करते समय कृष्ण एवं अभयकुमार के समकिती होने में बाधा नहीं आती है।

प्रश्न 7. सोमिल पर गजसुकुमाल मुनि को द्वेष नहीं आया, किंतु कृष्ण महाराज को द्वेष आ गया, इसका क्या कारण है?

उत्तर–गजसुकुमाल मुनि ने शरीरादि का राग छोड़ दिया था, इसलिए उन्हें सोमिल पर द्वेष नहीं आया, किंतु कृष्ण महाराज का गजसुकुमाल मुनि पर राग था, इसलिए सोमिल पर द्वेष जागृत हो गया।

प्रश्न 8. एक ही अंधकवृष्णि पिता और धारिणी माता के अठारह पुत्रों का वर्णन दो वर्गों में दिया गया है एवं सागर, समुद्र, अक्षोभ और अचल इन चार नामों में साम्य है। अत: जिज्ञासा होती है कि क्या ये सभी सहोदर भ्राता थे?

उत्तर–अंतगडदशा सूत्र के प्रथम एवं द्वितीय वर्ग के 18 ही अध्ययनों के लिए प्रकार की मान्याएँ प्रचलित हैं-1. श्रावक दलपतरायजी प्रमुख 'दोनों वर्गों' में सादृश्य होने से प्रथम वर्ग को दसों व्यक्तियों के अंधकवृष्णि के पुत्र और धारिणी रानी के अंगजात सहोदर भाई मानते हैं और दूसरे वर्ग के आठों कुमारों को प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन में वर्णित विष्णु (पाठांतर-वृष्णि) कुमार के पुत्र अर्थात् अंधकवृष्णि के पौत्र मानते हैं।

दूसरी मान्यता-पूज्य श्री जयमलजी महाराज प्रमुख प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन का नाम वृष्णिकुमार नहीं मानकर 'विष्णुकुमार' मानते हैं और द्वितीय वर्ग में वर्णित वृष्णि को अंधकवृष्णि मानकर अठारह ही कुमारों को सहोदर भाई मानते हैं। जैसा कि उनके द्वारा रचित बड़ी साधु वंदना में कहा है-

गौतमादिक कुँवर, सगा अठारह भ्रात।
सर्व अंधक विष्णु सुत, धारिणी ज्याँरी मात।।55।।

'अंधकवृष्णि राजा के 10 सहोदर पुत्र तो राजा बन जाने के कारण एवं बलदेव वासुदेव के वंश के होने के कारण दस दशार्ह के रूप में प्रसिद्ध हुए, शेष धारिणी आदि अनेक रानियों से अनेक पुत्र हुए-वे कुमार पद से ही दीक्षित हो गये। द्वितीय वर्ग में वर्णित आठ कुमार दसवें वृष्णि कुमार के पुत्र थे। (प्रथम वर्ग के दसवें अध्ययन विष्णु का कहीं-कहीं पर 'वृष्णि' पाठांतर भी मिलता है।) वृष्णि कुमार राजा नहीं बनने से उनको द्वितीय वर्ग में राजा नहीं बताया गया है। इस प्रकार दोनों वर्गों के अठारह कुमारों को सहोदर भाई नहीं मानने की तरफ ही ज्यादा झुकाव होता है।' बाकी तो विशिष्ट ज्ञानी कहे वही प्रमाण है।

प्रश्न 9. श्री कृष्ण ने द्वारिका नगरी के विनाश का कारण भगवान से क्यों पूछा?

उत्तर–तीन खण्ड के अधिपति श्री कृष्ण ने जब अपनी ही नगरी में निर्ग्रन्थ साधु, अपने ही छोटे-भाई और वह भी भगवान अरिष्टनेमि के अन्तेवासी की अकाल मृत्यु पर विचार किया तो उन्हें अपनी पुण्यवानी में मन्दता होती दिखाई दी। उन्होंने सोचा-इन दिनों जब मेरे भाई की यह दशा हो गई तो अगले दिनों मेरी तथा मेरी इस सुनहरी नगरी की और इस विशाल वैभव की क्या दशा होगी? अनुमान है-इन चिन्ताओं से प्रेरित होकर भगवान से द्वारिका के विनाश का कारण पूछा हो।

प्रश्न 10. सुरा, अग्नि एवं द्वैपायन ऋषि द्वारिका विनाश के कारण क्यों और कैसे बने?

उत्तर–द्वैपायन ऋषि ने अपने द्वारा द्वारिका के विनाश का भगवत् वचन सुना तो इस निमित्त से बचने के लिए नगरी के बाहर आश्रम में रहने लगा। श्रीकृष्ण ने सुरा (मदिरा) को भी नाश का कारण जानकर बाहर फिंकवा दिया। एक दिन कुछ यादवों को खेलते-खेलते प्यास लगी, वे पानी की तलाश में उसी आश्रम की तरफ आ गये तथा गड्ढों में भरी शराब पी ली, कुछ आगे बढ़ने पर द्वैपायन ऋषि ध्यान करता दिखाई दिया। नशे में उन्होंने मरे हुए सर्प को उठाकर द्वैपायन ऋषि पर डाल दिया तथा उन्हें खूब परेशान किया, तब क्रोधित होकर द्वैपायन ऋषि ने द्वारिका विनाश का निदान कर लिया।

श्रीकृष्ण एवं बलभद्र की अनुनय-विनय से उन दोनों को नहीं जलाने का वचन दिया। कृष्ण ने द्वारिका विनाश को बचाने का उपाय तप को समझकर घर-घर में आयंबिलादि तप करवाना आरम्भ करा दिया। द्वैपायन ऋषि अकाम निर्जरा के कारण मर कर अग्निकुमार जाति का देव बना। वह अपना पूर्व भव का उपयोग लगाकर क्रोधित हो गया, किन्तु तप के प्रभाव से बारह वर्ष तक द्वारिका को न जला सका।

द्वारिका में बारहवें वर्ष में तपाराधना बहुत मन्द हो गई। अन्त में तप का प्रभाव न रहने से संवर्त्तक वायु चलाना शुरू कर दिया। जिससे आस-पास में तृण, काष्ठादि का हवा से संयोग होने से द्वारिका तेजी से जलने लगी। छह मास तक जलती रही। निकट में समुद्र का अपार जल भी उसे बुझाने के काम न आ सका।

प्रश्न 11. अर्हन्त अरिष्टनेमि ने फरमाया कि सभी वासुदेव निदान कृत होते हैं। अतः वे सामायिक संयम आदि व्रताराधन की क्रियाएँ आचरित नहीं कर सकते, हे भंते! निदान किसे कहते हैं? वह कितने प्रकार का है एवं उसके क्या-क्या फल होते हैं?

उत्तर–निदान एक पारिभाषिक शब्द है। जब मोक्ष मार्ग का साधक अपने जीवन भर की तपस्या का फल "मुझे अमुक प्रकार की सांसारिक ऋद्धि मिले" ऐसी चाह-इच्छा करता है तो उसे निदान कहते हैं। अर्थात् "तप के उपलक्ष्य में भौतिक ऋद्धि प्राप्त करने का संकल्प" निदान है। दूसरे शब्दों में निदान, हाथी के मूल्य वाली वस्तु को एक कोड़ी में बेच देना है।

निदान कल्याण-साधना का बाधक है। जब तक उसकी पूर्ति नहीं होती तब तक मोक्ष प्राप्ति तो क्या सम्यक्त्व मिलना भी दुर्लभ है। वह महा इच्छा वाला होने से महारम्भी, अधर्मी होता है। जिससे संसार में भटकता है।

दशाश्रुतस्कन्ध में निदान करने के नौ रूप बतलाये हैं–जो इस प्रकार हैं:–

1. कोई साधु किसी समृद्धिशाली पुरुष (चक्रवर्ती) को देखकर उसकी ऋद्धि प्राप्त करने के लिये निदान करता है।
2. कोई साध्वी किसी ऋद्धिवन्त स्त्री (श्री देवी) को देखकर उसके सुख प्राप्ति हेतु निदान करती है।
3. कोई साधु पुरुषपना दु:खदायी है, अत: स्त्री बनने के लिये निदान करता है।
4. कोई साध्वी स्त्रीपने की कठिनाई को देखकर पुरुष के सुखों का भोग करने के लिये निदान करती है।
5. कोई मनुष्य के काम भोगों को अध्रुव, अशाश्वत व अनित्य समझकर देवरूप में उत्पन्न होने तथा दैवीय सुख भोगने के लिये निदान करते हैं।
6. देव भव में अपनी देवी को वश में करके या वैक्रिय रूप बना कर सुख भोगने के लिये निदान करना।
7. देव भव में अपनी देवी के साथ सुख भोगने के लिये निदान करना।
8. अगले जन्म में श्रावक बनने हेतु निदान करना।
9. अगले जन्म में साधु बनने हेतु निदान करना।

प्रथम चार निदानों वाला जीव केवली प्ररूपित धर्म नहीं सुन सकता, क्योंकि इनका फल पाप रूप होता है तथा नरक में दु:ख भोगना पड़ता है। पाँचवें निदान वाला जीव धर्म श्रवण कर सकता है किन्तु दुर्लभ बोधि होता है। छट्ठे निदान वाला जीव जिन धर्म को सुनकर, समझकर भी अन्य धर्म में रुचि रखता है। सातवें निदान वाला, दर्शन श्रावक एवं आठवें निदान वाला, श्रावक हो सकता है; परन्तु संयम अंगीकार नहीं कर पाता। इसी तरह साधु निदान वाला संयमी होकर भी यथाख्यात चारित्र को प्राप्त न कर सकने के कारण सिद्ध–बुद्ध और मुक्त नहीं हो सकता।

प्रश्न 12. भिक्षु प्रतिमा कौन धारण कर सकता है?

उत्तर–प्रवचन सारोद्धार के 67वें द्वार करण सत्तरि के अंतर्गत भिक्षु की बारह प्रतिमाओं का वर्णन हुआ है। व्याख्या साहित्य के आधार से प्राय: प्राय: भिक्षु की बारह प्रतिमा की आराधना के लिए पूर्वों का ज्ञान व 20 वर्ष की संयम पर्याय की अनिवार्यता अंतगड़दसा सूत्र के विवेचन, प्रश्नोत्तर, दशाश्रुतस्कंध की सातवीं दशा के विवेचन, तैंतीस बोल के बारहवें बोल के विवेचन में देखने को मिलती है। जैन संस्कृति रक्षक संघ सैलाना से प्रकाशित भगवती सूत्र भाग–7 के पृष्ठ 25 पर "भिक्षु प्रतिमा लगभग 30 वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले (शायद मुद्रण की गलती हो) और पूर्वधर आदि विशेषता वाले साधु ही स्वीकार कर सकते हैं" ऐसा लिखा है। युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म.सा. द्वारा सम्पादित दशाश्रुतस्कंध की 7वीं दशा में पृष्ठ 64 पर "20 वर्ष की संयम साधना, 29 वर्ष की आयु, जघन्य 9वें पूर्व की तीसरी वस्तु का ज्ञान आवश्यक है" ऐसा लिखा है। अन्यत्र भी ऐसे ही कथन देखने को मिलते हैं। परिहार विशुद्धि तप, जिनकल्प आदि के आराधन में जघन्य 9वें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु व उत्कृष्ट दस पूर्व के ज्ञान का स्पष्टोल्लेख भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 (परिहार विशुद्धि के लिए) विशेषावश्यक भाष्य (जिनकल्प के लिए) में वर्णित है, वैसा स्पष्ट विधान भिक्षु प्रतिमा के लिए आगमों में देखने को नहीं मिलता। इसके विपरीत आगम के अनेक स्थल, पूर्वों के ज्ञान या 20 वर्ष की पर्याय की अनिवार्यता का खण्डन करते हैं। जो इस प्रकार हैं–

1. ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन 1 मेघकुमारजी, सूत्र 34 (सुत्तागमे पृष्ठ 1101) सामाइयमाइयाणि एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

सूत्र 37 (पृष्ठ 1109) सामाइयमाइयाहि एक्कारस अंगाइ अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं दुवालस वरिसाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता।

सूत्र 35 (पृष्ठ 1102) तएणं से मेहे अणगारे बारस भिक्खु पडिमाओ सम्मं काएणं फासेत्ता..... इन तीन सूत्रों से सुस्पष्ट है कि (1) 11 अंगों का अध्ययन (2) 12 वर्ष की संयम-यात्रा (3) भिक्षु की बाहर प्रतिमाओं की सम्यक् आराधना।

2. ज्ञाताधर्मकथांग अध्ययन 8 मल्ली भगवती, सूत्र 72 (पृष्ठ 1145) पूर्व भव में महाबल आदि 7 कुमारों ने महाविदेह क्षेत्र में दीक्षा ली।

तएणं से महब्बले जाव महया इड्ढीए पव्वइए एक्कारसअंगाइं बहूहिं चउत्थ......।

सूत्र 72 (पृष्ठ 1146) तएणं से महब्बल पामोक्खा सत्त अणगारा मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव एगराइयं भि. उव.।

महाविदेह क्षेत्र में ग्यारह अंग का अध्ययन करने वाले महाबल प्रमुख उन सात अणगारों ने भिक्षु प्रतिमा की सम्यक् आराधना की।

3. अंतगड़दसाओ (पृष्ठ 1316) प्रथम वर्ग, प्रथम अध्ययन सूत्र 2 पृष्ठ 1316 एक्कारस अंगाइं... सूत्र 2 (पृष्ठ 1317) तहा बारस भिक्खुपडिमाओ उवसंपज्जित्ताणं....बारस वरिसाइं परियाए।

गौतम कुमार ने 12 वर्ष संयम, ग्यारह अंग का अध्ययन करते हुए बारह भिक्षु प्रतिमा की आराधना की। शेष 9 अध्ययन भी इसी प्रकार, दूसरे वर्ग के 8 अध्ययन में संयम पर्याय 16 वर्ष की है।

4. अंतगड़ वर्ग 6 अध्याय 1 सूत्र 12 (पृष्ठ 1332) सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ सेसं जहा खंदगस्स......सोलस वासाइं.....

मकाई अणगार 11 अंग 16 वर्ष संयम (खंधकजी की भोलावण) (खंधकजी की 12 भिक्षु प्रतिमा की आराधना अंतिम बिंदु में) अर्जुन अणगार को छोड़ 15 ही अध्ययन में भोलावण है।

5. भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 खंधकजी

सूत्र 92 (पृष्ठ 451) मासियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ता....... (पृष्ठ 462) मासियं भिक्खुपडिमं अहासुत्तं.....आराहेत्ता।

सूत्र 94 (पृष्ठ 464) सामाइयमाइयाहि एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता 12 वर्ष संयम 11 अंग के साथ भिक्षु प्रतिमा आराधना।

महाविदेह क्षेत्र, मध्य के 22 तीर्थङ्कर अथवा अंतिम तीर्थङ्कर सभी के शासन में 11 अंगों का अध्ययन व 20 वर्ष से कम संयम पर्याय में भिक्षु प्रतिमा की आराधना स्पष्ट कर रही है कि भिक्षु प्रतिमा के लिए परिहार विशुद्धि तप के समान 20 वर्ष की संयम पर्याय व 9वें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु के ज्ञान की अनिवार्यता नहीं है।

जो यह कहा जाता है कि जो आगम व्यवहारी है, इस प्रकार की आज्ञा दे सकते हैं। वह भी ठीक नहीं क्योंकि आगम व्यवहारी में केवलज्ञानी, मन:पर्यवज्ञानी , अवधि ज्ञानी के साथ 14 पूर्वी, 10 पूर्वी व 9 पूर्वी भी सम्मिलित हैं। जब पूर्व वाले ही प्रतिमा ले सकते हैं, तो यह भी स्पष्ट ही है कि प्रतिमा आराधना के समय टीकाकारों (व्याख्याकारों) द्वारा आगम व्यवहारी होना माना ही गया है-वो अनुज्ञा प्रदान करते हैं। तो ग्यारह अंग के अध्ययन वाले व 20 वर्ष से कम संयम पर्याय वाले प्रतिमा आराधना कर सकते हैं।

अपवाद मार्ग क्वचिद् कदाचित् हो सकता है-अंतगड़दसा 3/3 में गजसुकुमालजी द्वारा सीधे बारहवीं प्रतिमा अंगीकार करना अपवाद मार्ग हो सकता है-पर सारे उदाहरण अपवाद मार्ग के नहीं हो सकते। आगम में एक भी उदाहरण पूर्वधरों की प्रतिमा का नहीं है।

प्रश्न 13. भिक्षु प्रतिमा आराधना के क्या-क्या नियम होते हैं?

उत्तर–प्रतिमाओं के पालन का विस्तृत वर्णन दशाश्रुत स्कन्ध की सातवीं दशा में है। पालन के मुख्य नियम इस प्रकार हैं–

1. पहली प्रतिमा का धारक साधु एक माह तक एक दत्ति अन्न की तथा एक दत्ति पानी की प्रतिदिन लेता है। (दत्ति = एक साथ, धार खण्डित हुए बिना, जितना पात्र में पड़े)
2. यह दत्ति एक व्यक्ति के विभाग में आये हुए भोजन से ली जाती है। गर्भवती या छोटे बच्चे की माँ के लिये बनाया गया भोजन वह नहीं लेते। दुग्धपान छुड़वा कर भिक्षा देने वाली स्त्री से अथवा आसन्न-प्रसवा स्त्री से उसको उठाकर भोजन नहीं लेते। जिसके दोनों पैर देहली के भीतर हों या बाहर हों, उससे भी आहार नहीं लेते।
3. प्रतिमाधारी साधु छः प्रकार से भिक्षा ग्रहण करे–(अ) पेटी के आकार–सन्दूक के चारों कोनों के आकार से, (ब) अर्धपेटी–दो कोनों के आकार से, (स) गो मूत्र के आकार–एक घर इधर से दूसरा घर सामने के आगे से, (द) पतंगे के आकार से–एक घर फरस कर बीच-बीच में घर छोड़कर भिक्षा लेना, (य) शंखावर्त्त–गोल आकार से (र) गतप्रत्यागत–जाते हुए करे तो आते हुए नहीं तथा आते हुए करे तो जाते हुए नहीं।
4. भिक्षाचरी के लिए दिन के आदि, मध्य और अन्त इन तीन भागों में से किसी एक भाग में जाता है।
5. शरीर की शुश्रूषा का त्याग करे, शरीर की ममता से रहित हो तथा देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग समभाव से सहन करे।
6. परिचित स्थान पर एक रात्रि तथा अपरिचित स्थान पर दो रात्रि ठहर सकते हैं।
7. प्रतिमाधारी चार कारण से बोलते हैं–1. याचना करते, 2. मार्ग पूछते, 3. आज्ञा प्राप्त करते, 4. प्रश्न का उत्तर देते समय।
8. तीन स्थान में निवास करे–1. बाग–बगीचा, 2. श्मशानछत्री, 3. वृक्ष के नीचे।
9. तीन प्रकार की शय्या ले सकते हैं–1. पृथ्वी, 2. शिलापट्ट, 3. काष्ठ का पट्ट।
10. प्रतिमाधारी साधक पाँव से काँटा, आँख से धूल–तृण अपने हाथ से नहीं निकाले।
11. जहाँ सूर्यास्त हो जाय वहाँ से एक कदम भी आगे विहार नहीं करे, सूर्योदय के पश्चात् विहार करे।
12. हाथी, घोड़ा, सिंह आदि हिंसक जानवर आने पर भयभीत होकर मार्ग नहीं छोड़े। किन्तु उनसे कोई जानवर डरता हो तो रास्ता छोड़ देवे। मकान में आग लग जाये और स्त्री आदि आ जावे तो भय से बाहर नहीं निकले।
13. अशुचि निवारण एवं भोजन के पश्चात् हाथ–मुँह आदि धोने के अतिरिक्त, हाथ, पाँव, दाँत, आँख, मुख आदि नहीं धोवे।

प्रश्न 14. सूत्र में बारह भिक्षु प्रतिमाओं का क्रमशः नियमानुसार पालन करने का विधान है तो श्री गजसुकुमाल मुनि को दीक्षा लेने के पहले दिन ही बारहवीं प्रतिमा अंगीकार करने की आज्ञा कैसे दी गई?

उत्तर–सूत्रों के विधान के अनुसार प्रतिमाओं को वहन करने की आज्ञा साधक के ज्ञान, मानसिक व शारीरिक बल को देखकर अनुक्रम से पालन करने को दी जानी चाहिये। जैसा कि भगवती सूत्र शतक 2 उद्देशक 1 में स्कन्ध अणगार के वर्णन में है। यह व्यवहार मार्ग है, और इसका अनुसरण होना ही चाहिये। परन्तु यह परिपाटी आगम व्यवहारी एवं केवलज्ञानियों के लिये लागू नहीं होती है। वे जैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव देखते हैं, वैसी आज्ञा दे सकते हैं। उनके लिये

निश्चय पहले और व्यवहार बाद में है। श्री गजसुकुमाल अणगार को आज्ञा देने वाले त्रिकाल-ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थङ्कर प्रभु थे। इसलिये उनके लिये सूत्र का विधान लागू नहीं होता।

प्रश्न 15. द्वारिका नगरी का निर्माण कुबेर की मति से हुआ था, तो क्या वह नगरी वैक्रिय पुद्गलों से बनाई गयी थी?

उत्तर–शास्त्रकारों ने वर्णन किया है कि द्वारिका की रचना कुबेरदेव की बुद्धि से हुई थी। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह नगरी वैक्रिय पुद्गलों से बनाई गयी थी। क्योंकि वैक्रिय का तात्पर्य है नाना प्रकार के अनेक रूप धारण करना, जो नगरी के वर्णन में नहीं मिलता। नगरी के निर्माण से नष्ट होने तक उसमें विशेष परिवर्तन का उल्लेख नहीं है। वैक्रिय पुद्गलों की स्थिति अल्प होती है, वे जलाये भी नहीं जा सकते।

ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे के उद्देशक 3 में बताया गया है कि चारों शरीर जीव सहगत होते हैं, अर्थात् ये जीव से भिन्न नहीं पाये जाते। केवल औदारिक ही ऐसा शरीर है जो बिना जीव के मिलता और दिखाई देता है। संसार में जितने भी जीव या अजीव के पुद्गल दिखाई देते हैं वे सब औदारिक शरीर या उसके अवशेष हैं। अत: स्पष्ट हुआ कि द्वारिका देव द्वारा औदारिक पुद्गलों से बनाई गई थी। औदारिक पुद्गल होने से ही वह देव द्वारा जलाकर नष्ट कर दी गई थी।

प्रश्न 16. क्या छप्पन करोड़ यादव द्वारिका नगरी में ही बसते थे?

उत्तर–आगमकारों ने द्वारिका का वर्णन करते हुए अन्तगड़ सूत्र के प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में लिखा है-प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन करोड़ कुमार, उग्रसेन आदि सोलह हजार राजा थे। कृष्णवासुदेव सम्पूर्ण आधे भारत में राज्य करते थे, अत: छप्पन करोड़ यादव पूरे आधे भारत में होना सम्भव है।

प्रश्न 17. साधुओं को राजपिण्ड लेना निषिद्ध है, ऐसी दशा में मुनिराजों ने देवकी महारानी के यहाँ से सिंह केशरी मोदक कैसे ग्रहण किये?

उत्तर–राज पिण्ड न लेने की विधि प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के साधुओं के लिये है, मध्य के 22 तीर्थङ्करों के साधुओं के लिये नहीं (भगवती शतक 26 उद्देशक 6-7)। देवकी महारानी के यहाँ सिंह केशरी मोदक लाने वाले मुनिराज 22वें तीर्थङ्कर के समय के साधु थे। अत: उनके द्वारा राजपिण्ड ग्रहण करना कल्प की ऐच्छिकता है।

प्रश्न 18. श्री कृष्ण जैसे विनीत पुत्र अपनी माता को चरण-वन्दन के लिए छह-छह माह से जाते थे, इसका क्या कारण है?

उत्तर–श्री कृष्ण के पिता वसुदेव का उनके पूर्व भव में किये हुए निदान के कारण 72,000 (बहत्तर हजार) कन्याओं ने वरण किया था। अत: श्रीकृष्ण के कुल बहत्तर हजार माताएँ थी। वे प्रतिदिन 400 मातओं के चरण वन्दन के लिए जाते थे। नित्य 400 माताओं को वन्दना करने पर 72,000 माताओं की छ: मास में वन्दना पूरी होती थी। अत: देवकी महारानी के चरण वन्दना के लिए भी श्रीकृष्ण को छ: मास लग जाते थे।

प्रश्न 19. प्रतिदिन 400 माताओं की वन्दना कैसे सम्भव है? उसमें कितना समय लगता होगा?

उत्तर–वे माताएँ एक प्रासाद में रहती होंगी और उन्हें कृष्ण सामूहिक सिर झुकाकर वन्दन कर लेते होंगे। इस प्रकार यह कार्य अल्प समय में ही हो जाता होगा। जैसे श्री सुधर्मा स्वामी आदि के साथ विचरने वाले 500 मुनियों की वन्दना अल्प समय में सम्भव है।

प्रश्न 20. श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में यह ज्ञात हो जाने के पश्चात् भी-कि आगामी चौबीसी में वे बारहवें तीर्थङ्कर बनेंगे, (किन्तु) फिर भी किसी साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ने उन्हें वन्दना की हो, ऐसा उल्लेख क्यों नहीं ?

उत्तर–जैन धर्म में निक्षेप मुख्य हैं। भाव निक्षेप जिसमें मिले, उसी नाम, स्थापना एवं द्रव्य निक्षेप वालों को वन्दनीय माना जाता है। श्रीकृष्ण के तीर्थङ्कर नाम कर्म का बन्ध अवश्य हो चुका था, किन्तु उस समय तीर्थङ्कर का भाव निक्षेप नहीं होने से किसी ने वन्दन–नमस्कार नहीं किया।

प्रश्न 21. देवकी का भविष्य कहने वाले अतिमुक्त कुमार श्रमण कौन से थे? क्या ये अन्तगड़ सूत्र में वर्णित अतिमुक्तकुमार ही थे? यदि नहीं तो वे किस तीर्थङ्कर के समय में हुए? बतलाइये।

उत्तर–देवकी को पोलासपुर नगरी में भविष्य कहने वाले अतिमुक्त कुमार, श्रमण भगवान महावीर के शिष्य व अन्तगड़ सूत्र में वर्णित अतिमुक्त मुनि (एवन्ता मुनि) से भिन्न हैं। ये इक्कीसवें तीर्थङ्कर भगवान नेमिनाथ के शासनवर्ती हैं। अतिमुक्त मुनि कंसराजा के छोटे भाई थे। जब उग्रसेन को कारावास में डालकर कंस स्वयं मथुरा का राजा बन गया तो अतिमुक्त कुमार को वैराग्य हो गया, उसने दीक्षा ग्रहण कर ली, और उग्र तप करने लगे। दीक्षित होकर उन्होंने मासखमण की तपस्या की। एक बार मथुरा में विचरण करते हुए और भिक्षार्थ घूमते हुए उन्होंने कंस के घर में प्रवेश किया। कंस की पत्नी जीवयशा उस समय अपनी ननद देवकी का सिर गूँथ रही थी। अतिमुक्त श्रमण के आने पर जीवयशा उनके जाने के मार्ग पर खड़ी रही, और देवर मुनि से हँसी करती हुई बोली–महाराज! तुम्हारा भाई राज्य करता है और तुम झोली लिये घर–घर माँगते फिरते हो, इससे हमको बड़ी लज्जा होती है। छोड़ो इस वेश को और राज्य में आ जाओ। इस प्रकार अधिक समय तक हँसी करने पर मुनि से नहीं सहा गया। उन्होंने रुष्ट हो जीवयशा से कहा–क्यों इतना गर्व करती हो? जिसके तुम बाल गूँथ रही हो उसी बालिका का सातवाँ पुत्र तुम्हें विधवा बनायेगा ? वह तुम्हारे पति और पिता दोनों का संहारक होगा। (अभी तुम्हारे पुण्य थोड़े शेष हैं। अत: गर्व मत करो।)

देवकी से कहा कि तुम समान वय, रंग, जाति, कुल वाले छ: पुत्रों को जन्म दोगी। तुम्हारे समान भरत क्षेत्र में अन्य कोई दूसरी माता नहीं होगी। ऐसा कहकर मुनि चले गये। छ: मुनियों को देखकर देवकी को अतिमुक्त मुनि की बात याद आ गई। इस प्रकार ये अतिमुक्त भगवान महावीर के शासनवर्ती एवन्ता मुनि से भिन्न हैं।

प्रश्न 22. समाज में कई संघाड़े एक घर में एक ही बार गोचरी करते हैं, उस दिन दूसरी-तीसरी बार नहीं जाते हैं। इसके लिये अन्तगड़ सूत्र में देवकी के यहाँ छह मुनिओं के तीन संघाड़े के जाने के प्रसंग को आधार बताया जाता है, कि यदि आज की तरह एक ही घर में दूसरी-तीसरी बार जाने की रीति होती तो देवकी यह नहीं कहती कि श्रीकृष्ण की द्वारिका नगरी में क्या श्रमण निर्ग्रन्थों को भक्तपान प्राप्त नहीं हो पाता, जिससे कि उन्हीं कुलों में दूसरी-तीसरी बार प्रवेश करते हैं?

उत्तर–1. शास्त्र के ये वचन चरितानुवाद के हैं, इसमें भगवान अरिष्टनेमि के मुनियों की चर्या का परिचय प्राप्त होता है एवं उस समय के मुनि कब और किस प्रकार अलग–अलग संघाड़े से भिक्षा करते थे, यह बताया गया है। इसमें श्रमण निर्ग्रन्थ को एक घर में एक ही बार गोचरी जाना, दूसरी–तीसरी बार नहीं, ऐसा विधि–निषेध नहीं है।

2. दशवैकालिक सूत्र और आचारांग में भिक्षा–विधि का उल्लेख है, उसमें एक घर में एक बार ही भिक्षा जाना,

दूसरी बार नहीं, ऐसा विधान नहीं है। यदि एक घर में दूसरी बार जाना कल्प विरुद्ध होता तो अनाचीर्ण में नित्य पिण्ड की तरह द्वितीय पिण्ड को भी अनाचीर्ण कहते। किन्तु वैसा उल्लेख नहीं है, जैसे कि-उद्देसियं कीयगडं नियागमभिहडाणि य।'' दशवैकालिक-अध्ययन 3 गाथा 2।

3. प्राचीन समय में धृति एवं संहनन बल वाले श्रमण निर्ग्रन्थ त्याग-तप की भावना से एक बार ही तीसरे प्रहर में आहार कर स्वाध्याय-ध्यान में लीन हो जाते थे, परन्तु जब से अलग-अलग गोचरी न कर सामूहिक करना और दूसरी-तीसरी बार आहार करना प्रारम्भ हुआ, तब से गोचरी जाने का काल भी दूसरी-तीसरी बार हो गया हो, ऐसा सम्भव है।

4. तपस्वी सन्तों के तप-पारणक में भिक्षा के लिये दूसरी तीसरी बार जाने का उल्लेख भी आगमों में मिलता है।

5. परम्परा की बातों को परम्परा के नाम से ही कहें तो किसी की लघुता प्रकट न हो। हर परम्परा के सन्त आत्मार्थी और त्यागी रहे हैं। वे आहार-प्राप्ति के लिये मर्यादा की उपेक्षा करें ऐसा नहीं माना जा सकता। ऐसी स्थिति में श्रावक-श्राविकाओं को नियम के लिये प्रेरित करना और शास्त्र के अनुवाद में किसी की न्यूनता बताना उचित नहीं है। अत: नहीं चाहते हुए भी स्पष्टीकरण के रूप में इतना लिखना पड़ रहा है, जो ज्ञातव्य है।

प्रश्न 23. जैसे अपने पुत्र भगवान महावीर स्वामी को देखकर 82 रात्रि तक अपने पेट में रखने वाली माता देवानन्दा ब्राह्मणी के स्तनों में दूध की धारा निकल आई। उसी तरह माता देवकी को अपने पुत्रों को पहली बार मुनि वेश में देखते ही दूध का बहाव क्यों नहीं आया?

उत्तर-83वीं रात्रि में जब गर्भ संहरण हुआ तब मेरे चौदह स्वप्न त्रिशला ने हरे, ऐसा स्वप्न देवानन्दा को आया था, इस कारण तथा अन्य भी कुछ कारणों से देवानन्दा को यह अनुमान था कि यह वर्द्धमान मेरा ही पुत्र होना चाहिये, अत: उसे दूध का बहाव आया किन्तु अनीकसेन आदि ये मुनि मेरे पुत्र होने चाहिये, ऐसा देवकी को कोई अनुमान नहीं था, अपितु वह तो पोलासपुर में अतिमुक्तकुमार मुनि द्वारा कहे वचनों को ही झूठा मानने लगी थी, अत: उसे अपने पुत्रों को पहली बार देखकर भी बहाव आना सम्भव नहीं था क्योंकि मातृपन के भाव जागृत नहीं हुए थे।

प्रश्न 24. मेरे सहोदर छोटा भाई होगा, यह बात तो देवकी को कृष्ण ने कही, किन्तु उसके दीक्षित होने की बात क्यों नहीं कही?

उत्तर-जिस भावना से देवकी ने पुत्र की अभिलाषा की। उसमें कहीं यह बात चिन्ता रूप बनकर रंग में भंग करने वाली न बन जाय, इस विवेक से सम्भव है कृष्ण ने देवकी को उनके दीक्षित होने की बात नहीं की।

प्रश्न 25. सोमिल ने गजसुकुमाल मुनि को कष्ट देकर अपने पूर्वभव का बदला लिया, इससे उसे नये कर्मों का बन्ध हुआ या नहीं?

उत्तर-बदले में कष्ट देना प्रतिहिंसा है। हिंसा चाहे हिंसा हो या प्रतिहिंसा हो, दोनों ही कर्मों का बन्ध करती हैं। प्रतिरक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा भी हिंसा है। (अन्यथा श्रावक को इसका आगार नहीं रखना पड़ता) उससे भी मन्द पापकर्म का बन्ध होता है, तो प्रतिहिंसा के लिये की जाने वाली हिंसा से नये कर्म क्यों न बंधेंगे। प्रतिरक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा राजनीति में उचित मानी जाती है, परन्तु प्रतिहिंसा तो राजनीति में भी दोष युक्त मानी गई है। जैसे-किसी बालक ने किसी अन्य बालक को अपशब्द कहे हों या किसी अन्यायी ने पुत्र की हत्या कर दी हो, ऐसी अवस्था में यदि अन्य बालक अपशब्द कहने वाले को पुन: अपशब्द कहता है या मृत पुत्र का पिता उस अन्यायी की हत्या करता है तो वह भी दण्डनीय समझा जाता है। अतएव गजसुकुमाल की प्रतिहिंसा करने वाले सोमिल को भी पाप बँधा, यह मानना चाहिये।

यद्यपि गजसुकुमाल की उन्हें दिये गये परीषह से मुक्ति हो गई, किन्तु फिर भी प्रतिरोध एवं बदले की भावना के कारण उसे तो पाप कर्म का बन्ध हुआ ही।

प्रश्न 26. यदि सोमिल गजसुकुमाल की प्रतिहिंसा न करता तो गजसुकुमाल मोक्ष कैसे जाते ?

उत्तर–कभी–कभी ऐसा हो जाता है कि जिसकी हिंसा की, वही, भावी जन्मों में कर्म उदीरणा का निमित्त बन जाता है, पर यह कोई शाश्वत नियम नहीं है कि, सर्वदा ऐसा ही हो।

जैसे किसी मुक्तिगामी जीव ने अन्तिम जन्म में अनन्त काय की हिंसा की हो तो वे सभी जीव तो वापिस उस जीव से बदला ले नहीं पाते, फिर भी वह मुक्तिगामी जीव अनन्तकाय की हिंसा आदि से बन्धे सभी पापकर्म क्षय करके मोक्ष में जाता ही है। अथवा जैसे अर्जुन माली ने कई जीवों की हिंसा की, वे सभी स्त्री पुरुष न जाने कहाँ पर थे, पर अर्जुन माली तो अपने कर्म का क्षय कर मोक्ष पधार गये।

प्रश्न 27. नेमिनाथ भगवान के छः मुनि तीन संघाड़े बनाकर अलग-अलग भिक्षा के लिए गये, ऐसा क्यों ? क्या पूर्व समय में सारे श्रमणों की एक ही गोचरी नहीं होती थी ?

उत्तर–छः मुनियों द्वारा तीन संघाड़े बनाकर भिक्षार्थ जाने के उल्लेख से प्रतीत होता है कि पूर्व समय में सामूहिक गोचरी की अपेक्षा इस प्रकार प्रत्येक संघाड़े की भिन्न–भिन्न गोचरी ही अधिक हुआ करती थी। उसमें समय भी कम लगता और आहार की गवेषणा भी आसानी से होती। संभव है इसीलिये भगवान नेमिनाथ के शासन में छः मुनियों के अलग–अलग संघाड़े किये गये हों। दूसरी इसके पीछे यह भी भावना रही हुई है कि हर मुनि ज्ञान–ध्यान की तरह भिक्षा को भी अपना प्रधान कर्त्तव्य समझे और उसमें संकोच अनुभव नहीं करे। इसलिए स्वयं गौतमस्वामी भी बेले के पारणे में खुद जाकर भिक्षा लाते, ऐसा शास्त्रीय लेख है। छोटा–बड़ा हर साधु भिक्षा लाना अपना कर्त्तव्य समझता था। आज की सामाजिकता में जनसम्पर्क और विद्यार्थी मुनियों का अभ्यास, बड़े साधुओं का संघ–संचालन एवं आगतजनों को ज्ञान–दान सरलता से हो, इसलिए सामूहिक भिक्षा होने लगी है। लाभ की तरह इसमें कुछ हानि भी है। शहर में अधिक साधुओं की गोचरी में 2–2 घण्टे सहज पूरे हो जाते हैं, ज्ञान–ध्यान के लिए समय निकालना कठिन हो जाता है। फिर पूर्व समय की तरह आज उन्मुक्त कुलों की भिक्षा भी नहीं होती। प्रायः समाज के माने हुए घरों में ही जाना होता है। अतः व्यवस्था के लिए सबकी एक गोचरी कर दी गई। यदि अलग–अलग संघाड़े की भिक्षा रखते, तो कौन किन घरों में जावे, यह व्यवस्था भारी हो जाती। फिर विभिन्न गण और सम्प्रदायों के हो जाने पर एक संघाड़े से दूसरे संघाड़े का भेद प्रतीत न हो और गण का बाहर में एक रूप दिखे। इसलिए भी सामूहिक गोचरी का चलन आवश्यक प्रतीत हो गया है।

प्रश्न 28. शास्त्र में उच्च, नीच और मध्यम कुल की भिक्षा का वर्णन आता है, इसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर–यहाँ जाति की दृष्टि से ऊँच–नीच कुल का मतलब नहीं है। व्यवहार में जो भी घृणित या निषिद्ध कुल है, उनमें भिक्षा ग्रहण करने का तो पहले ही शास्त्र में निषेध है। आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध और निशीथ इसके साक्षी हैं। अतः यहाँ उच्च–नीच और मध्यम कुल भवन, प्रतिष्ठा और संपदा की दृष्टि से समझने चाहिए। प्रासादवासी उच्च, मँझली स्थिति वाले मध्यम और झोंपड़ी में रहने वाले तथा परिवार से छोटे कुल वाले नीच कुल के समझने चाहिए। शास्त्र में भिक्षा विधि बतलाते हुए कहा है–**'नीय कुल मइक्कम्म, ऊसढं नाभिधारए।'** छोटे कुल को लाँघकर साधु ऊँचे कुल–भवन

में न जाए। यहाँ नीच और उच्छित से नीच व उच्च, ये दो ही कुल बतलाये हैं। इसलिए नीच से निषिद्ध कुल समझना ठीक नहीं। निर्ग्रन्थ मुनि छोटे-बड़े सभी घरों में निस्संकोच भिक्षा करते थे। कारण वे अप्रतिबद्ध विहारी थे। इस प्रकार सामूहिक भिक्षा से अज्ञात जनों में धर्म का सहज प्रचार हो जाता था। धर्म प्रचार के लिए आज भिक्षा में उदार दृष्टि अपनाने की आवश्यकता है। आचाराङ्ग सूत्र के अनुसार जैन साधु के लिए बारह कुल की गोचरी बताई गयी है।

वे कुल इस प्रकार हैं-(1) उग्रकुल, (2) भोगकुल, (3) राजन्यकुल, (4) क्षत्रिय कुल, (5) इक्ष्वाकु कुल, (6) हरिवंश कुल, (7) एष्य (गोपाल) कुल, (8) ग्राम रक्षक कुल, (9) गंडक नापित कुल, (10) कुट्टाक कुल, (11) वर्द्धकी कुल, (12) बुक्कस (तन्तुवाय) कुल। इस प्रकार के अन्य भी अदुंगुछनीय कुल में जैन मुनि भिक्षा ले सकते हैं। (आचाराङ्ग श्रुतस्कन्ध 2, अध्ययन 1 उद्देशक 2, सूत्र 11)

प्रश्न 29. देवकी के पुत्रों का हरिणैगमेषी द्वारा संहरण क्यों किया गया?

उत्तर–देवकी ने पूर्व जन्म में अपनी जेठानी के छ: रत्न चुराये थे। उसके बदले में इसके छ: पुत्र चुराये गये। उसके कृत कर्म का यह भोग था। कथा इस प्रकार है-

सुलसा और देवकी पूर्व जन्म में देवरानी और जेठानी थी। एक बार देवकी ने सुलसा के 6 रत्न चुराकर भय वश किसी चूहे के बिल में डाल दिये। बिल में छुपाने का मतलब यह था कि खोजने पर कदाचित् मिल जाय, तो मेरी बदनामी नहीं हो और चूहों ने इधर-उधर कर दिया समझकर सन्तोष कर लिया जायगा। कदाचित् उनको नहीं मिले, तो कुछ दिनों के बाद मैं इन्हें अपना बना सकूँगी। संयोगवश वे रत्न देवरानी को मिल गये और उनकी नजरों में चूहा चोर समझा गया। कहा जाता है कि वह चूहा हरिणेगमेषी देव बना और पूर्वभव में देवरानी सुलसा के रत्न चुराने के कर्म के फलस्वरूप देवकी के पुत्रों का हरण हुआ। चूहे पर चोरी का दोष मँढा जाने के कारण 'हरिणेगमेषी' देव ने उन छ: पुत्रों का हरणकर उन्हें सुलसा के पास पहुँचाया। 'हरिणेगमेषी' देव ही चूहे का जीव कहा गया है। देवकी ने जेठानी के रूप में रत्न चुराये। अत: उसको पुत्र रत्न की चोरी का फल भोगना पड़ा।

प्रश्न 30. अंतगड़दशा में वर्णित अतिमुक्तकुमार और भगवती सूत्रानुसार पानी में पात्र तिराने वाले एवन्ता मुनि एक हैं या अन्य। एक हैं तो उनकी संक्षिप्त घटना क्या है और किस शास्त्र में है?

उत्तर–पात्र तिराने वाले एवन्ता कुमार भगवान महावीर के शिष्य थे। वे अंतगड़ में वर्णित अतिमुक्त मुनि से भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं। घटना इस प्रकार है-

वर्षा हो चुकने पर जब अतिमुक्त मुनि बगल में छोटा-सा रजोहरण और हाथ में पात्र लिये स्थविरों के साथ बाहर भूमिका गये हुए थे, तब जल्दी उठ जाने से उनको खड़ा रहना पड़ा, छोटे नाले को देखकर उन्हें बचपन की स्मृतियाँ हो आयी और उस समय वहाँ बहते हुए छोटे नाले को मिट्टी की पाल बाँधकर रोका। पात्र को पानी में डाला और उसे नाव बनाकर खेलने लगे। साथी स्थविर सन्तों ने जब उसे पात्र तिराते देखा तब उनको शंका हुई। भगवान से पूछा-''भगवान! आपका शिष्य अतिमुक्तकुमार श्रमण कितने भव करके सिद्ध होगा?'' भगवान ने उत्तर में स्पष्ट कहा-''आर्यो! मेरा अन्तेवासी अतिमुक्त मुनि इसी भव से सिद्ध होगा। इसकी तुम अवहेलना, निन्दा मत करो, किन्तु इसकी अग्लान भाव से वैयावृत्त्य करो।'' (भगवती शतक 5 उद्देशक 4)

प्रश्न 31. अतिमुक्त (एवंता) कुमार ने जब दीक्षा ली तब कितने वर्ष के थे और इतने लघु वय के बालक को भगवान महावीर ने दीक्षा कैसे दी?

उत्तर–टीकाकारों के मतानुसार एवंता कुमार दीक्षा के समय लगभग सात वर्ष के थे। सूत्रकार ने उनकी दीक्षा के एक-दो दिन पहले का चारित्र वर्णन करते हुए बताया है कि वे लड़के-लड़कियों के साथ खेल रहे थे। इससे टीकाकार के मत को समर्थन ही मिलता है क्योंकि बड़ी वय के लड़कों का लड़कियों के साथ खेलना उचित नहीं जँचता।

जब एवंता ने माता-पिता से दीक्षा की आज्ञा माँगी, तब उन्होंने उसको कहा-''हे पुत्र! अभी तुम बच्चे हो, नासमझ हो।'' माता-पिता के द्वारा कहे गये इस प्रकार के वचनों से भी एवंता के दीक्षा के समय की अवस्था छोटी ही सिद्ध होती है।

जब एवंता ने माता-पिता से आज्ञा माँगी तब माता-पिता को मूर्च्छा नहीं आयी, यदि आज्ञा माँगने के समय वे बालक न होते, समझदार होते तो माता को मूर्च्छा आ जाती। जैसा कि अन्य माताओं के अपने पुत्र द्वारा आज्ञा माँगने पर मूर्च्छा आ गयी थी। इस प्रसंग से भी एवंता की अवस्था दीक्षा के समय छोटी ही सिद्ध होती है।

श्री गौतम स्वामी को गोचरी के लिए घूमते देखकर एवंता ने बिना वंदन किये ही उनसे पूछा था कि आप कौन हैं, और क्यों घूम रहे हैं? एवंता के इस प्रश्न से भी वे बालक ही सिद्ध होते हैं। अन्यथा यदि वे बड़े होते, तो विशेष सम्भव यही था कि वे वंदन करते और ऐसा प्रश्न नहीं पूछते। इस प्रकार उनकी अवस्था सात वर्ष या कुछ आगे-पीछे हो सकती है। पर थे वे आठ वर्ष से कम।

भगवान ने आगम व्यवहारी होने से उनको लघु वय में भी योग्य समझा। अत: संयम प्रदान किया। केवली के लिए इस प्रकार का नियम बंधन कारक नहीं होता।

प्रश्न 32. गुरुदेव! आप कहते हैं कि मनुष्य अपने कर्म के अनुसार ही सुख-दु:ख का भोग करता है। किन्तु उसमें कोई न्यूनाधिक नहीं कर सकता। फिर श्रीकृष्ण ने देवता का आराधन क्यों किया? देव से माँग क्यों की? क्या देव किसी को पुत्रादि दे सकते हैं?

उत्तर–यह बात सही है कि जीव अपने कर्मानुसार ही सुख-दु:ख भोगता है। बिना कर्म के कोई किसी को न सुख देता है और न दु:ख ही। भगवती सूत्र में स्पष्ट कहा है-**'जीवा सयं कडं दुक्खं वेदेइ, नो पर कडं, नो तदुभयं कडं, दुक्खं वेदेइ।'** गौतम! जीव स्वकृत ही दु:ख का वेदन करता है, परकृत या उभयकृत दु:ख का भोग नहीं करता। संसार के अन्य पदार्थ सुख-दु:ख के वेदन में निमित्त अवश्य बनते हैं। जैसे कि पिता, पुत्र के लिए और पुत्र, पिता के लिए। पति, पत्नी के लिए और पत्नी, पति के लिए, स्वामी, सेवक के लिए और सेवक, स्वामी के लिए, सुखदायी प्रतीत होते हैं, परन्तु सही स्थिति यह है कि यहाँ भी पिता पुत्रादि मात्र निमित्त हैं। सुख-दु:ख तो अपने कर्म के अनुसार ही होता है। संसार में विविध मणि-रत्नादि मूल्यवान पदार्थ और रोगोपहारी औषधियाँ विद्यमान हैं। फिर भी पुण्यहीन जीवों की दरिद्रता और बीमारी नहीं छूटती। इससे समझना चाहिए कि उनके कर्म अनुकूल नहीं हैं। असंख्य देवी-देवों का स्वामी इन्द्र भी स्थिति पूर्ण होने पर देवलोक की ऋद्धि और इन्द्रासन छोड़ जाता है और इन्द्र-इन्द्राणी को भी परस्पर वियोग का दु:ख देखना पड़ता है। जब एक सुरपति भी कर्म-फल का भोग करता है और वह स्वयं अपना दु:ख नहीं टाल सकता, तो दूसरों के दु:ख कैसे टाल सकता है?

जैसे वैद्य से रोग और हाकिम से मामला सुलझाने में मदद ली जा सकती है। ऐसे ही कृष्ण का अपने लघु भाई के लिए अष्टम तप करना भी अपने तपोबल से देव को आकृष्ट कर तप की महिमा प्रकट करता है।

देव का यह उत्तर कि तुम्हारे भाई होगा। यह भी कर्म फल की सूचना मात्र बतला रहा है। देव यदि पुत्र दे सकता, तो हरिणेगमेषी भी श्रीकृष्ण को भाई देने की बात कहता और श्रीकृष्ण भी देव द्वारा यह कहने पर कि वह तरुणवय पाकर भगवान नेमिनाथ के पास दीक्षित हो जायगा, उसे रोकने की बात कहते, लेकिन श्रीकृष्ण जानते थे कि हमारा संयोग उसके

साथ इतना ही रहने वाला है। देव किसी के भोग फल को न्यूनाधिक नहीं कर सकता। इसलिए उन्होंने देव से गजसुकुमाल दीक्षित न होने पावे, ऐसी माँग नहीं की।

आचारांग सूत्र में स्पष्ट कहा है–**'पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि।'** पुरुषों! तुम ही तुम्हारे मित्र हो, बाहर मित्र कहाँ ढूँढ रहे हो। मनुष्य को अपने बल पर भरोसा नहीं है। इसलिए वह पर-बल का सहारा लेता-फिरता है, परन्तु होता वही है जो कर्मानुसार होने वाला है। खण्ड साधना करते हुए भरत महाराज का जब चिलातों के अनार्य खण्ड में जाना हुआ तो अनार्यों ने मुकाबला किया। पराजित होने पर कुलदेव का स्मरण किया। उन्होंने आकर कहा कि ये चक्रवर्ती है। इनको हराना हमारा काम नहीं है। हम तुम्हारे प्रीत्यर्थ कुछ उपद्रव करते हैं। सात दिन तक देव मूसलाधर बरसते रहे, किन्तु भरत के मन में विचार आते ही जब सेवक देव उपस्थित हुए, तो म्लेच्छों के कुल देव क्षमा माँगकर चले गये। चिलातों को भरत की शरण स्वीकार करनी पड़ी। अत: कृष्ण का देवाराधन माता के सन्तोषार्थ ही समझना चाहिए।

प्रश्न 33. देव वास्तव में कुछ नहीं देते। तब सुलसा को देवकी के पुत्र कैसे दिये? क्या यहाँ भी कर्म ही कारण है?

उत्तर–सुलसा को देवकी के पुत्र देने की बात में भी रहस्य है। सुलसा और देवकी के बीच कर्म का कर्ज था एवं देव उस बीच में आरोपी माना गया था। अत: उसने देवकी के पुत्र लेकर सुलसा को पहुँचा दिये। यदि सुलसा का लेना नहीं होता तो देव यह परिवर्तन भी नहीं कर पाता। सुलसा ने पुरुषार्थ किया उसके फलस्वरूप उसके पूर्व जन्म के रत्न हरिणेगमेषी के निमित्त से मिल गये। इसमें भी उसके कर्मानुसार फल भोग में देव, मात्र निमित्त बना है। मुख्य कारण कर्म ही है। मूल से यदि देव में कुछ देने की शक्ति होती, तो सुलसा के मृत पुत्रों को भी जीवित कर देता, किन्तु वैसा नहीं कर सका।

प्रश्न 34. सम्यग्दृष्टि श्रावक के लिए धार्मिक दृष्टि से देवाराधन करना और उसके लिए कोई तपाराधन करना उचित है क्या?

उत्तर–धार्मिक दृष्टि से सम्यग्दृष्टि, देवाधिदेव अरिहंत को ही आराध्य मानता है। अन्य देव संसारी हैं। वे प्रमोद भाव से देखने योग्य हैं। दृढ़धर्मी व्रती श्रावक संसार के संकट में भी उनकी सहायता नहीं चाहता और उनको वंदन नहीं करता। अरणक श्रावक ने प्राणान्त संकट में जहाज उलटने की स्थिति आने पर भी कोई देवाराधन नहीं किया। उल्टे उसकी दृढ़ता से प्रसन्न होकर देव दिव्य कुण्डल की जोड़ी प्रदान कर गया। अंतगड़ का सुदर्शन श्रावक भी मुदग्र-पाणि यक्ष के सम्मुख सागारी अनशन कर ध्यान में स्थित हो गया, पर किसी देव की सहायता ग्रहण नहीं की।

सम्यग्दृष्टि का दृढ़ निश्चय होता है कि असंख्य देवी-देवों का स्वामी इन्द्र जिनका चरण सेवक है, उन देवाधिदेव अरिहन्त की उपासना करने वाले को अन्य किसकी आराधना शेष रहती है। चिन्तामणि को पाकर भी फिर कोई काँच के लिए भटके, तो उसे बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न 35. चक्रवर्ती खण्ड साधन करते समय देवाराधन के लिए अष्टम तप करते हैं और श्रावकों के लिए कुलदेव के पूजा की बात कही जाती है तो क्या वह ठीक नहीं है। उसका मर्म क्या है?

उत्तर–चक्रवर्ती छ: खण्ड साधना के समय 13 तेले करते हैं। यह खण्ड साधन की व्यवस्था है। इसमें किया गया अष्टम तप भी धार्मिक तप नहीं है। जैसे मण्डलपति राजाओं को शस्त्र बल और सैन्य बल से प्रभावित कर झुकाया जाता है, ऐसे ही अमुक खण्ड या देव को साधना में अष्टम तप के बल से आकृष्ट एवं प्रभावित किया जाता है। यह उनका शाश्वत व्यवहार है। सम्यग्दृष्टि उन देवों को वंदनीय नहीं मानता।

श्रावकों के नित्य कर्म में कहीं भी कुल देव की पूजा का विधान नहीं मिलता, बल्कि आनन्द आदि श्रावकों ने तो यह स्पष्ट कर दिया है कि मुझे अरिहन्त देव के सिवाय अन्य किसी देव को वन्दन करना नहीं कल्पता। जैसा कि 'नन्नत्थ अरिहंते वा अरिहंत-चेइयाणिवा।' अधिक से अधिक वे कुल देव को मित्र-भाव से देख सकते हैं। सम्यग्दृष्टि या शासन रक्षक देवों का भी मित्र भाव से ही स्मरण किया जाता है। आराध्य या वंदनीय तो अरिहंत देव ही हैं। सम्यग्दृष्टि को अधिक से अधिक अरिहंत देव का ही स्मरण-भजन और आराधन करना चाहिए। इनके चरणों में अन्य सब देव आ जाते हैं। इनकी आराधना से धर्म का धर्म और अशुभ कर्म की निर्जरा से भौतिक लाभ भी अनायास ही मिल जाता है। यह अपने ही सत् पुरुषार्थ का फल है। कविवर विनयचन्द्र ने कहा है:-

आगम साख सुणी छे एहवी, जो जिन सेवक हो सोभागी। आशा पूरे तेनी देवता, चोसठ इन्द्रादिक सोय हो सो.। श्रावक में यह दृढ़ विश्वास होने के कारण ही वह किसी सरागी देव की भक्ति नहीं करता। हाँ, कौटुम्बिक शान्ति के लिए वह किसी कुलाचार को कुलाचार के रूप में करे, यह दूसरी बात है। यहाँ कुटुम्ब की पराधीनता है, फिर भी वह किसी कुल देव की पूजा को पुण्य या धर्म नहीं मानता। इस प्रकार के सहायक को अपनी दुर्बलता मानता है।

सम्यग्दृष्टि धार्मिक-दृष्टि से केवल अरिहंत देव को ही आराध्य मानता है। अन्य सरागी देव को धर्म बुद्धि से मानना, पूजना या उनके लिए कोई तप करना सम्यग्दृष्टि उचित नहीं मानता। व्यवहार में जो चक्रवर्ती के खण्ड-साधन के तेले और भिन्न देव के स्मरणार्थ कोणिक या अभयकुमार का तप भी अविरत दशा में ही सम्भव होता है क्योंकि व्रती सम्यग्दृष्टि देव या दानव का भी सहयोग नहीं चाहता। उसके लिए शास्त्र में असहेज्ज कहा है (कुल परम्परा से किसी के घर में देवपूजा चालू भी हो, तो व्रती श्रावक उसको केवल कुलाचार ही मानता एवं समझता है।) मिथ्यात्वी देवी-देव की मान्यता तो गलत है ही, पर श्रावक सम्यग्दृष्टि देव को भी आराध्य बुद्धि से नहीं पूजता। अभयकुमार ने माता के दोहद को पूरा करने के लिए तप किया, पौषधशाला में ब्रह्मचारी होकर देव का स्मरण करता रहा, फिर भी सकाम होने से उन्होंने इसको धर्म करणी नहीं समझा। यह स्वार्थतप या सकाम तप ही माना गया। सकाम तप में भी धूप-दीप आदि का प्रयोग नहीं करके केवल तप और शान्ति के साथ में मन में चिन्तन करते हुये देव को वश में करना, उस समय की खास ध्यान देने योग्य बात है।

व्रती साधक तो निष्काम तप करते हैं। उन्हें सहज ही तपोबल से कुछ लब्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और बिना चाहे देव भी उनकी सेवा करने लगते हैं, जैसे हरिकेशी की तिन्दुकयक्ष सेवा करता रहा। कामदेव के चरणों में यक्ष नतमस्तक हुआ।

सम्यग्दृष्टि जन्म-मरण के बन्धन काटने के लिए तप-नियम करता है। देवी, देव स्वयं जन्म-मरण के चक्र में पड़े हुए हैं। हर्ष-शोक, संयोग-वियोग और सुख-दु:ख उनको भी भोगने पड़ते हैं, तब भक्ति करने वालों को ये दु:ख मुक्त क्या कर सकेंगे। अत: सम्यग्दृष्टि वीतराग परमात्मा को ही आराध्य मानता है क्योंकि वे हर्ष-शोक एवं दु:ख से मुक्त हो चुके हैं।

प्रश्न 36. महारानी देवकी जब भगवान नेमीनाथ को वंदन करने को गई, तब समवसरण में उसके खड़ी-खड़ी सेवा करने का उल्लेख है। तो क्या पूर्व समय में स्त्रियाँ समवसरण में नहीं बैठती थी? साध्वियों के लिए भी ऐसा कोई वर्णन है क्या?

उत्तर-शास्त्र में जहाँ-जहाँ भी किसी राणी या श्रेष्ठी पत्नी के सेवा का उल्लेख मिलता है, वहाँ स्पष्ट रूप से 'ठिया चेव पज्जुवासइ' लिखा गया है। जैसे मृगावती और देवानन्दा के वर्णन में शास्त्रकार कहते हैं--'उदायणं रायं पुरओ कट्टु ठिइया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी.........विवरणं पज्जुवासइ।' भ. 9-6।। दोनों जगह साफ लिखा है कि मृगावती महाराज उदायन को और देवानन्दा ऋषभदत्त ब्राह्मण को आगे स्थित करके खड़ी-खड़ी ही सेवा करने लगी। 'स्थित्वा'

शब्द का अर्थ 'बैठना' करना, शब्द शास्त्र और टीकाकार दोनों की परम्परा से मेल नहीं खाता। टीकाकार ने स्थित का अर्थ किया है। 'ठिया चेवत्ति ऊर्ध्वस्थानस्थितैव अनुपदिष्टे त्यर्थ:।' अर्थात् ऊँचे आसन से स्थित अर्थात् खड़ी बिना बैठे ही सेवा करने लगी। फिर देशना के बाद ऋषभदत्त के लिए तो 'उट्ठाए उट्ठेइ' पद आता है। परन्तु देवानन्दा जब भगवान की प्रार्थना करती है उस समय केवल-'सोच्चा निस्सम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं' पाठ आता है। इससे भी यही प्रमाणित होता है कि देवानन्दा खड़ी थी। इसलिए उसके लिये खड़े होकर बोलने का नहीं कहा गया।

क्या ऐसा भी कहीं विधान है कि स्त्रियाँ समवसरण में बैठे नहीं। शास्त्र में बैठने का कहीं निषेध किया हो, ऐसा विधिसूत्र तो नहीं मिलता पर जितने उदाहरण श्राविकाओं के आये हैं, उन सब में खड़े रहने का ही उल्लेख है। मालूम होता है, उस समय कोई भी श्राविका देशना श्रवण या सेवा के लिए समवसरण में बैठती नहीं थी। साध्वियों के लिए खड़े रहने या बैठने का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

प्रश्न 37. 'ठिच्चा' पद से समवसरण में स्त्रियों के नहीं बैठने का टीकाकार आचार्यों ने जैसा अर्थ किया है, वैसा मानने का कोई खास कारण है या पुरुषों से स्त्रियों की हीनता बताने को उनके साथ पक्षपात बरता गया है?

उत्तर-समवसरण में स्त्रियों के नहीं बैठने के उल्लेख में हमारी दृष्टि से निम्न कारण हो सकते हैं-

(1) प्रधान कारण ब्रह्मचर्य-गुप्ति और स्त्रियों का विनयातिरेक प्रतीत होता है। खुली भूमि पर पुरुषों के बैठने के स्थान पर स्त्रियों का बैठना ब्रह्मचर्य-गुप्ति में बाधक माना गया है। अत: समवसरण में स्त्रियाँ नहीं बैठती हैं।

(2) साध्वियों की तरह समवसरण में स्त्रियों के बैठने का स्थान स्वतन्त्र नहीं होता। कुछ तो अपने पति के साथ आती, वे पति के पीछे ही खड़ी रहती और कुछ अलग आने वाली भी अपने परिवार के साथ यथोचित स्थान में खड़ी रह जाती।

(3) साधुओं के यहाँ स्त्रियों का संसर्ग अधिक नहीं बढ़े। इसलिए भी उनके लिए उपदेश सुनकर खड़े-खड़े ही विदा हो जाने की परिपाटी रखी गयी हो।

(4) फिर भगवान और सन्तों के आदरार्थ भी महिला-वर्ग ने खड़ा रहना ही स्वीकार किया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि पुरुषों की अपेक्षा स्त्री-जाति अधिक भक्ति प्रधान होती है। अत: उन्होंने समवसरण में सम्पूर्ण देशना तक खड़ी रहकर सुनने की ही परिपाटी अपनाई हो।

जो भी हो इतना सुनिश्चित है कि समवसरण में स्त्रियाँ नहीं बैठें, इसके पीछे स्त्रियों की हीनता बताने जैसा कोई दृष्टिकोण नहीं है और न यह बलात् लादी हुई व्यवस्था है। यह तो स्त्री एवं पुरुष दोनों के आध्यात्मिक हित को लक्ष्य में रखकर की गयी व्यवस्था है।

प्रश्न 38. गजसुकुमाल मुनि को ध्यान स्थित देखकर सोमिल को इतना द्वेष क्यों हो गया जिससे कि उसने गजसुकुमाल के सिर पर अङ्गारे रख दिये?

उत्तर-सोमिल का गजसुकुमाल के साथ पूर्वजन्म का वैर था। लाखों भव पहले की बात है। गजसुकुमाल पूर्वभव में एक राजा के यहाँ रानी का जीव था। राजा की दो रानियों में एक के पुत्र था और दूसरी को नहीं। दूसरी रानी प्रथम रानी के पुत्र पर बड़ा द्वेष रखा करती। उसने सोचा कि इसी पुत्र के कारण मेरा मान घटा है और सहपत्नी का मान बढ़ा है, तो किसी तरह यह मर जाय तो अच्छा। एक बार जब रानी के पुत्र को सिर में वेदना हुई और वह वेदना से विकल होकर छटपटाने लगा

तो दूसरी रानी प्रसन्न हुई। उसने अवसर का फायदा उठाने के लिए पहली रानी से कहा–''अच्छा लाओ, मैं इस प्रकार के दर्द को मिटाने का उपाय जानती हूँ। अभी इसको ठीक कर देती हूँ।'' भद्र स्वभाव की होने से पहली रानी ने अपना पुत्र दूसरी को सम्भला दिया। रानी ने उड़द के आटे की रोटी गर्म करके बच्चे के सिर पर बाँध दी। बालक की वेदना तीव्र हो गयी। वह इस बढ़ती हुई वेदना को छटपटाकर अल्पकाल में ही काल कर गया। सोमिल उस बालक का जीव था। गजसुकुमाल के जीव ने दूसरी रानी के रूप में बालक के सिर पर द्वेष से गर्म रोटी बाँधी थी। इसलिए सोमिल द्वारा इनके सिर पर बदला लेने के लिए अंगारे रखे गये। यह है दोनों के वैर का रूप। कहा जाता है कि यह 99 लाख पूर्व भव की बात है। कर्म का स्वभाव है कि कितना ही काल क्यों न हो जाय, वह अपने देनदार को पकड़ ही लेता है। इसलिये कहा है कि **'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।'** बिना भोगे कृत कर्म से मुक्ति नहीं होती।

प्रश्न 39. सोमिल द्वारा गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखने से मुनि की असमय मृत्यु हुई। इस पर प्रश्न होता है कि चरम शरीरी होने से मुनि निरूपक्रम आयु वाले थे, फिर उनको यह उपक्रम कैसे लगा? क्या यह अकाल मरण नहीं है?

उत्तर–गजसुकुमाल मुनि का अकाल–मरण व्यवहार दृष्टि से हो सकता है और व्यवहार दृष्टि से ही उपक्रम लगने का भी प्रश्न है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। अन्य कर्म की तरह आयु–कर्म का बन्ध भी स्थिति और प्रदेश आदि भेद से छ: प्रकार का होता है। जब स्थिति की अपेक्षा प्रदेश संचय अधिक होता है, तब उन दलिकों को बराबर करने के लिए निमित्त की आवश्यकता होती है, उसे उपक्रम कहते हैं। उपक्रम का अर्थ समीप ले जाना है अर्थात् जिस निमित्त से प्रदेश संचय स्थिति के निकट पहुँचे या बराबर हो, वह उपक्रम है।

निरूपक्रम आयु वालों को भी अग्नि, जल और शस्त्र प्रहार आदि के निमित्त मिल सकते हैं। किन्तु इनसे उनके जीवनकाल में कोई घटबढ़ नहीं होती। निरूपक्रम आयु वालों के लिए ये सब कारण मात्र असाता वृद्धि के ही हैं। वासुदेव श्रीकृष्ण का जराकुमार के बाण द्वारा प्राणान्त हुआ, फिर भी नियतकाल में होने से उसको आयु का टूटना या अकाल मरण नहीं कह सकते।

दूसरा यह भी है कि जिसका जिस कारण से मरण निश्चित हो गया है, उसका उस निमित्त से मरण होना काल मरण ही कहा जायेगा, अकाल मरण नहीं। अत: इसको सैद्धान्तिक बाधा नहीं समझनी चाहिए।

प्रश्न 40. श्रीकृष्ण के समय में भिन्न जाति के लड़के-लड़कियों में भी क्या विवाह सम्बन्ध होता था? ब्राह्मण पुत्री सोमा को गजसुकुमाल के लिए कन्याओं के अन्त:पुर में रखने का क्या अभिप्राय है?

उत्तर–प्राचीन समय के उदाहरणों को देखने से ज्ञात होता है कि उस समय जातीय बन्धन इतने कठोर नहीं थे अथवा तो उसमें खास व्यक्ति–विशेष या योग्यता को अपवाद माना जाता था। चक्रवर्ती के लिए विद्याधर कन्या से पाणिग्रहण का उल्लेख मिलता है। राजाओं को अन्य कुल की सुलक्षण कन्या से भी प्रीति हो जाती, तो उनके लिए वह अयोग्य नहीं माना जाता। सम्भव है श्रीकृष्ण द्वारा सोमा का चयन भी इसी आधार से किया गया हो। अधिकता से उस समय क्षत्रिय पुत्रों का राज कन्याओं से और श्रेष्ठी पुत्रों का समान कुल वाली श्रेष्ठी कन्याओं से ही पाणिग्रहण का उल्लेख आता है। पाणिग्रहण के समय समान कुल–शील वाली कन्याओं से ऐसा उल्लेख मिलता है, जो प्राय: सजातीय में ही सम्भव हो सकता है। कुलशील का महत्त्व होने से उस समय जातीय बन्धनों को सम्भव है इतना कड़क नहीं किया गया हो। परन्तु जब

साधारण लोग रूप पर मुग्ध होकर हीनकुलों के साथ भी मोह भावना से सम्बन्ध करने लगे, तब उस पर कड़ाई से प्रतिबन्ध करना आवश्यक हो गया हो। उचित समझ कर विक्रम राजा ने जातीय व्यवस्था का निर्धारण किया। जो भी हो स्वेच्छाचार से कुलशील का बिना विचार किये इधर-उधर संबंध करना अहितकर है। पूर्व समय में न स्वेच्छाचार इतना बढ़ा था और न जातीय बंधन का ही आग्रह था। योग्यता और प्रेम से एक जाति का अन्य जाति में भी संबंध होता था। समान शील और संस्कार का प्राय: ध्यान रखा जाता था।

प्रश्न 41. द्वारिका का विनाश क्यों हुआ और नगरी के विनाश में निमित्त न बनूँ, इस विचार से द्वैपायन ऋषि द्वारिका नगर छोड़कर बहुत समय तक दूर ही घूमते रहे। फिर उसको विनाश में निमित्त क्यों माना?

उत्तर–सर्व विदित बात है कि संसार के दृश्यमान् पदार्थ सब आगे-पीछे नाशवान हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्ण ने देव-निर्मित द्वारिका को भी नाशवान समझकर नाश के कारणों को जानना चाहा। भगवान ने द्वैपायन के द्वारा जब द्वारिका नगरी का नाश बतलाया तब श्रीकृष्ण ने नगरी के संरक्षण हेतु यह घोषणा करवाई कि कोई भी द्वारिकावासी यदि नगरी का कुशल चाहता है, तो मद्य-माँस का सेवन नहीं करे। और नश्वर तन से लाभ लेने तथा अशुभ कर्म को काटने के लिए शक्तिपूर्वक कुछ न कुछ तप नियम का साधन अवश्य करे। मद्य के कारण द्वारिका का दाह होगा। इसलिए नगरी का सारा मद्य इकट्ठा करवा कर जंगल में फिंकवा दिया गया। द्वैपायन ऋषि वहीं नगरी के बाहर आश्रम में कठोर तप कर रहा था। बहुत दिनों के पश्चात् एक दिन यादव कुमार वन-विहार को निकले और जंगल में भूल से रहे हुए मद्य घट को देखकर पान कर गये। मद्य का स्वभाव सहज ही भाव भुलाने का होता है, यादव कुमार नशे में उन्मत्त होकर नगर की ओर चले तो रास्ते में द्वैपायन ऋषि को देखकर क्रुद्ध होकर वे कंकर-पत्थर फेंकने लगे और बोले यही बेचारा द्वैपायन हमारी द्वारिका को जलायेगा। द्वैपायन ने कुमारों द्वारा पुन:-पुन: किये गये अपमान और अवहेलना वचन से क्रुद्ध होकर निदान कर लिया कि मेरी तपस्या का फल हो, तो मैं यादव सहित द्वारिका को जलाने वाला बनूँ। कुमारों का नशा उतरा, तो उन्होंने श्रीकृष्ण से आकर सारी बात कह सुनायी। कृष्ण भी बलदेव के साथ द्वैपायन के पास गये और उनको शान्त करते हुए निदान नहीं करने का निवेदन करने लगे। द्वैपायन ने कहा-''मैंने निर्णय कर लिया है। केवल तुम दोनों भाइयों को नहीं मारूँगा। यह वचन देता हूँ।''

अन्त समय में आयु पूर्ण कर वह द्वैपायन अग्निकुमार देव के रूप में उत्पन्न हुआ और वैरानुबन्ध के कारण नगरी पर द्वेष करने लगा। किन्तु नगरी में आयंबिल तप चल रहा था। कोई उपवास, कोई बेला तो कोई आयंबिल जरूर करता। तप के प्रभाव से इधर-उधर चक्कर काटने पर भी देव का जोर नहीं चला और पूरे ग्यारह वर्ष बीत गये। जब लोगों ने देखा कि अब तो समय टल गया है, बस मन-माने मद्य पीने लगे और तप का साधन बन्द कर दिया। देव अपने वैर वसूली का समय देख रहा था। ज्योंही तपस्या बंद हुई भूमि-कंप, उल्कापात आदि उपद्रव होने लगे और नगरी पर अग्निवर्षा शुरु हो गई। रोने तथा चिल्लाने पर भी किसी को कोई सहायता देने वाला नहीं मिला। कृष्ण और बलभद्र बड़े दु:खित हृदय से माता-पिता को निकालने लगे। वसुदेवजी एवं देवकी को रथ में बिठाकर दोनों भाई रथ को खींचते हुए चले, पर दैववशात् उनको भी नहीं निकाल सके। आखिर अनशन कर माता-पिता ने द्वैपायन द्वारा की गई अग्नि वर्षा में जलकर आयुष्य पूर्ण किया और स्वर्ग के अधिकारी बने।

प्रश्न 42. स्थानांग सूत्र स्थान दस के अनुसार अन्तकृद्दशा सूत्र में 1. नमि, 2. मातंग, 3. सोमिल, 4. रामगुप्त, 5. सुदर्शन, 6. जमालि, 7. भगाली, 8. किंकम, 9. चिल्लक और 10. अम्बड़-पुत्र फाल, इन दस जीवों का वर्णन होना चाहिए, वह इस अन्तगड़ सूत्र में क्यों नहीं?

उत्तर–भगवान महावीर के 11 गणधरों की द्वादशांग सम्बन्धी नव वाचनाएँ हुई हैं। जैसे–आदि के सात गणधरों की सात, आठवें–नवमें गणधर की आठवीं और दसवें–ग्यारहवें गणधर की नवमीं, इनमें किसी एक वाचना में प्रश्नगत दस जीवों का वर्णन हो सकता है। किन्तु वर्तमान वाचना उस वाचना से अन्य, सुधर्मास्वामी की वाचना है। अत: इसमें उन दस जीवों का वर्णन नहीं मिलता। इसको वाचनान्तर समझना चाहिए।

तीर्थङ्कर, अन्त करने वाले अनेकों जीवों का वर्णन सुनाते हैं। उनमें से किसी वाचना में गणधरों द्वारा किन्हीं का वर्णन गूँथा जाता है। दूसरे किसी वाचना में उनसे भिन्न किन्हीं दूसरों का ही वर्णन किया जाता है। अत: वर्तमान अन्तगड़ सूत्र में उनका नहीं मिलना आपत्तिजनक नहीं समझना चाहिए।

प्रश्न 43. अन्तकृद्दशांग में श्रीकृष्ण को आगामी बारहवाँ तीर्थङ्कर होना बताया है, जबकि समवायांग में भावी चौबीस तीर्थङ्करों के नाम और उनसे पूर्व भव के जो नाम बताये हैं, उनकी गिनती करने पर कृष्ण आगामी तेरहवें तीर्थङ्कर ठहरते हैं। इसका समन्वय क्या है?

उत्तर–श्री वासुपूज्य स्वामी की प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभनाथ से गणना की जाये, तो वे बारहवें होते हैं और चौबीसवें श्री महावीर स्वामी को प्रथम मानकर पीछे से गणना की जाये तो वासुपूज्य तेरहवें आते हैं। वैसे ही श्रीकृष्ण को भावी तीर्थङ्करों में प्रथम तीर्थङ्कर श्री महापद्म की ओर से (पूर्वानुपूर्वी से) गणना की जाय, तो वे तेरहवें आते हैं और अन्तिम तीर्थङ्कर श्री अनन्तविजय की ओर से (पश्चादानुपूर्वी) से गणना की जाये, तो बारहवें होते हैं।

अंतकृद्दशांग में पिछली गिनती से बारहवें तीर्थङ्कर होना बताया तथा समवायांग में पहली गिनती से तेरहवें स्थान पर उन्हें रखा हो, ऐसा सम्भव प्रतीत होता है। इस प्रश्न के समाधान में श्रमण परम्परा में प्राचीन समय से ऐसी ही मान्यता चली आ रही है।

प्रश्न 44. अन्तगड़दशा सूत्र में अर्जुन माली के द्वारा 5 मास 13 दिन में 1141 हत्यायें हुई, उसका पाप अर्जुन को लगा या यक्ष को?

उत्तर–अर्जुन द्वारा की गई हत्याओं में अर्जुन और मुद्गरपाणी यक्ष के अतिरिक्त अन्य भी सहयोगी होते हैं। छहों गोष्ठिल पुरुष जो कुछ अच्छा या बुरा करे, वह अच्छा ही किया, ऐसा मानकर उपेक्षा करने वाले नगर जन और अधिकारी भी इस हत्या की अपेक्षा से समर्थक माने जा सकते हैं क्योंकि यदि वे आरम्भ में ही इसका विरोध करते, तो इस प्रकार हत्या का कारण ही उपस्थित नहीं होता। अत: कुछ पाप नगरवासियों को भी लगना चाहिए।

फिर राजा ने उन्हें इस सम्बन्ध में छूट दे रखी थी। यद्यपि राजा को भविष्य में इस प्रदत्त वर से ऐसी हत्यायें होने की कल्पना नहीं रही होगी, फिर भी उनका ऐसा वरदान इस हत्या में निमित्त तो बना ही। इसलिए राजा को भी पाप अवश्य लगना चाहिए।

ललित गोष्ठी के छहों पुरुषों ने अर्जुन को बाँधकर बन्धुमती के साथ भोग भोगना आरम्भ किया, जिससे अर्जुन माली उत्तेजित हुआ और यक्ष को याद किया। अत: कुछ पाप उन्हें भी लगना चाहिए।

बन्धुमती ने अर्जुन माली को बाँधने के समय यदि इधर–उधर किसी को बुलाने–करने आदि का कहा होता और शील–रक्षा के लिए भागने–चिल्लाने का प्रयत्न किया होता या पति के सामने ही वह इस प्रकार के व्याभिचार में सम्मिलित न हुई होती, तो अर्जुन माली को इतनी अधिक उत्तेजना नहीं मिलती, अत: बन्धुमती का भी इस सम्बन्ध में कुछ अपराध मानना पड़ता है।

अपने बन्धन और अपनी स्त्री के साथ किये गये व्यभिचार से क्रुद्ध हो अर्जुन माली ने मुद्गरपाणी यक्ष की मूर्ति के प्रति ऐसे अविश्वास पूर्ण विचार प्रकट किये जिससे प्रेरित होकर ही मुद्गरपाणी यक्ष आया। अत: अर्जुन माली को तो पाप लगा ही।

अर्जुन माली के उत्तेजना पूर्ण विचारों से मुद्गरपाणी यक्ष आवेश में आ गया और उसने आते ही सात प्राणियों की हत्या कर दी और आगे वह 163 (एक सौ तिरेसठ) दिन तक हत्या करता रहा। अत: यक्ष को भी पाप लगा।

अर्जुन माली तीव्र कषाय के अधीन हो, सबसे अधिक उत्तेजित हुआ और यक्ष का भी मूल प्रेरक रहा। अत: यक्षावेश में पराधीन हो जाने पर भी मूल प्रेरणा के कारण उसे सबसे अधिक वध करने वाला मानना चाहिए। फिर जैसा ज्ञानी स्वीकार करें, वही तथ्य है।

प्रश्न 45. शत्रुंजय पर्वत पर अंतकृत सूत्र के अनुसार कई जीव सिद्ध हुए हैं, फिर उसे तीर्थ मानने में क्या बाधा है?

उत्तर–शत्रुंजय पर्वत पर अनेक जीवों के सिद्ध होने की बात सही है। पर ऐसी भूमि कौनसी है, जहाँ कोई जीव सिद्ध न हुआ हो। अत: जीवों के सिद्ध होने भर से किसी क्षेत्र को तीर्थ मान लेना उचित प्रतीत नहीं होता। तीर्थ का अर्थ तारने वाली भूमि या जल से ऊपर का भूभाग है अर्थात् जिसके द्वारा तिरा जाय, उसे तीर्थ कहते हैं। तिराने वाली भगवान की वाणी, 'तीर्थ' है या उसे सुनाने वाले साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविकाएँ तीर्थ हैं। परन्तु शत्रुंजय पर्वत किसी को तिराता नहीं। अत: उसे तीर्थ नहीं माना जा सकता। सन्तों के चरण स्पर्श और साधना से वह पवित्र भूमि कही जा सकती है। एकान्त शान्त होने से यह भी कल्याण साधन में निमित्त हो सकती है? वन्दनीय नहीं।

यदि जीवों के सिद्ध होने के कारण ही किसी क्षेत्र को तीर्थ मानना हो, तो सम्पूर्ण अढ़ाई द्वीप को ही तीर्थ मान लेना चाहिए क्योंकि अढ़ाई द्वीप को एक अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी भूमि भी ऐसी नहीं है, जहाँ से कोई सिद्ध न हुए हों। पन्नवणा सूत्र के सोलहवें पद में इसका स्पष्ट उल्लेख है।

शत्रुंजय को तीर्थ मानने वाले भी भगवान नेमिनाथ के शासन में शत्रुंजय पर कई जीव सिद्ध हुए। इसलिए ही शत्रुंजय को तीर्थ नहीं मानते हैं, किन्तु अनादि काल से इसको तीर्थ मानते आए हैं, इसलिए तीर्थ मानते हैं। परन्तु यह मान्यता मिथ्या है क्योंकि शत्रुंजय पर्वत शाश्वत नहीं है। अशाश्वत पर्वत अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे की समाप्ति पर उठने लगते हैं और पाँचवे आरे की समाप्ति पर पुन: भूमिसात् हो जाते हैं। मध्यकाल में भी इनमें घट-बढ़, बनाव-बिगाड़ और चल-विचलता होती रहती है। फिर शास्त्र में मागध, वरदाम और प्रभास को जैसे तीर्थ नाम से बतलाया, वैसे शत्रुंजय को शास्त्र में कहीं तीर्थ नहीं कहा है। यह तो पश्चात्कालवर्ती लोगों ने सामाजिक प्रभुता और क्षेत्र की महिमा बढ़ाने को तीर्थ रूप में इसकी स्तवना की है।

प्रश्न 46. भिक्षा के लिए 'एक घर में एक दिन में एक बार से अधिक जाना आगम विरुद्ध है' क्या यह कथन सही है?

उत्तर–यह कथन सही नहीं है। दशवैकालिक, आचारांग सूत्र आदि में भिक्षा की विधि का वर्णन है। वहाँ प्रतिदिन एक घर में भिक्षा के लिए जाने को नित्यपिंड नामक अनाचीर्ण बतलाया है। एक दिन में घर में दो बार, तीन बार जाने का निषेध नहीं है। कतिपय परम्पराएँ अंतगड़ सूत्र में वर्णित देवकी महारानी के प्रसंग को लेकर एक घर में एक दिन में दो-तीन बार जाने का निषेध करती हैं, किन्तु गहराई से देखा जाय तो विदित होगा कि देवकी महारानी खुद जानकार श्राविका थी।

उसने दो-तीन बार मुनियों को आहार बहाराया था। तीसरी बार आहार बहराने के बाद जिज्ञासा करती थी, न कि दूसरी बार बहाराने के पहले। दूसरी बार बहराने के निषेध करने वालों को चिन्तन करना चाहिए कि देवकी महारानी ने वही सिंघाड़ा जानते हुए भी दूसरी, तीसरी बार आहार क्यों बहाराया?

एक ही समय गोचरी का विधान होने के समय भी जब दो बार, तीन बार जाना आगम में बाधित नहीं तो संहनन की हीनता से वर्तमान में अलग-अलग समय में दो बार-तीन बार जाना अनुपयुक्त कैसे कहा जा सकता है? आगमों में गोचरी संबंधी शताधिक दोष बतलाये, जहाँ एक घर में दूसरी-तीसरी बार जाने का कहीं निषेध नहीं किया।

प्रश्न 47. दिन में दूसरी बार भिक्षा के लिए आये संत-सतियों को मना करने पर श्रावक-श्राविकाएँ निर्जरा के लाभ से वंचित होने के कारण क्या अंतराय कर्म का भी बंध करते हैं?

उत्तर–यह कथन सही है। अपेक्षाकृत अपनी ओर से विपुल अशनादि बहराने के भाव होते हुए भी संतों को अपनी समाचारी के अनुसार दोष न लगे इस भावना से प्रेरित होकर पूर्व में कोई संत पधार गये हैं यह जानकारी देने में अंतराय नहीं लगती। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि एक घर में दूसरी, तीसरी बार साधु भिक्षार्थ जा सकता है। परंतु जब कोई साधु भिक्षार्थ जाये और श्रावक-श्राविकाओं को जानकारी दे कि दूसरी, तीसरी बार भी भिक्षा के लिए आ सकते हैं। फिर भी यदि उपेक्षा भाव से आहार नहीं बहरावे तो निश्चित ही निर्जरा के लाभ से वंचित रहते हैं तथा अंतराय कर्म का भी बंध करते हैं।

श्रावक-श्राविकाओं के लिए स्वयं सूझता होते हुए भी अपने हाथों से नहीं बहराने तथा दान देने की भावना नहीं रखने से बारहवें अतिथि संविभाग व्रत में अतिचार लगता है। भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 6 में स्पष्ट वर्णन है कि तथारूप श्रमण माहन को प्रासुक एषणीय आहारादि बहराने से एकान्त निर्जरा का लाभ प्राप्त होता है।

प्रत्येक परम्परा के संत त्यागी एवं आत्मार्थी रहे हुए हैं, वे आहार-प्राप्ति के लिए शास्त्रीय मर्यादा की उपेक्षा करें ऐसा नहीं माना जा सकता, ऐसी स्थिति में श्रावक-श्राविकाओं को अहोभाव से आहार बहराना चाहिए, अन्यथा अंतराय कर्म का बंध होता है।

प्रश्न 48. हरिणेगमेषी देव संतान देने का कार्य करते हैं उसी ने देवकी को सुलसा के समकाल में पुत्र प्रदान किये और इसलिए श्रीकृष्ण ने उन्हें याद किया। क्या यह कथन सही है?

उत्तर–उक्त कथन गलत है। हरिणेगमेषी देव हो अथवा अन्य देव-देवी हो, कोई भी संतानादि देने में समर्थ नहीं है। भगवती सूत्र में स्पष्ट उल्लेख है-'जीव स्वकृत कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता है' **''जीवो सयं कडं दुक्खं वेदेइ नो परकडं नो तदुभयं कडं दुक्ख वेदेइ''** अन्य जीव तो मात्र निमित्त बन सकते हैं हरिणेगमेषी देव संतान नहीं देते। वे गर्भ संहरण या जन्म के पश्चात् नवजात शिशु का संहरण कर सकते हैं, यह भी तभी संभव है जबकि पूर्वकृत कर्म का तथारूप उदय हो, हरिणेगमेषी देव ने सुलसा को पुत्र प्रदान नहीं किया, पर मात्र दोनों को समकाल में ऋतुमती किया था।

वासुदेव श्रीकृष्ण ने भले ही (इच्छामि णं देवाणुप्पिया) से अपने छोटे भाई होने की इच्छा की हो, परन्तु **''होहिसि णं देवाणुप्पिया''**...... कहकर छोटे भाई के स्वयमेव देवलोक से आकर उत्पन्न होने की बात कहकर समाधान किया। श्रीकृष्ण व देवकी महारानी अतिमुक्त मुनि तथा अरिहंत अरिष्टनेमि द्वारा कथित वचनों से जानते हैं कि देवकी आठ पुत्रों को जन्म देगी, आठवाँ पुत्र कब होगा, पूर्व के 7 पुत्रों की भाँति आठवें पुत्र का संहरण न हो जाय, संभव है कि इन बातों को ध्यान में रखकर श्रीकृष्णजी ने हरिणेगमेषी देव की आराधना की हो।

प्रश्न 49. 'सोमा के परित्याग के कारण ही गजसुकमाल मुनि को महती वेदना सहनी पड़ी' क्या यह कथन सही है?

उत्तर–यह कथन सही नहीं है। आन्तरिक दृष्टि से देखा जाय तो गजसुकुमाल मुनि को महती वेदना सहन करनी पड़ी, इसका मूल कारण **''अणेगभव सयसहस्स संचियं कम्मं''** अर्थात् लाखों भवों पूर्व बाँधे हुए अशुभ कर्मों के कारण उदीरणा के द्वारा तीव्र विपाकोदय हो जाता है। गजसुकुमाल ने महती वेदना को समभावपूर्वक सहन किया, बाहरी दृष्टि से सोमा के परित्याग के कारण से सोमिल का क्रोधित होना व गजसुकुमाल को महती वेदना देना भी सही हो सकता है। बाह्य निमित्त कोई भी बन सकता है, परन्तु दु:खादि उत्पन्न होने का मूल कारण (उपादान) तो स्वकृत कर्म ही है।

प्रश्न 50. जघन्य श्रुत आराधना में दर्शन व चारित्र की उत्कृष्ट आराधना सम्भव है अथवा 5 समिति 3 गुप्ति से केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है। क्या यह कथन सही है?

उत्तर–उक्त कथन सही है। जघन्य श्रुत आराधना (5 समिति 3 गुप्ति) में भी यदि उत्कृष्ट क्षय (पुरुषार्थ) करे तो वह केवली बन जाता है। भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 में वर्णन है कि जघन्य श्रुताराधना रूप 5 समिति 3 गुप्ति वाला बारहवें गुणस्थान को प्राप्त कर लेता है जो अन्तर्मुहूर्त्त में नियमा केवली बन जाता है।

भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 10 में वर्णन है कि जघन्य श्रुत की आराधना करने वाला भी मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। मोक्ष में जाने वाले जीव में बारहवें गुणस्थान में समिति गुप्ति का ज्ञान होने पर भी दर्शन व चारित्र आराधना उत्कृष्ट ही होगी। गजसुकुमाल एवं अर्जुन अणगार के वर्णन से भी यह बात पुष्ट होती है।

प्रश्न 51. 'मेरा भाई अकाल में ही काल कर गया' वासुदेव श्रीकृष्ण का यह कथन क्या सही है?

उत्तर–भगवान अरिष्टनेमि के द्वारा यह कहने पर कि गजसुकुमाल मुनि ने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया है। तब श्रीकृष्ण ने कहा कि–मेरा छोटा भाई अकाल में ही काल कर गया। श्रीकृष्ण की इस मिथ्या धारणा का बाद में अरिहंत अरिष्टनेमि ने निराकरण कर दिया। जो भी चरम शरीरी नारकी, देवता, युगलिक तथा श्लाघनीय पुरुष होते हैं वे अनपवर्तनीय आयु वाले होते हैं। वे अकाल में मरण को प्राप्त नहीं होते। गजसुकुमाल चरम शरीरी थे, उनके लाखों भवों के कर्मों की निर्जरा करने में सोमिल ने सहायता दी थी। प्रभु ने फरमाया–जिस प्रकार श्रीकृष्ण! तुमने मेरे यहाँ आते हुए रास्ते में वृद्ध पुरुष की ईंट उठाकर सहायता की थी, उसी प्रकार सोमिल ने गजसुकुमाल की मुक्ति में सहायता की है। अत: हे कृष्ण! तुम उस पुरुष (सोमिल) के प्रति द्वेष मत करो।

प्रश्न 52. ''अभी कृष्ण महाराज के जीव की लेश्या कापोत है।'' क्या यह कथन उचित है?

उत्तर–यह कथन सही नहीं है, क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 34 के अनुसार 3 सागर झाझेरी तक की आयु वाले तीसरी नारकी के जीवों में कापोत लेश्या पाई जाती है। जबकि अंतगड़दसासूत्र में स्पष्ट वर्णन है कि श्रीकृष्ण का जीव मरकर तीसरी नरक के उज्ज्वलित नामक नरकावास में जाकर उत्पन्न हुआ, शेष लोकप्रकाश के सर्ग 14 तथा गाथा 172 में वर्णन है कि तीसरी भूमि के सातवें नरकेन्द्र उज्ज्वलित की स्थिति जघन्य 4.6/9 सागरोपम तथा उत्कृष्ट 6.1/9 सागरोपम की है। अत: उज्ज्वलित नरकावास में कापोत लेश्या नहीं होकर नील लेश्या पाई जाती है।

तीर्थङ्कर की आगति में 5 लेश्या (कृष्ण लेश्या को छोड़कर) होती है। नील लेश्या भी इसमें शामिल है। श्रीकृष्ण का जीव आगामी चौबीसी में बारहवाँ तीर्थङ्कर होगा। तीर्थङ्कर बनने में लगभग 7 सागरोपम का काल बाकी है। श्रीकृष्ण लगभग 7 सागर तक नरक में रहेंगे, इस अपेक्षा से भी श्रीकृष्ण के जीव में तीसरी नारकी में नील लेश्या ही संभव है, कापोत नहीं।

प्रश्न 53. वासुदेव बनने वाले किसी भी जीव ने वासुदेव भव तक आयुष्य का बंध अनन्तानुबंधी कषाय के उदय में ही किया है।

उत्तर–यह कथन सही है। क्योंकि वासुदेव निदानकृत होते हैं। वासुदेव मरकर नरक में जाते हैं **(सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे नियाणकडा)** अत: निश्चित रूप से वासुदेव अनन्तानुबंधी कषाय के उदय में ही अगले भव की आयु बाँधते हैं। जो जीव एक बार भी दूसरे गुणस्थान से ऊपर (सम्यक्त्व अवस्था में) आयु का बंध कर ले तो नियमा आराधक हो जाता है। भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 10 के अनुसार उसके मनुष्य एवं वैमानिक देव इन दो दण्डकों को छोड़कर शेष 22 दण्डकों के लिए ताला लग जाता है, वह अधिकतम 15 भवों में मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न 54. दीक्षा की आज्ञा घर के मुखिया से ली जाती है। क्या स्वयं मुखिया बिना किसी की आज्ञा से प्रव्रजित हो सकता है?

उत्तर–अंतगड़ सूत्र में वर्णित है कि कृष्ण वासुदेव की घोषणा से अनेकों ने दीक्षा ली। अलक्ष राजा ने ज्येष्ठ पुत्र को गद्दी पर बिठाकर दीक्षा ली। काली आदि रानियों ने कुणिक राजा की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण की।

भगवती शतक 5 उद्देशक 33 में उल्लेख है कि ऋषभदत्त और देवानन्दा ने देशना सुनने के तत्काल पश्चात् ही दीक्षा धारण कर ली, इससे स्पष्ट है कि मुखिया बिना किसी के आज्ञा के भी प्रव्रजित हो सकता है। वर्तमान समय में मुखिया के दीक्षा प्रसंग में पुत्रादि की आज्ञा भी ली जाती है जो व्यावहारिक दृष्टि से उचित है।

प्रश्न 55. क्या यक्ष भी दिव्य सत्य होता है?

उत्तर–लोकोपचार रूप अथवा लौकिक मान्यता से उसे दिव्य सत्य माना है। अंतगड़ आदि आगमों में लौकिक मान्यता से यक्ष को दिव्य सत्य कहा है। मुद्गरपाणि यक्ष का अर्जुन मालाकार के शरीर में प्रवेश करना प्रमाण है, अत: यह कथन लौकिक मान्यता के अनुसार है। जिससे लौकिक मान्यता की पूर्ति हो सके जो दिव्य एवं सत्य प्रभाव वाला हो, ऐसे यक्ष को दिव्य सत्य कहा है।

प्रश्न 56. क्या दृढ़धर्मी व्रतधारी पर देवशक्ति का प्रभाव नहीं चल सकता?

उत्तर–उक्त कथन को एकान्त सत्य नहीं कहा जा सकता। किसी अपेक्षा से देवशक्ति का प्रभाव हो भी सकता है, किसी अपेक्षा से नहीं भी। पूर्वबद्ध असाता जन्य कर्मों का उदय होने पर छद्मस्थ काल में तीर्थङ्कर भगवन्तों को भी देवता उपसर्ग दे सकते हैं। उपासकदशांगसूत्र में वर्णित कामदेव के शरीर में वेदना भी इसका उदाहरण है। 12वीं भिक्षु प्रतिमा के आराधक को भी उपसर्ग आ सकता है, विचलित हो सकता है।

उपासकदशांगसूत्र के अध्ययन 3, 4, 5 व 7 में वर्णित श्रावक देवता के उपसर्ग में विचलित हो गए थे। तथारूप गाढ़े कर्मों का बंधन नहीं होने पर देवता दृढ़धर्मियों के चरणों में नतमस्तक होते आये हैं। दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि आगम इसके ज्वलंत प्रमाण है।

प्रश्न 57. अपूर्वकरण में क्या होता है, इसकी प्राप्ति के लिए क्या-क्या अनिवार्य करण (साधन) अपेक्षित हैं?

उत्तर–अपूर्वकरण के परिणामों में विशेष विशुद्धि होती है। अपूर्वकरण सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व पहले गुणस्थान के अंत में भी होता है तथा आठवें गुणस्थान में श्रेणी करते समय भी होता है। प्रति समय अनंत गुणी विशुद्धि के लिए अपूर्व-अपूर्व परिणाम प्राप्त होना अपूर्वकरण है।

अंतगड़सूत्र 3/8 में गजसुकुमाल मुनि के वर्णन में उल्लेख है–''**सुभेणं परिणामेणं पसत्थऽज्झवसाणेणं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खएणं कम्मरय विकिरणकरं अपुव्वकरणं।**'' अर्थात् शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय से तदावरणीय कर्म का क्षय होने पर 8वें गुणस्थान वाले जीव को अपूर्वकरण प्राप्त होता है।

अल्प समय में उत्तरोत्तर कर्म परमाणुओं की अधिक संख्या में निर्जरा होने को गुणश्रेणी कहते हैं। गुण श्रेणी में अपूर्वकरण होता है। तत्त्वार्थ सूत्र के अध्याय में 10 प्रकार की गुणश्रेणियाँ बतलाई हैं–1. सम्यक्त्व, 2. देशविरति, 3. सर्वविरति, 4. अनंतानुबंधी विसंयोजना, 5. दर्शनमोह का क्षपण, 6. चारित्र मोह का क्षपण, 7. मोहक्षपण, 8. क्षीण मोह, 9. सयोगी केवली, 10. अयोगी केवली अर्थात् अपूर्वकरण निर्जरा का उत्कृष्ट साधन है।

प्रश्न 58. आयु टूटने का अभिप्राय क्या है? किन-किन कारणों से आयु टूटती है?

उत्तर–पूर्वबद्ध आयु को निर्धारित समय के पहले ही भोग लेना आयु का टूटना कहलाता है। सामान्य मनुष्य–तिर्यंचों में अपवर्तना करण के द्वारा आयु कर्म की स्थिति को (अन्य कर्मों के समान) कम किया जा सकता है। जिस आयु में कमी हो सके आयु टूट सके उसे अपवर्तनीय आयु कहते हैं। अंतगड़सूत्र में सोमिल ब्राह्मण के लिए पाठ आया है–ठिइभेएणं····· अर्थात् स्थिति का भेदघात होने से वहीं काल कर गया। ठाणांग सूत्र के सातवें ठाणे में आयु टूटने के सात कारण इस प्रकार हैं–1. राग–द्वेष भय आदि की तीव्रता से 2. शस्त्रघात से 3. आहार की न्यूनाधिकता से या आहार के निरोध से 4. ज्वर–आतंक की तीव्र वेदना से 5. पर के आघात यानी गड्ढे आदि में गिर जाना 6. साँप–बिच्छू आदि के काटने से 7. श्वासोच्छ्वास के निरोध से आयु टूट सकती है। इसके अलावा रक्त क्षय से, संक्लेश बढ़ने से, वज्र के गिरने से, अग्नि उल्कापात से, पर्वत, वृक्षादि के गिरने से प्राकृतिक आपदादि से भी आयु टूट सकती है।

प्रश्न 59. उदीरणा किसे कहते हैं? क्या यह किसी की सहायता से संभव है? इसका परिणाम क्या है?

उत्तर–उदयावलिका से बाहर स्थित कर्म परमाणुओं को कषाय सहित या कषाय रहित योग संज्ञा वाले वीर्य (पुरुषार्थ) विशेष से उदयावली में लाकर उनका उदय प्राप्त कर्म परमाणुओं के साथ अनुभव करना उदीरणा कहलाती है। उदीरणा उन्हीं कर्मों की सम्भव है, जिनका अबाधाकाल पूर्ण हो चुका है। जिन कर्मों का उदय चल रहा है, उनके सजातीय कर्मों की उदीरणा सम्भव है। समुद्घात में उदीरणा विशेष होती है। उदीरणा में बाहरी व्यक्ति, वस्तु आदि निमित्त अथवा सहायक भी बन सकते हैं जैसाकि अंतगडसूत्र में कहा है–

तेणं पुरिसेणं गयसुकुमालस्स अणगारस्स अणेगभवसयसहस्ससंचियं कम्मं उदीरेमाणेणं बहुकम्मणिज्जरट्ठं साहिज्जे दिण्णे।

उदीरणा का फल बहुत सारे कर्मों की नियत समय से पहले निर्जरा हो जाना है। यदि उदीरक जीव समभाव रख लेता है तो नये कर्म–बंधन से अपने आपको बचा लेता है।

प्रश्न 60. उत्कृष्ट श्रुतज्ञान किसे समझना? 90 में से कितने महापुरुषों को उत्कृष्ट श्रुत ज्ञान की सम्भावना है?

उत्तर–चौदह पूर्व या सम्पूर्ण द्वादशांगी का ज्ञान उत्कृष्ट श्रुतज्ञान कहलाता है। अंतगड़ में वर्णित 90 आत्माओं में से 12 महापुरुषों को 14 पूर्वों का तथा 10 महापुरुषों को द्वादशांगी का श्रुतज्ञान था।

प्रश्न 61. पद्मावती महारानी को अरिहंत अरिष्टनेमि द्वारा प्रव्रजित मुण्डित करने की बात क्यों कही?

उत्तर–अरिहंत भगवान ने पद्मावती आदि को 'करेमि भंते' का पाठ पढ़ाकर मात्र सावद्य योग का जीवन भर के लिए त्याग कराया हो, सामायिक चारित्र में प्रवेश कराया हो उसके बाद यक्षिणी ने उन्हें संयम में यत्नशील बनने के लिए

सजगता के लिए, शिक्षा-दीक्षा दी हो, केश लोचन, गोचरी आदि का ज्ञान दिया हो तथा अंगसूत्रों का अध्ययन कराया हो, इस अपेक्षा से पुन: प्रव्रजित मुण्डित करने की बात संभव है।

प्रश्न 62. मुद्‌गरपाणि यक्ष को अर्जुन के मन की बात कैसे ज्ञात हुई?

उत्तर–मुद्‌गरपाणि यक्ष जो कि प्रतिदिन 6 पुरुष 1 स्त्री की हत्या कर रहा है, उसका मिथ्यादृष्टि होना संभव है। प्रज्ञापना पद 33 के अनुसार वाणव्यन्तर देव मात्र जघन्य 25 योजन उत्कृष्ट संख्यात द्वीप समूह को जान सकते हैं। मुद्‌गरपाणि यक्ष वाणव्यंतर का ही एक भेद है। जबकि मन की बात जानने में वही अवधिज्ञानी सक्षम है जो क्षेत्र से कम से कम लोक का संख्यातवाँ भाग, काल से कम से कम पल्योपम का संख्यातवाँ भाग जानने वाला हो। यक्ष का अवधिज्ञान/विभंग ज्ञान उक्त कथनानुसार सीमित होने के कारण वह मन की बात जानने में समर्थ नहीं है।

ऐसा सम्भव है कि यक्ष आस-पास के पेड़ों में रहा हो। अर्जुनमाली की दुर्दशा देखकर अथवा उसकी पुकार को सुनकर उसके शरीर में प्रवेश कर गया हो, मति-श्रुत अज्ञान से भी यक्ष दूसरों के मन की बात जान सकता है। सामान्यत: हाव-भाव से मनुष्य के मन की बात आज भी संसार में कतिपय अनुभवी प्रकट कर देते हैं। अत: मति-श्रुत अज्ञान के उपयोग से ही अर्जुनमाली के मन के भावों को यक्ष ने जाना होगा, अवधि के उपयोग से नहीं।

प्रश्न 63. सागारी संथारा कब, कैसे व किस विवेक से लिया जा सकता है? क्या जीव विराधना जारी रहते सागारी संथारा कर सकता है?

उत्तर–सागारी संथारा किसी प्रकार का उपसर्ग आने पर (अकस्मात् और प्राणघातक उपसर्ग) कष्ट बीमारी ऑपरेशन आदि में अथवा प्रतिदिन रात्रि में ग्रहण किया जा सकता है। सागारी संथारे में 1. भूमि प्रमार्जन 2. अरिहंत, सिद्धों की स्तुति (प्रणिपात सूत्र) 3. पूर्वगृहीत व्रतों-दोषों की निन्दना, 4. सम्पूर्ण 18 पापों का 3 करण 3 योग से त्याग 5. चारों प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है। उपसर्ग से मुक्ति मिल जाने पर पारने का विकल्प होने से सागारी संथारा कहलाता है।

ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र में उल्लेख है कि पानी में जहाज पर अरणक ने सागारी संथारा स्वीकार किया। पानी की विराधना व जहाज पर अग्नि की विराधना जारी रहने पर भी उन्होंने संथारा किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि जीव-विराधना जारी रहने पर भी सागारी संथारा लिया जा सकता है।

प्रश्न 64.क्या सभी कर्मों का फल बंध के अनुरूप ही भोगना पड़ता है या होता है?

उत्तर–उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 4 गाथा 3 में तथा अध्ययन 13वें गाथा 10 में कहा है-''**कडाण कम्माण न मोक्खो अत्थि।**'' अर्थात् किये हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता। यह कथन प्रदेशोदय की दृष्टि से समझना चाहिए अर्थात् बँधे हुए कर्म प्रदेशोदय में आते हैं। किन्तु वेदन (फलदान शक्ति) अनिवार्य नहीं है। भगवती सूत्र शतक 1 उद्देशक 4 में वर्णन है कि बद्ध कर्मों के विपाक में (प्राय: निकाचित को छोड़कर) जीव के परिणामों के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। दशवैकालिकसूत्र में उल्लेख हैकि-''**तवसा धुणइ पुराणपावगं।**'' तप से पुराने कर्म नष्ट हो जाते हैं। ''**भवकोडि संचियं कम्मं तवसा णिज्जरिज्जइ।**'' अर्थात् तप से करोड़ों वर्षों के संचित कर्म क्षय (निर्जरित) हो जाते हैं। अत: स्पष्ट है बँधे हुए कर्मों को उसी रूप में भोगना अनिवार्य नहीं है।

प्रश्न 65. बुलाया आवे नहीं, निमन्त्रण से जावे नहीं यह नियम कहाँ पर लागू होता है?

उत्तर–यह नियम स्थानक 'उपासरे' में लागू होता है। कोई स्थानक में आकर अपने घर गोचरी आने का निमन्त्रण देता है तो उस घर को छोड़ना उचित है, किन्तु स्थानक के बाहर यदि भावना व्यक्त करता है तो उसे निमन्त्रण नहीं माना

जाता है। अंतगड़सूत्र में वर्णन है कि अतिमुक्त कुमार ने भगवान गौतम को कहा–**'एह णं भंते! तुब्भे जण्णं अहं तुब्भे भिक्खं दवावेमि'** अतिमुक्त कुमार गौतम स्वामी को उनकी अंगुली पकड़कर अपने घर ले गए, जहाँ माता ने विपुल अशनादि बहराकर प्रतिलाभित किया।

प्रश्न 66. अन्तकृद्दशा का क्या तात्पर्य है?

उत्तर–जिन महापुरुषों ने अनादिकालीन जन्म-मरण की भव परम्परा का हमेशा के लिए अंत कर दिया है। जिन्होंने शाश्वत सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्तकर लिया है, ऐसे महापुरुषों की जीवन गाथा का वर्णन अन्तकृद्दशा कहलाता है।

प्रश्न 67. अन्तकृद्दशांग सूत्र में किन-किन महापुरुषों का वर्णन है?

उत्तर–अन्तकृद्दशांग सूत्र में भगवान अरिष्टनेमि के शासनवर्ती 51 साधकों का (जिनमें 41 साधु, 10 साध्वियाँ हैं) तथा भगवान महावीर के शासनवर्ती 39 साधकों का (जिनमें 16 साधु, 23 साध्वियाँ हैं) इस प्रकार कुल 90 साधकों का वर्णन है। 90 ही साधकों ने उसी भव में संयम अंगीकार किया। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना कर आयु के अंतिम अन्तर्मुहूर्त्त में घाति कर्मों को क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त किया तथा अन्तर्मुहूर्त्त पश्चात् ही अघाति कर्मों को भी क्षयकर मोक्ष को प्राप्तकर लिया।

प्रश्न 68. अन्तकृद्दशांग सूत्र के साधकों से क्या-क्या प्रेरणाएँ प्राप्त होती हैं?

उत्तर–(1) प्रथम वर्ग में वर्णित गौतमकुमार के जीवन से भोगों की निस्सारता समझ कर संयमी-जीवन जीने तथा अंगशास्त्रों का मर्मस्पर्शी अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

(2) तृतीय वर्ग के आठवें अध्ययन में वर्णित छ: अणगारों को महारानी देवकी जिस श्रद्धा-भक्ति व उल्लास भाव से चारों प्रकार के आहार से प्रतिलाभित करती है, उसी प्रकार अवसर मिलने पर हमें भी श्रमण-श्रमणियों को भक्ति-बहुमान पूर्वक आहारादि बहराने का लाभ प्राप्त करना चाहिए।

(3) जिस प्रकार से श्रीकृष्ण वासुदेव अपनी माताओं को प्रतिदिन चरण-वन्दना करने जाते, उसी प्रकार हमें भी बड़ों की, गुरुजनों की चरण-वन्दना करनी चाहिए।

(4) श्रीकृष्ण वासुदेव होते हुए भी उन्होंने मातृभक्ति का आदर्श उपस्थित किया, माता की चिन्ताओं को दूर करने का प्रयास किया, उसी प्रकार हमें भी माता-पिता की सेवा में समर्पित रहना चाहिए।

(5) श्रीकृष्ण वासुदेव ने अरिहंत अरिष्टनेमि के श्रीमुख से संयम की महत्ता जानी, तथा स्वयं निदानकृत होने से व्रत-नियम अंगीकार नहीं कर सकने की बात भी जानी तो संयम मार्ग में आगे बढ़ने वालों को अपूर्व सहायता प्रदान कर धर्म दलाली का अनुपम-अद्वितीय लाभ (तीर्थङ्कर गोत्र का उपार्जन) प्राप्त कर लिया। हमें भी धर्म-साधना में स्वयं आगे बढ़ते हुए अन्यों को आगे बढ़ाने में सहयोगी बनना चाहिए। साधकों की ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना निर्मल हो सके, उसमें अन्तर्मन से सकारात्मक सहयोग प्रदान करना चाहिए।

(6) महामुनि गजसुकुमालजी का जीवन हमें प्रेरित करता है कि स्वकृत शुभाशुभ कर्म उदय में आने पर व्यक्ति को समभाव रखना चाहिए। लाखों-करोड़ों भवों के कर्म भी उदय में आ सकते हैं। स्वकृत कर्म ही उदय में आते हैं, अत: समभाव से भोगे बिना उनसे आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो सकती।

(7) अर्जुन अणगार की क्षमा, सहनशीलता भी हमें कषाय विजय की निरंतर प्रेरणा प्रदान करती है। सुदर्शन श्रमणोपासक की धर्मदृढ़ता हमें अविचल अवस्था, जिनशासन के प्रति प्रीति एवं संघ समर्पण की अनूठी प्रेरणा प्रदान करती है। मृत्यु के मुँह में पहुँचने पर भी व्रत-पालन की दृढ़ता मननीय एवं भावना भरती है।

(8) एवन्ता मुनि का जीवन हमें प्रकृति की सरलता, भद्रता, विनम्रता के साथ गुणिषु प्रमोदं की भावना भरता है।

(9) राजा श्रेणिक की रानियाँ एवं कोणिक की छोटी माताओं का जीवन सुकुमारता का त्याग कर तपाराधना के साथ धर्म मार्ग में आगे बढ़ने की अभूतपूर्व प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रश्न 69. पर्युषण के आठ दिनों में अन्तगड़सूत्र ही क्यों पढ़ा जाता है?

उत्तर–पर्युषण आत्मगुणों के संचय, संवर्धन एवं रक्षण के पर्व हैं। इन दिवसों में सभी वर्ग के साधकों की धर्म भावना पुष्ट होनी चाहिए। इस हेतु आठ दिवसों में पूर्ण हो सकने वाले तथा आत्मगुण विकसाने की प्रेरणा देने वाले अन्तकृद्दशांग सूत्र का वाचन-विवेचन आवश्यक है।

अन्तकृद्दशांग सूत्र में आबाल-वृद्ध, गरीब-अमीर सेठ, राजा, राजरानियाँ, राजकुमार, ज्ञान क्षयोपशम आदि की विविधता वाले सभी साधकों का वर्णन है। सभी ने उसी भव में सर्व कर्मों का क्षय कर मुक्ति प्राप्त की, अत: जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य दु:ख-मुक्ति, शाश्वत सुख-प्राप्ति की प्रबल प्रेरणा भी इस शास्त्र से सभी लोगों को प्राप्त होती है। अत: यह कहा जा सकता है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप इन आत्मिक गुणों को पुष्ट करने वाला होने से अन्तकृद्दशांग सूत्र पर्युषण पर्व के दिवसों में पढ़ना अनिवार्य एवं उपादेय है। विशेष ज्ञानी कहे, वही प्रमाण जानना चाहिये।

प्रश्न 70. चम्पानगरी कैसे बसाई गई?

उत्तर–मगधाधिपति महाराज श्रेणिक के वृद्ध होने पर भी अपने ज्येष्ठ पुत्र कोणिक को राज्य पद पर अभिषिक्त नहीं करने से, राज्य की अमूल्य वस्तुएँ, देवनामी हार व सिंचानक हाथी, हल्ल-विहल्लकुमार को दे देने से राज्य लिप्सा के तीव्राभिलाषी कोणिक ने (अपने दस भाइयों विमाता के ज्येष्ठ पुत्रों) से षड्यन्त्र करके महाराज श्रेणिक को पिंजरे में डाल कर बन्दी बना दिया। स्वयं मगधाधिपति बन गया, और दस भाइयों को अलग-अलग राज्य के हिस्से बाँट दिये, राज-चिह्नों से सुशोभित होकर अपनीपूज्य मातेश्वरी चेलना के पाँव वन्दन के लिये गया। महारानी चेलना ने पिता को बन्दी बनाने वाले पुत्र को देखकर मुँह फेर लिया। इस पर नृप कोणिक ने कहा-'हे माता! क्या तुम अपने पुत्र को राजा देखना नहीं चाहती?' इस पर माता ने व्यंग्य में कहा-'जिस पुत्र ने अपने पूजनीय पिताजी, जिन्होंने उसे जीवनदान दिया था, उनको ही बन्दी बनाकर राज्य लक्ष्मी हड़प ली, उसका कौन माँ आदर करेगी?'

कोणिक के पूछने पर कि पिताजी ने मुझे जीवन-दान कैसे दिया, चेलना ने अपने दोहद (पति के माँस खाने की इच्छा) उत्पन्न होने की घटना सुनाई। जन्मते ही पिता-घातक (दोहद हेतु) समझकर मैंने तुमको उखरड़ी पर फिंकवा दिया। जहाँ पर एक मुर्गे ने तुम्हारी अँगुली नोंच डाली। तुम्हारे पिताजी ने मुझे इसके लिये बहुत उपालम्भ दिया, और लालन-पालन के लिये वापस दे दिया। अँगुली में रस्सी पड़ जाने के कारण जब रात्रि में तुम बहुत रोते थे, उस समय तुम्हारे ये ही पिता अपने मुँह में अँगुली का पीप चूसकर बाहर फेंकते और तुमको शान्ति उपजाते थे। अपनी माता के मुँह से यह हृदय द्रवित करने वाला वृत्तान्त सुनकर कोणिक का हृदय भर आया और पूज्य पिताजी के बन्धन काटने के लिये कुल्हाड़ा लेकर कारागृह की तरफ दौड़ा। श्रेणिक ने कोणिक को इस प्रकार आते देखकर सोचा कि यह मुझे मारेगा। इससे यही अच्छा है कि मैं पहले ही मर जाऊँ। अत: अपनी अँगूठी में जड़ित हीरे की कणी को चूसकर श्रेणिक काल धर्म को प्राप्त हो गया। यह दृश्य देखकर कोणिक शोक विह्वल होकर भग्नचित्त हो गया। वह अपने पूज्य पिताजी के गुणों का ध्यान करके रोने लगा। राज्य मन्त्री आदि के समझाने पर भी उसका हृदय हल्का नहीं हुआ। बाहर घूमने पर शोक से कुछ निवृत्त होता, परन्तु राज्य सिंहासन पर बैठते ही पिताश्री की याद सताने लगती। (निरयावलिया सूत्र)

राजकीय अव्यवस्था को देखकर मन्त्रिमण्डल ने राजधानी बदलने का सुझाव दिया। नृप कोणिक की अनुमति से भूमि शास्त्रियों को उपयुक्त भूमि ढूँढने की आज्ञा दी। वे भूमि का अवलोकन करते-करते थक गये और विश्राम हेतु एक चम्पा वृक्ष के नीचे बैठ गये। वह स्थान उनको अति मोहक लगा। स्थान इतना लुभावना प्रतीत हुआ कि वहाँ से उठने का उनका मन ही नहीं करता था। किसी शकुन पूर्ति के लिये उन्होंने जमीन खोदी तो वहाँ पर अपरिमित स्वर्ण मुद्रा और माणिक्य का भण्डार मिला। उसी द्रव्य से वहीं नगरी का निर्माण किया गया और चम्पा वृक्ष के पास होने से नगरी का नाम ''चम्पानगरी'' रखा गया। राजा कोणिक ने इसी चम्पानगरी को अपनी राजधानी बनाया। (कथा भाग से)

प्रश्न 71. द्वारिका नगरी का निर्माण कैसे हुआ?

उत्तर-मथुरा नरेश कंस के वध से क्षुभित होकर उसकी पत्नी जीवयशा अपने पिता जरासन्ध के पास राजगृही गई और पति-वध के हृदय विदारक समाचार सुनाये। समाचार सुनकर प्रतिवासुदेव जरासन्ध ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दूत को यह कहकर शोरीपुर भेजा कि यादव नृप अगर अपनी सुरक्षा के इच्छुक हों तो कालिया, गोरिया (श्रीकृष्ण और बलदेव) को तत्काल मेरे पास भेज देवें, वरना शौरीपुर को नष्ट कर दिया जावेगा। महाराज समुद्र विजय ने दूत को तिरस्कार करके लौटा दिया, और अपने लघु बान्धवों के साथ भावी संकट से निपटने के लिये मन्त्रणा करने लगे। उन्होंने बतलाया कि राज-राजेश्वर जरासन्ध वर्तमान में अति बलशाली है, और अपने पास साधन सीमित हैं। इस दरम्यान राज्य के ज्योतिषी ने चिन्ता का कारण ज्ञात होने पर अर्ज किया कि आप निर्भय रहें। जिस कुल में भावी तीर्थङ्कर, वासुदेव और बलदेव ऐसे तीन पदवीधर हैं, उनका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता। ज्योतिषी ने आगे बतलाया कि यहाँ की भूमि यादव परिवार के लिए अनुकूल नहीं है।

इसलिये आप सपरिवार दक्षिण दिशा की ओर जावें, और जहाँ सत्यभामा पुत्ररत्न को जन्म देवे, वहीं पर अपना झण्डा गाड़ देवें, वहीं से यादव वंश का अभ्युदय होगा। राज्य ज्योतिषी के कथनानुसार महाराज समुद्र विजयजी अपने समस्त परिवार सहित शौरीपुर से सौराष्ट्र में लवण-समुद्र के किनारे पहुँचे, जहाँ सत्यभामा ने भानुकँवर का प्रसव किया। श्रीकृष्ण ने तेले के तप की आराधना की जिसके फलस्वरूप समुद्र का अधिष्ठित देव उपस्थित हुआ। देवताओं के स्वामी इन्द्र की आज्ञानुसार कुबेर देव ने उसी स्थान पर 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी नगरी का मय अनेक महल, भवन, दुकानें उद्यान आदि का निर्माण स्वर्ण की ईंटों से कराया। उस नगरी के अनेक द्वार और उपद्वार होने से उनका नाम द्वारिका नगरी रखा गया। कतिपय विद्वान् इस प्रकार भी कहते हैं कि इस नगर के बारह स्वामी-दश दशारण, राजा कृष्ण और बलदेव होने से बारापति से द्वारामति 'द्वारिका' कहलाई।

प्रश्न 73. काली आदि दसों रानियों को वैराग्य उत्पन्न कैसे हुआ?

उत्तर-मगधेश्वर श्रेणिक ने अपने जीवन काल में, चेलणा के लघुपुत्र हल और विहल कुमार को देवनामी हार और सिंचानक हाथी उपहार के रूप में दे दिया। वे कुमार अपने अन्त:पुर के साथ इन दोनों वस्तुओं का उपभोग करते हुए आनन्द से रह रहे थे। चम्पा के निवासी उनके सुखी जीवन, हार और हाथी के उपभोग की प्रशंसा करते रहते थे कि हल, विहल कुमार राज्य लक्ष्मी का सुख भोग रहे हैं। राजा कोणिक तो सिर्फ राज्य का भार ढोता है। कोणिक की पटरानी पद्मावती ने जनता की बात को सुनकर कोणिक से निवेदन किया-ये दोनों वस्तुएँ हार व हाथी तो आपको शोभा देती हैं। कोणिक ने उत्तर दिया-पिताजी ने ये मेरे छोटे भाइयों को उपहार रूप में दी हैं, सो उनसे माँगना अनुचित है। परन्तु पटरानी के अति आग्रह से उसने हल, विहल कुमार को इन दोनों वस्तुओं को लौटाने के लिये आज्ञा दी-

विहल कुमार ने नम्रता से उत्तर दिया कि अगर आप मुझको राज्य का हिस्सा देवें तो हम इनको आपको दे सकते हैं। राजा कोणिक ने राज्य का बँटवारा करने से इन्कार कर दिया, और बलपूर्वक लेना चाहा।

हल, विहल कुमार को इस रहस्य को मालुम होने पर अपने परिवार, सेना, कोष, हार और हाथी सहित चुपचाप वे अपने नाना चेड़ा राजा के पास चले गये। कोणिक को विहल कुमार के चम्पा से चले जाने की वार्ता ज्ञात होने पर अपने नाना राजा चेड़ा को हार, हाथी सहित हल, विहल कुमार को लौटाने के लिये सन्देश भेजा। चेड़ा राजा ने जवाब दिया कि वे उसकी बात तब मानने को सहमत हैं, जब वह हल, विहल कुमार को अपना आधा राज्य दे देवें।

इस शर्त को अमान्य करके राजा कोणिक ने चेड़ा राजा पर हमला कर दिया। कोणिक नृप के साथ उसके दस विमाता पुत्र भाई कालिकुमार आदि सेनापति के रूप में युद्ध मैदान में आये। वे दसों सेनापति चेड़ा राजा के बाणों से काल के ग्रास हो गये।

इस बीच भगवान महावीर का चम्पानगरी में समवशरण हुआ। काली आदि दसों ही महारानियों के प्रश्न करने पर कि वे अपने पुत्रों का युद्ध से लौटने पर मुँह देख सकेगीं या नहीं ? प्रभु ने उनके युद्ध में काम आने की बात फरमायी। इस पर वे संसार की असारता को समझकर दीक्षित हो गई। –विशेष वर्णन 'निरयावलिया सूत्र' में देखा जा सकता है।

◆◆◆◆

परिशिष्ट 6

भजन

देवकी रानी का झूरणा

इम झूरे देवकी राणी, या तो पुत्र बिना बिलखाणी रे ।।टेर ।।
म्हें तो सातों नन्दन जाया, पिण एक न गोद खिलाया रे ।।1 ।।
घर पालणों नहीं बँधायो, नहीं मधुर हालरियो गायो रे ।।2 ।।
घुँघरा चूखनी न बसाई, झूमर पिण नाहिं बँधाइ रे ।।3 ।।
नहीं गहणा कपड़ा पहिनाया, नहीं झँगल्या टोपी सिवाया रे ।।4 ।।
नहीं काजल आँख लगायो, नहीं स्नान करी ने जिमायो रे ।।5 ।।
नहीं गले दामण दीधा, वलि चाँद-सूरज नहीं कीधा रे ।।6 ।।
नही स्तन-पय-पान करायो, रूठा ने नहीं मनायो रे ।।7 ।।
म्हें तो कडिया नाहिं उठायो, नाहिं अँगुली पकड़ चलायो रे ।।8 ।।
घू-घू कही नाहिं डरायो, नहीं गुद गुल्या पाड़ हँसायो रे ।।9 ।।
नहीं मुख पे चूम्बा दीधा, नहीं हरष वारणा लीधा रे ।।10 ।।
नहीं चक्री भँवरा मँगाया, नहीं गुलिया गेंद बसाया रे ।।11 ।।
म्हे जन्म तणा दुःख देख्या, गया निफल जन्म अलेख्या रे ।।12 ।।
मैं अभागण पुण्य न कीधा, तिण थी सुत बिछड़ा लीधारे ।।13 ।।
गले बे हाथ नजर है धरती, आँखें आँसू भर झरती रे ।।14 ।।
पग वन्दन किसन पधारे, माँजी ने उदास निहारे रे ।।15 ।।
कहे अमीरिख किम दुःख पावो, माताजी मुझे फरमावो रे ।।16 ।।

गजसुकुमाल मुनि

(तर्ज-एवन्ता मुनिवर, नाव तिराई......)

वरज्या नहीं रहवे, दीक्षा लेवे रे, गजसुकुमाल जी ।।टेर ।।

काया होकर आज्ञा दीधी, मात-तात अरु भाई ।
जिम सुख हो तिम करो लालजी, हर्षे, कुँवर मन माँई जी... ।।1 ।।

दोय लाख रा ओघा पातरा, एक लाख है नाई ।
कृष्ण महाराज भण्डारी को, दीना हुक्म सुनाई जी....... ।।2 ।।

स्नान मंजन कर शीघ्र कुँवर जी, बैठे शिविका माँई ।
मध्य बाजाराँ चली सवारी, आये नन्दन वन माँई जी....... ।।3 ।।

मात-तात और भ्रात साथ सब, होकर अधिक उदास।
जब प्रेम की फाँस जगत में, आये प्रभु के पास जी....... ।।4 ।।

हाथ जोड़ने कहे देवकी, सुनो नेम भगवान।
लीजे जिगर की कोर हमारी, यह नन्दन गुणवान जी...... ।।5 ।।

भूख-प्यास नींद सुख दु:ख की, खबर प्रभु जी लीजो।
गुरु आज्ञा से रहिजो लाल जी, शिवपुर वासो कीजो जी.... ।।6 ।।

रोती-रोती माता बोली, मुझे रुलाई जाया।
दूजी मता मत रुलाई जो, सफल करो तुम काया जी...... ।।7 ।।

देकर शिक्षा देवकी माता, गई अपने घर द्वार।
गुरु प्रसादे 'चौथमल' कहे, धन्य-धन्य गजसुकुमार जी.... ।।8 ।।

चार महाव्रत आदर लीना, लीना संयम धार।
नेमिनाथ ये अरज गुँजारे, बन वैराग्य में लाल जी...... ।।9 ।।

भगवान नेमिनाथ का उत्तर

(तर्ज-साता कीजो जी.......)

प्रभु फरमावे रे-2, श्री कृष्णचन्द्र का भरम मिटावे रे।।टेर।।

द्वारामती को वासी राजा, है अवगुण को दरियो रे।
नीच-नीच से नहीं करे कृत्य, जैसो करियो रे....... ।।1 ।।

यहाँ से तू घर जासी केशव, मारग में मिल जासी रे।
देख तुझे नीचे गिर जासी, वहीं मर जासी रे....... ।।2 ।।

उसे जानजे अरि हमारा, ऐसी प्रभु प्रकाशी रे।
''चौथमल'' कहे किये कर्म का, झट फल पासी रे.... ।।3 ।।

अर्जुन माली की क्षमा

(तर्ज-एवन्ता मुनिवर.......)

धन्य अर्जुन मुनिवर, दीक्षा लेई ने चाल्या गोचरी।।टेर।।
पूछा वीर से कहो करूँ क्या, देओ राय बताय।
जिम सुख होवे, तिम करो सरे, यो वीर दियो फरमाय।।1 ।।
तहत् उच्चारी वन्दन कीनी, मन में सोचे जाय।
बेले-बेले करूँ तपस्या, देऊँ कर्म खपाय।।2 ।।

राजगृही नगरी के अन्दर, लोग रहे घबराय।
मुनि वेष में आता देखी, और अचम्भो पाय।।3।।
मुखपति मुख पे रजोहरण, कर जोरी घर-घर जाय।
लेता देख्या भोजन पारणे, लोग क्रोध से आय।।4।।
मारे ताड़े गाली सुनावे, भोजन मिलता नायँ।
दिये परीषह जनता ने तब, समता भाव रहाय।।5।।
मुनिवर सोचे अनर्थ कीनो, कुटुम्ब भार अपार।
दिये न वैसे दु:ख उन्होंने, क्षमा हृदय में धार।।6।।
हुए न हुए पूर्ण पारणे, वर्ष यों अर्ध बिताय।
वीत गुण करते धिक्क आत्मा, केवल उपन्यों आय।।7।।
धन्य-धन्य है वीर प्रभु को, अर्जुन दीनों तार।
गुरु प्रसादे ''सागर'' वन्दन, करता बारम्बार।।8।।

श्री एवन्ता कुमार

(तर्ज-सुज्ञानी जीवा भजले रे.......)

एवन्ता मुनिवर, नाव तिराई बहता नीर में ।।टेर।।
बेले-बेले करे पारणो, गणधर पदवी पाया।
महावीरजी री आज्ञा लेने, गौतम गोचरी आया हो....।।1।।
खेल रया छै खेल कँवर जी, देख्याँ गौतम आताँ।
घर-घर माँहीं फिरे हिंडता, पूछे इसड़ी बाताँ हो....।।2।।
असणादिक लेवण के कारण, निरदोषण मैं हेराँ।
अँगुली पकड़ी कुँवर एवन्ता, लाया गौतम लेरा हो....।।3।।
माता देखी कहे पुनवन्ता, भली जहाज घर लाया।
हरख भाव हाथा सुँ लेइने, अन्न पानी बहराया हो....।।4।।
कँवर कहे मुनि भार घणेरो, पात्रा मुझने आपो।
पात्र तो मैं जद ही आपाँ, दीक्षा लो मुझ पास हो....।।5।।
लारे-लारे चालियो बालक, भेटीया मोटा भाग।
भगवन्ता री वाणी सुणने, मन चढ़ियो वैराग हो....।।6।।
घण आया माता कने सरे, अनुमति की अरदास।
पुत्र वचन माता सुणी सरे, मन में आई हास हो....।।7।।
तूँ काँई समझे साधुपणा ने, बाल अवस्था थारी।
ऐसा उत्तर दिया कुँवर जी, माता कहे बलिहारी हो....।।8।।

तीन लाख सोनैया काढो, श्री भण्डारा माँही।
दो लाख रा ओघा पात्रा, एक लाख में नाई हो.... ।।9 ।।
हरख भाव सूँ संजम लेकर, हुआ बाल अणगार।
भगवन्ता रा चरण भेटिया, धन्य ज्याँरो अवतार हो.. ।।10 ।।
वर्षा-काल वरसियाँ पीछे, मुनिवर स्थण्डिल जावे।
पाल बाँध पानी में पात्री, नावा जेम तिरावे हो.... ।।11 ।।
नाव तिरे, मेरी नाव तिरे, यूँ मुख से शब्द उच्चारे।
सांधाँ के मन शंका उपजी, किरिया लागे थारे हो.... ।।12 ।।
भगवन्त भाखे सब साधाँ ने, भक्ति करो मन छन्द।
हीलना निन्दा मत करो इनकी, चरम शरीरी जीव हो ।।13 ।।
समत् अठारे वर्ष चौराणु, चेत्र वदि रविवार।
पूज्य प्रसादे जोड़ी जुगत से, देव गुरु-प्रसाद हो.... ।।14 ।।

मुनि गजसुकुमाल

(तर्ज-जब तुम्हीं चले परदेश..........)

श्री गजसुकुमाल कुमार, धन्य अवतार
ध्यान शुभ ध्याये, सब कर्म काट शिव पाये ।।टेर ।।
ये कृष्णचन्द्र के लघु भ्राता, ये सोमिल द्विज के दामाता।
कर गज असवारी, प्रभु दर्शन को आये....... ।।1 ।।
सुन ज्ञान दर्शन पा हर्षाए, संस्कार पूर्व के प्रकटाये
यों कही प्रभु से, दीक्षा लूँ घर आये....... ।।2 ।।
इत हरि मातादिक समझाये, अभिषेक राज्य का करवाये।
दिया त्याग राज्य तब, दीक्षोत्सव मनाये....... ।।3 ।।
ले दीक्षा प्रभु से अर्ज करी, तब आज्ञा दे प्रभु हर्ष धरी।
फिर महाकाल मरघट पै प्रतिमा ठाये....... ।।4 ।।
लख ध्यान अटल सोमिल आया, ये मम पुत्री को तज आया।
दी पाल बाँध मिट्टी की, आग रख जाये....... ।।5 ।।
जब हुई वेदन क्षमाधारी, तब शुक्ल लेश्या ध्यान धरी।
लिया ज्ञान दर्श मिला, मोक्ष प्रभु फरमाये....... ।।6 ।।
ये शहर 'देई' चौमासा किया, लख धर्म ध्यान हर्षाय जिया।
यो साल आठ में 'सागर मुनि'' गुण गाये....... ।।7 ।।

सुदर्शन–माता–संवाद

(तर्ज–मन डोले, मेरा तन डोले.......)

सुदर्शन–मन हरषे, मेरा तन तरसे, मैं जाऊँ प्रभु के द्वार रे,
पाऊँ दर्शन मंगलकारी......... ।।टेर।।
करुणा सागर जग हितकारी, प्रभुजी आज पधारे।
राजगृही के बाहर वन में, जग के भव्य सहारे,
हो माता जग के भव्य सहारे,
हो माता जग के भव्य सहारे।
दर्शन को, पदरज फरसन को,
मैं जाऊँ प्रभु के द्वार रे, पाऊँ......... ।।1 ।।

माता–मत मचले, वन्दन यही करले, मेरे वत्स सुदर्शन लाल रे,
प्राण हरे अर्जुन माली...... ।।टेर।।
घट-घट के भावों को जाने, प्रभुजी हैं उपकारी,
नमन करे स्वीकार यहीं से, वे प्रभु महिमाधारी,
रे बेटा वे प्रभु महिमाधारी।
हम आकुल, बेबस व्याकुल,
वे देख रहे सब हाल रे, प्राण..... ।।2 ।।

सुदर्शन–प्रभुजी देखे, मैं नहीं देखूँ, यह दुविधा है भारी,
दर्शन करलूँ, वाणी सुन लूँ, हर लूँ मोह खुमारी,
हो माता हर लूँ मोह खुमारी।
क्यों घर मे रहूँ मैं डर में,
छू चरण मैं अभय विहार रे, पाऊँ....... ।।3 ।।

माता–धर्म कार्य में पहला साधन, तन क्यों यों ही हारें।
दया हमारी कर एकाकी, वल्लभ लाल हमारे,
हो बेटा वल्लभ लाल हमारे।
मैं जननी, तेरी यह पत्नी, सुन पाती दुःख अपार रे, प्राण... ।।4 ।।

सुदर्शन–यह तन जिसका पहला साधन, इसीलिये लुट जायें।
ममता तज कर फिक्र करो मत, दुःख सारे टल जायें,
हो माता दुःख सारे टल जायें।
प्रभु सहारा, ये लाल तुम्हारा,
कर देगा अंत संसार रे, पाऊँ...... ।।5 ।।

माता–कायर हैं हम जाओ बेटा, जन-जन का पथ खोलो।
रोती हूँ कर कहती मन से, वीर की जय-जय बोलो,
हो बेटा वीर जी जय जय बोलो।
दु:ख हरना, प्रभु रक्षा करना, लेना तेरा भक्त सम्भाल रे,
जय-जय हो वीर तुम्हारी रे...... ।।6 ।।

अर्जुनमाली

(तर्ज–जब तुम्हीं चले परदेश.......)

अर्जुनमाली अणगार, क्षमा कर धार, आत्मा तारी,
मैं बार-बार बलिहारी ।।टेर ।।

महावीर प्रभु की सुन वाणी, लीनी शिक्षा उत्तम प्राणी।
कर लिया अभिग्रह, कठिन प्रतिज्ञा धारी....... ।।1 ।।
मैं जीवन भर नहीं खाऊँगा, बेले-बेले तप ठाऊँगा।
कर विनय चरण में, प्रभु से अरज गुजारी....... ।।2 ।।
ले आज्ञा मुनि गोचरी जावे, स्वीकृति लेकर राजगृह आवे।
भोजन हित फिरते मुनिवर, घर-घर द्वारी....... ।।3 ।।
देखा सबने मुनि को आते, कोई मारे चपेटा अरु लातें।
रे दुष्ट निकल जा, नगरी बाहर हमारी....... ।।4 ।।
तूने मारा माँ बाप भाई, नहीं दिल में दया जरा आई... ।।5 ।।
कहीं मिले आहार तो नहीं पानी, समता मुनिवर मन में आनी।
'केवल' अर्जुन हुए, सिद्धि पद के धारी........ ।।6 ।।

अरिहन्त देव का क्या कहना

(तर्ज–दुनियाँ में देव हजारों हैं.......)

दुनियाँ में देव अनेकों हैं, अरिहन्त देव का क्या कहना।
उनके अतिशय का क्या कहना, उनके आश्रय का क्या कहना ।।टेर ।।
जो दर्शन ज्ञान अनन्ता है, जो राग-द्वेष जयवन्ता हैं।
जो भक्तों के भगवन्ता हैं, उनकी करुणा का क्या कहना ।।1 ।।
जो आदि धर्म की करते हैं, भव्यों के भव को हरते हैं।
जो तिरते और तिराते हैं, ऐसे तीरथ का क्या कहना ।।2 ।।

सुर-असुरों से जो पूजित हैं, ऋषि मुनियों से जो वंदित हैं।
जो तीन लोक के स्वामी हैं, उनकी महिमा का क्या कहना ।।3 ।।

पूजा-निन्दा में सम रहते, नित वीतरागता में रमते।
जहाँ समकित दीप जले नित ही, उनकी समता का क्या कहना ।।4 ।।

कोई पूजे देव सरागी को, कोई शीष नमाते भोगी को।
अरिहन्त देव ही देव मेरे, देवाधिदेव का क्या कहना ।।5 ।।

गौतम से कहते हैं भगवन्, दृढ़ श्रद्धामय हो यह जीवन।
जो शरण में हैं अरिहन्तों के, उनके मंगल का क्या कहना ।।6 ।।

।। ओ विश्व के सभी जन ।।

(तर्ज–::–ओ दूर जाने वाले)

ओ विश्व के सभी जन, चौरासी लाख योनि।
है आज दिन क्षमा का, मुझको क्षमा करोनी–2 ।। टेर ।।

भव भव में संग भटके, नाते हुए अनंते।
सुत तात मात भ्राता, नारी भी बन सलोनी ।।1 ।।

फँस काम क्रोध मद में, बाँधा जो वैर तुमसे।
छल छिद्र कीनो भारी, बोली कठोर वानी ।।2 ।।

उन सारी त्रुटियों का, बदला चुकालो मुझसे।
भूलो पुरानी बातें, अब हो चुकी जो होनी ।।3 ।।

कर जोड़ के क्षमा मैं, चाहता हूँ शुद्ध तन से।
कर दो क्षमा हृदय से, इतनी दया धरोनी ।।4 ।।

मैंने स्वरूप जाना, गुरुदेव की कृपा से।
तुम भी तो ''जीत'' जागो, हिलमिल गले मिलोनी ।।5 ।।

।। ये पर्व पर्युषण आया ।।

(तर्ज–::–वीरा रमक झमक हुई आइजो)

ये पर्व पर्युषण आया, सब जग में आनन्द छाया रे ।। टेर ।।

यह विषय-कषाय घटाने, यह आतम गुण विकसाने।
जिनवाणी का बल लाया रे ।। ये पर्व0 ।।1 ।।

यह जीव रुले चहुँ गति में, यह पाप करण की रति में।
निज गुण सम्पद को खोया रे ।। ये पर्व0 ।।2 ।।

तुम छोड़ प्रमाद मनाओ, नित धर्म ध्यान रम जाओ।
लो भव-भव दु:ख मिटाया रे ।। ये पर्व0 ।।3 ।।

तप-जप से कर्म खपाओ, दे दान द्रव्य फल पाओ।
ममता त्यागी सुख पाओ रे ।। ये पर्व0 ।।4 ।।

मूरख नर जन्म गमावे, निन्दा विकथा मन भावे।
इनसे ही गोता खावे रे ।। ये पर्व0 ।।5 ।।

जो दान शील आराधे, तप द्वादश भेदे साधे।
शुद्ध मन जीवन सरसाया रे ।। ये पर्व0 ।।6 ।।

बेला तेला और अठायाँ, संवर पौषध करो भाया।
शुद्ध पालो शील सवाया रे ।। ये पर्व0 ।।7 ।।

तुम विषय-कषाय घटाओ, मन मलिन भाव मत लाओ।
निन्दा विकथा तज माया रे ।। ये पर्व0 ।।8 ।।

केई आलस में दिन खोवे, शतरंज ताश या सोवे।
पिक्चर में समय गमावे रे ।। ये पर्व0 ।।9 ।।

संयम की शिक्षा लेना, जीवों की रक्षा करना।
जो जैन धर्म तुम पाया रे ।। ये पर्व0 ।।10 ।।

जन-जन का मन हरषाया, बालकगण भी हुलसाया।
आत्म-शुद्धि हित आया रे ।। ये पर्व0 ।।11 ।।

समता से मन को जोड़ो, ममता का बन्धन तोड़ो।
है सार ज्ञान का पाया रे ।। ये पर्व0 ।।12 ।।

सुरपति भी स्वर्ग से आवे, हर्षित हो जिन गुण गावे।
जन-जन को अभय दिलाया रे ।। ये पर्व0 ।।13 ।।

'गजमुनि' निजमन समझावे, यह सोई शक्ति जगावे।
अनुभव रसपान कराया रे ।। ये पर्व0 ।।14 ।।

।। सब जन लो हर्ष मनाई ।।

(तर्ज–::–यह शिविर ज्ञान का धाम)

सब पर्वों का ताज, पुण्य दिन आज, संवत्सरी आई।
सब जन लो हर्ष मनाई।।टेर।।

चौरासी लाख जीव योनि से, जो वैर किया मन, वच, तन से।
भूलो वह और लो, मैत्री भाव बसाई ।। सब जन.... ।।1 ।।

जो जान बूझ कर पाप किया, या अनजाने अतिचार हुआ।
लो दण्ड और दो, मिच्छामि दुक्कड़ं भाई।। सब जन.... ।।2 ।।

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य श्री, पाठक मुनिवर महासतियाँ जी।
श्रावक श्राविका इन सब से लेवो खमाई।। सब जन.... ।।3 ।।

जो खमता और खमाता है, वह प्राणी आराधक बनता है।
आराधक की होती है गति सुखदाई।। सब जन.... ।।4 ।।

यह पर्व नित्य नहीं आता है, पाले वह मुक्ति पाता है।
केवल कहते 'पारस' अपना नरमाई।। सब जन.... ।।5 ।।

परिशिष्ट 7

प्रत्याख्यान सूत्र

।। नवकारसी ।।

उग्गए सूरे णमोक्कारसहियं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं वोसिरामि।

।। पौरुषी ।।

उग्गए सूरे पोरिसिं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। पूर्वार्द्ध (दो पौरुषी) ।।

उग्गए सूरे पुरिमड्ढं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं-असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, पच्छन्नकालेणं, दिसामोहेणं, साहुवयणेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। एकासन ।।

उग्गए सूरे एगासणं पच्चक्खामि, तिविहं[1]पि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, आकुंचन-पसारणेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, **पारिट्ठावणियागारेणं**[2], महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। एकल ठाणा।। (एक स्थान)

उग्गए सूरे एगासणं एगट्ठाणं पच्चक्खामि, तिविहं[1] पि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, सागारियागारेणं, गुरुअब्भुट्ठाणेणं, **पारिट्ठावणियागारेणं,** महत्तरागारेणं सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। आयंबिल ।।

उग्गए सूरे आयंबिलं पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, उक्खित्तविवेगेणं, गिहिसंसट्ठेणं, **पारिट्ठावणियागारेणं,** महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। उपवास ।।

उग्गए सूरे अभत्तट्ठं[3] पच्चक्खामि, तिविहं[4] पि आहारं-असणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, **पारिट्ठावणियागारेणं,** महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि-वत्तियागारेणं वोसिरामि।

---

1. यदि चौविहार करना हो तो 'चउव्विहं' कह कर 'असणं' के बाद 'पाणं' भी कहना चाहिए।
2. यह आगार साधुओं के लिए है।
3. बेला के लिए छट्ठं भत्तं, तेले के लिए अट्ठं भत्तं, चोले के लिए दसमं भत्तं, पाँच के लिए दुवादसं भत्तं, छः के लिए चोदसं भत्तं इस प्रकार आगे एक-एक दिन के बढ़ने पर दो-दो भत्त बढ़ा देने चाहिए या जितने उपवास के पच्चक्खाण करना हो उसके दुगने कर दो जोड़ कर उतने भत्तं बोलने चाहिए।
4. यदि चौविहार करना हो तो 'चउव्विहं' कह कर 'असणं' के बाद 'पाणं' भी कहना चाहिए।

।। दिवसचरिम ।।

दिवसचरिमं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि–वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। अभिग्रह ।।

अभिग्गहं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं–असणं, पाणं, खाइमं, साइमं। अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, महत्तरागारेणं सव्वसमाहि–वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। नीवी ।।

उग्गए सूरे विगइओ पच्चक्खामि, अन्नत्थऽणाभोगेणं, सहसागारेणं, लेवालेवेणं, गिहत्थसंसिट्ठेणं, उक्खित्तविवेगेणं, पडुच्चमक्खिएणं, **पारिट्ठावणियागारेणं,** महत्तरागारेणं, सव्वसमाहि–वत्तियागारेणं वोसिरामि।

।। दया के पच्चक्खाण ।।

द्रव्य से–पाँच आश्रव सेवन का पच्चक्खाण, **क्षेत्र से–**लोक प्रमाण, **काल से–**सूर्योदय तक, **भाव से–**एक करण, एक योग (करण योग इच्छानुसार बोल सकते हैं।) उपयोग सहित, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

सूचना–यदि संवर लेना तो **काल से–**स्थिरता प्रमाण (जितने समय का करना हो, उसे प्रकट करें) बोलें।

।। प्रत्याख्यान पारने का पाठ ।।

........पच्चक्खाणं कयं, तं पच्चक्खाणं सम्मं मणेणं, वायाए, काएणं, न फासियं, न पालियं, न तिरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं आणाए अणुपालियं न भवइ, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

सूचना–रिक्त स्थान पर जो पच्चक्खाण पारना है, उसका नाम बोलें।

।। पौषध ग्रहण करने के पाठ ।।

(1) प्रतिपूर्ण पौषध (अष्ट प्रहर पौषध)–प्रतिपूर्ण पौषध–व्रत पच्चक्खामि–सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणिसुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावण्णग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक–सावज्ज–जोग सेवन का पच्चक्खाण। जाव अहोरत्तं पज्जुवासामि दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सूचना–यह पौषध कम से कम आठ प्रहर अर्थात् 24 घण्टे के लिए होता है।

(ब) ग्यारहवाँ पौषध–ग्यारहवाँ पौषध–व्रत पच्चक्खामि–सव्वं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण, अबंभ सेवन का पच्चक्खाण, अमुकमणि–सुवर्ण का पच्चक्खाण, माला–वण्णग–विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमूसलादिक सावज्ज–जोग सेवन का पच्चक्खाण–सूर्योदय तक, पज्जुवासामि दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सूचना–यह पौषध कम से कम पाँच प्रहर का होता है। एक प्रहर दिन शेष रहते ग्रहण किया जाता है। जिन्होंने चौविहार त्याग रूप उपवास किया है, वे ही इसे ग्रहण कर सकते हैं।

(स) दसवाँ पौषध–दसवाँ पौषध–व्रत असणं, पाणं, खाइमं, साइमं का पच्चक्खाण। द्रव्य से–सर्व सावद्य योगों का त्याग, क्षेत्र से–सम्पूर्ण लोक प्रमाण, काल से–सूर्योदय तक, भाव से–दो करण, तीन योग, उपयोग सहित तस्स भंते! पडिक्कमामि, निदांमि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

सूचना–जिन्होंने उपवास में प्रासुक जल का सेवन किया है, वे सायंकाल के समय तक इस पौषध को ग्रहण कर सकते हैं। यह कम से कम चार प्रहर का होता है।

विधि–पौषध लेने और पारने की विधि सामायिक की विधि के अनुसार ही है। गृहस्थोचित शुभ्र दुपट्टा और चोलपट्टा आदि धारण करके पौषध–व्रत लेना चाहिए। नवकार मन्त्र से लेकर सब पाठ सामायिक ग्रहण करने के अनुसार ही पढ़ने चाहिए। केवल जहाँ सामायिक में करेमि भंते! बोला जाता है वहाँ ऊपर लिखित जो पौषध ग्रहण करना है उस पाठ को बोलना चाहिए। इसी प्रकार पौषध पारते समय जहाँ सामायिक पारने का 'एयस्स नवमस्स' पाठ बोला जाता है वहाँ नीचे लिखा पौषध पारने का पाठ बोलना चाहिए।

पौषध पारने का पाठ

ग्यारहवें पौषध–व्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा–अप्पडिलेहिय–दुप्पडिलेहिय सेज्जा संथारए, अप्पमज्जिय–दुप्पमज्जिय सेज्जा संथारए, अप्पडिलेहिय–दुप्पडिलेहिय उच्चार पासवण भूमि, अप्पमज्जिय–दुप्पमज्जिय उच्चार पासवण भूमि, पोसहस्स सम्मं अणणुपालणया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

परिशिष्ट 8

तप विधि चार्ट

रत्नावली तप का स्थापना चार्ट

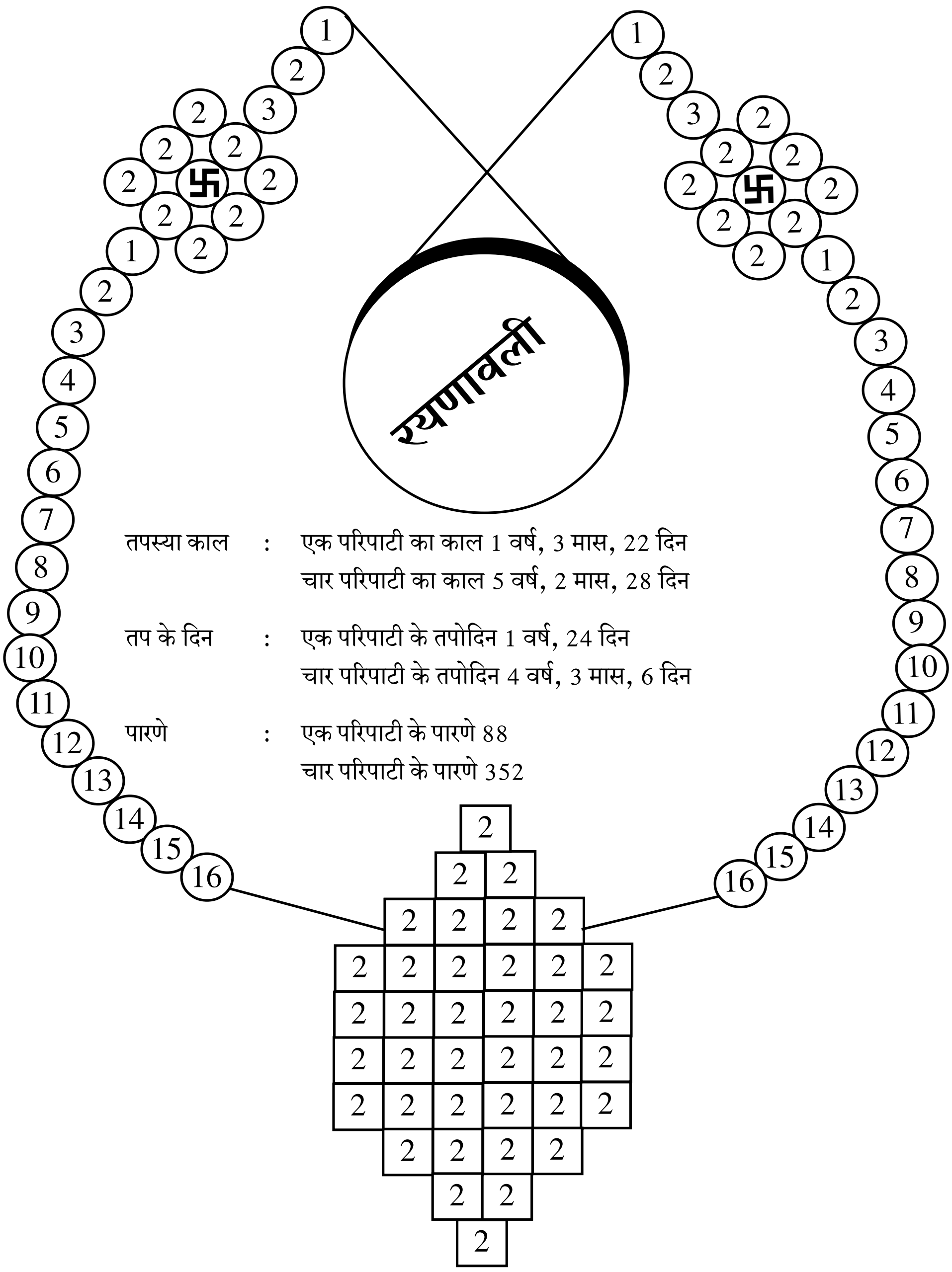

तपस्या काल	:	एक परिपाटी का काल 1 वर्ष, 3 मास, 22 दिन चार परिपाटी का काल 5 वर्ष, 2 मास, 28 दिन
तप के दिन	:	एक परिपाटी के तपोदिन 1 वर्ष, 24 दिन चार परिपाटी के तपोदिन 4 वर्ष, 3 मास, 6 दिन
पारणे	:	एक परिपाटी के पारणे 88 चार परिपाटी के पारणे 352

कणगावली तप का स्थापना चार्ट

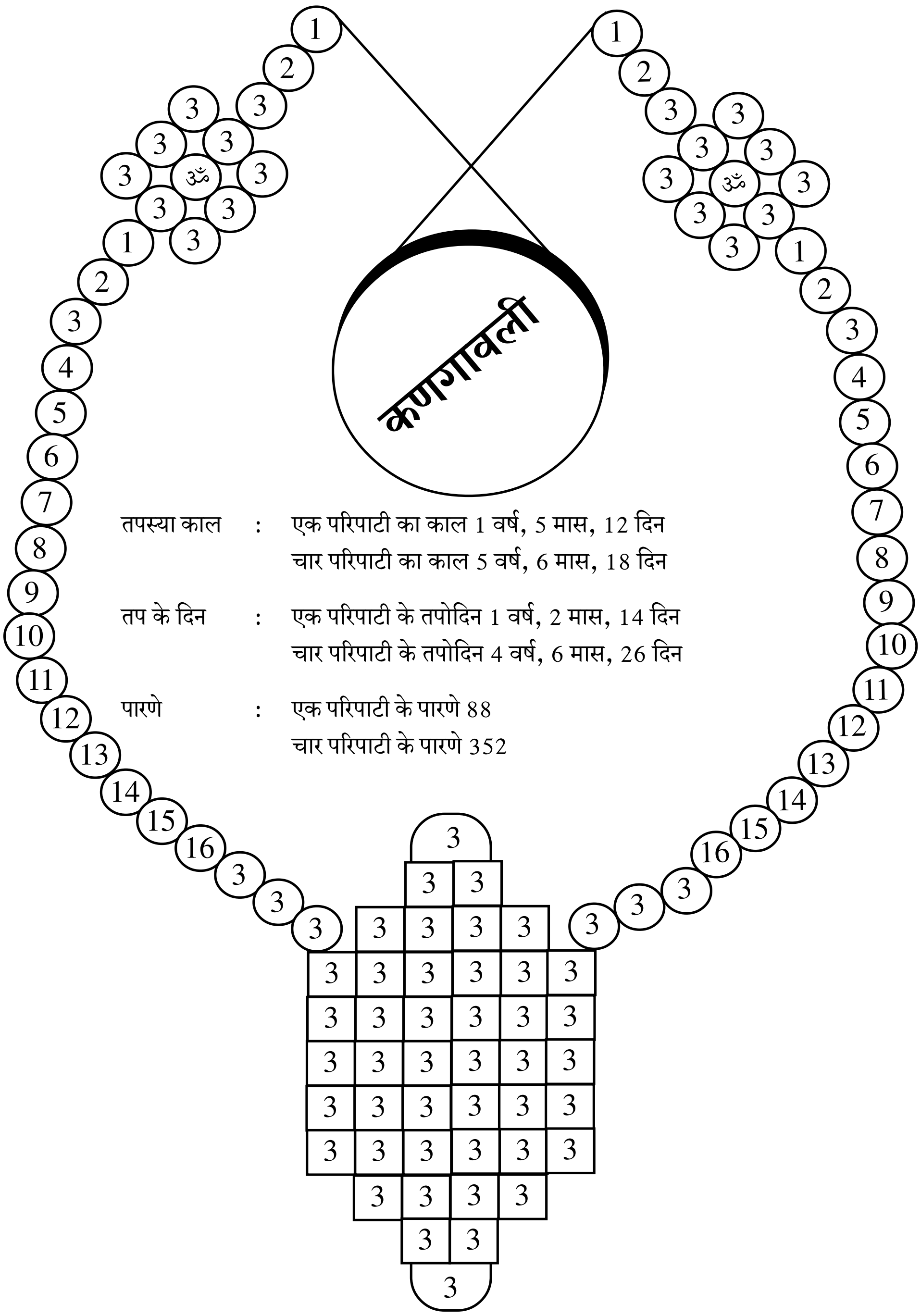

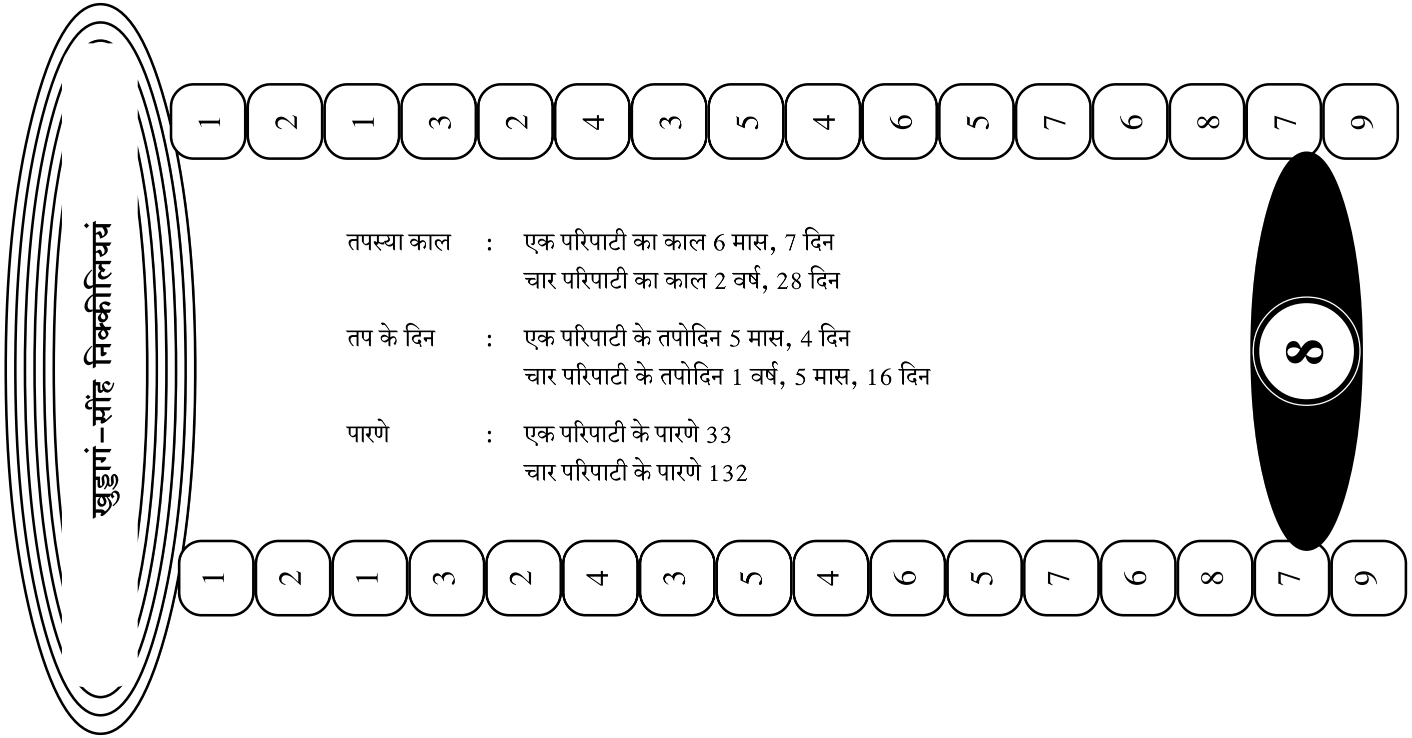

तपस्या काल : एक परिपाटी का काल 6 मास, 7 दिन
चार परिपाटी का काल 2 वर्ष, 28 दिन

तप के दिन : एक परिपाटी के तपोदिन 5 मास, 4 दिन
चार परिपाटी के तपोदिन 1 वर्ष, 5 मास, 16 दिन

पारणे : एक परिपाटी के पारणे 33
चार परिपाटी के पारणे 132

महालयं सीहनिक्कीलियं

1 2 1 3 2 4 3 5 4 6 5 7 6 8 7 9 8 10 9 11 10 12 11 13 12 14 13 15 14 16

15

1 2 1 3 2 4 3 5 4 6 5 7 6 8 7 9 8 10 9 11 10 12 11 13 12 14 13 15 14 16

तपस्या काल	:	एक परिपाटी का काल 1 वर्ष, 6 मास, 18 दिन चार परिपाटी का काल 6 वर्ष, 2मास, 12 दिन
तप के दिन	:	एक परिपाटी के तपोदिन 1 वर्ष, 4 मास, 17 दिन चार परिपाटी के तपोदिन 5 वर्ष, 6 मास, 8 दिन
पारणे	:	एक परिपाटी के पारणे 61 चार परिपाटी के पारणे 244

सत्तसत्तमिया भिक्खु-पडिमा

1	1	1	1	1	1	1	7
2	2	2	2	2	2	2	14
3	3	3	3	3	3	3	21
4	4	4	4	4	4	4	28
5	5	5	5	5	5	5	35
6	6	6	6	6	6	6	42
7	7	7	7	7	7	7	49

41 दिवस 116 दत्तिएँ

अट्ठअट्ठमिया भिक्खु-पडिमा

1	1	1	1	1	1	1	1	8
2	2	2	2	2	2	2	2	16
3	3	3	3	3	3	3	3	24
4	4	4	4	4	4	4	4	32
5	5	5	5	5	5	5	5	40
6	6	6	6	6	6	6	6	48
7	7	7	7	7	7	7	7	56
8	8	8	8	8	8	8	8	64

64 दिवस 288 दत्तिएँ

नवनवमिया भिक्खु-पडिमा

1	1	1	1	1	1	1	1	1	9
2	2	2	2	2	2	2	2	2	18
3	3	3	3	3	3	3	3	3	27
4	4	4	4	4	4	4	4	4	36
5	5	5	5	5	5	5	5	5	45
6	6	6	6	6	6	6	6	6	54
7	7	7	7	7	7	7	7	7	63
8	8	8	8	8	8	8	8	8	72
9	9	9	9	9	9	9	9	9	81

81 दिवस 405 दत्तिएँ

दसदसमिया भिक्खु-पडिमा

1	1	1	1	1	1	1	1	1	1	10
2	2	2	2	2	2	2	2	2	2	20
3	3	3	3	3	3	3	3	3	3	30
4	4	4	4	4	4	4	4	4	4	40
5	5	5	5	5	5	5	5	5	5	50
6	6	6	6	6	6	6	6	6	6	60
7	7	7	7	7	7	7	7	7	7	70
8	8	8	8	8	8	8	8	8	8	80
9	9	9	9	9	9	9	9	9	9	90
10	10	10	10	10	10	10	10	10	10	100

100 दिवस 550 दत्तिएँ

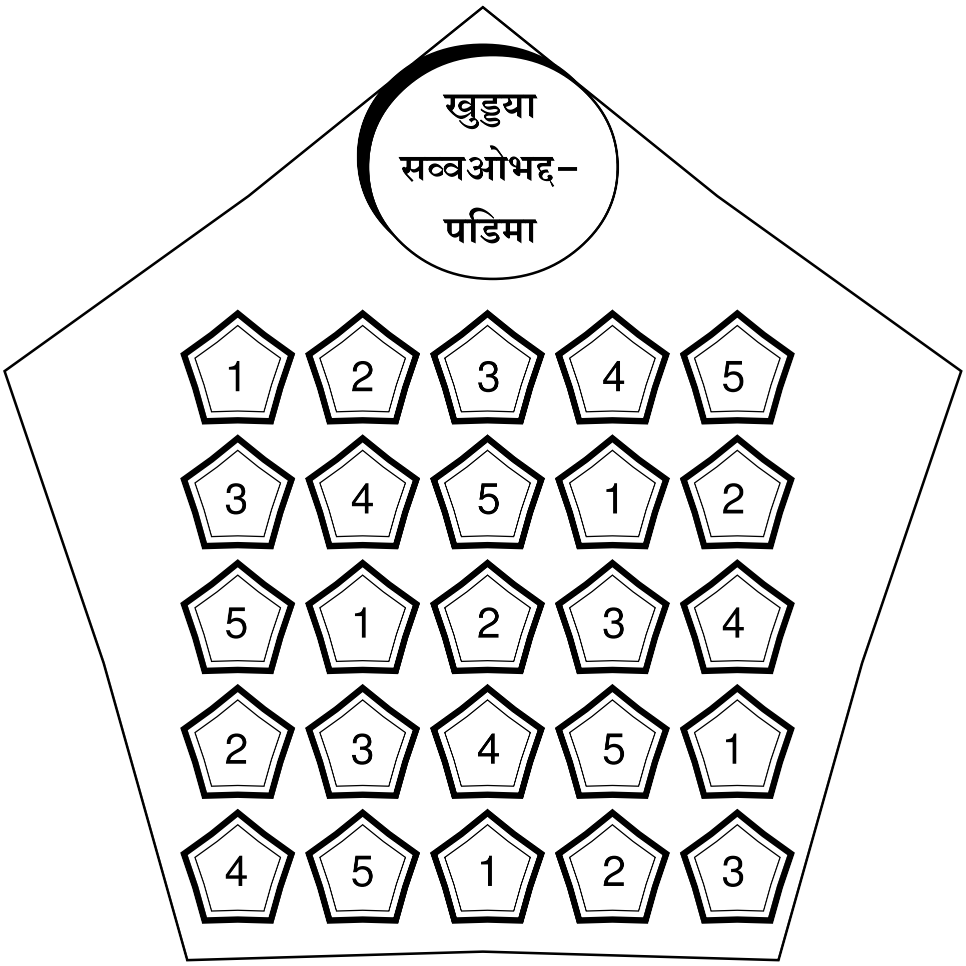

तप दिन 75 ◆ पारणे 25

महालिया सव्वओ भद्द–पडिमा

1	2	3	4	5	6	7
4	5	6	7	1	2	3
7	1	2	3	4	5	6
3	4	5	6	7	1	2
6	7	1	2	3	4	5
2	3	4	5	6	7	1
5	6	7	1	2	3	4

तप दिन 116 **पारणे 41**

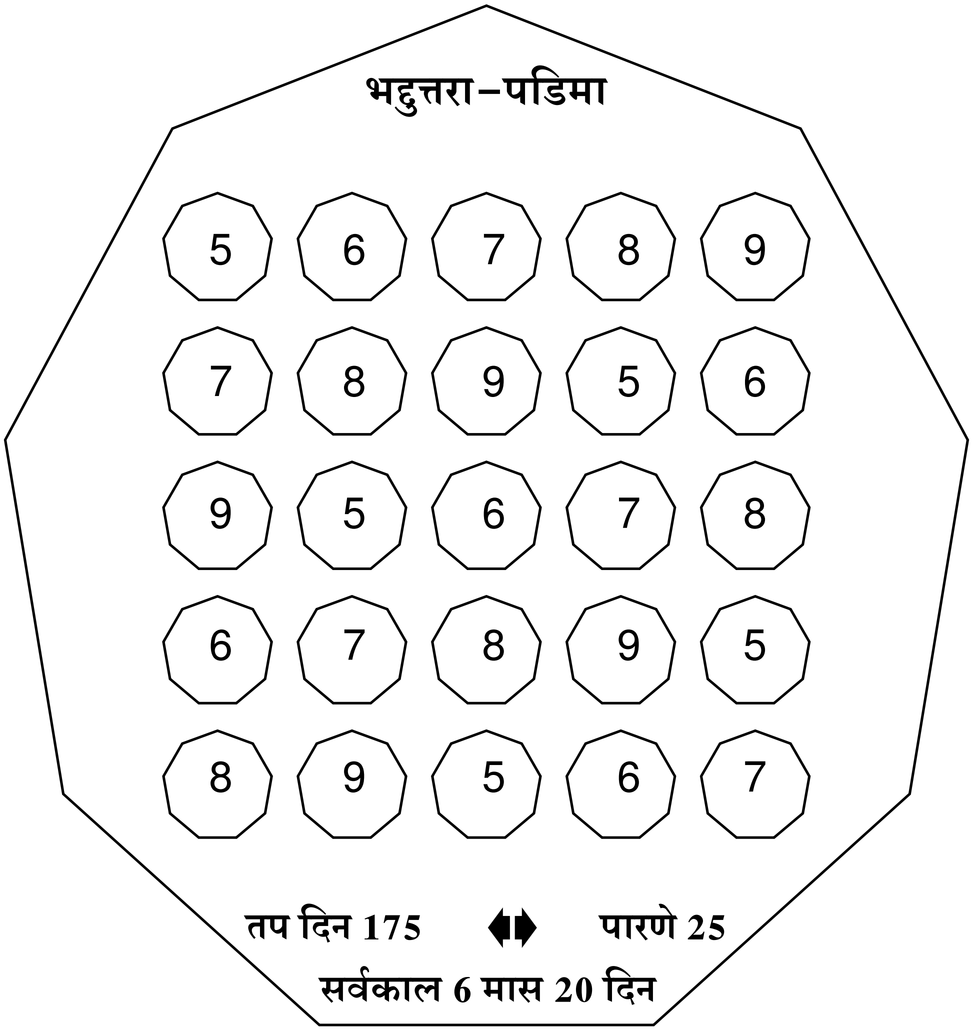
भद्दुत्तरा–पडिमा
5 6 7 8 9
7 8 9 5 6
9 5 6 7 8
6 7 8 9 5
8 9 5 6 7
तप दिन 175
पारणे 25
सर्वकाल 6 मास 20 दिन